धातुओं के रोचक तथ्य

ाब्दियों से धातुएं मनुष्य की सेवा
ती आ रही हैं। इनकी सहायता से वह
त्तियों का सामना करता आ रहा है।
ुओ के बल पर वह प्रकृति के रहस्य
झ रहा है तथा बड़े काम की चीजें बना
है।

धातुओं की दुनिया बडी विस्तृत तथा
बिरगी है। कुछ धातुओं—ताम्र, लोहा,
पारद, स्वर्ण, रजत, टिन के साथ
ष्य हजारो सालों से परिचित है परतु
धातुएं ऐसी है जिनसे मनुष्य केवल
ले दशको में परिचित हुआ है।

धातुओ के गुण विस्तृत तथा विविध
उदाहरण के लिए, पारद शीत से
कुल नहीं घबराता है और टंग्स्टन आग
तीव्र ज्वाला से नही डरता है। लीथियम
बढिया तैराक हो सकता है क्योकि
पानी से दुगुना हल्का होता है। रजत
ठा सुचालक है जबकि टाइटेनियम को
काम से नफरत है। परतु धातुओं के
मे कितनी भी विविधता क्यों न हो,
क परिवार की सदस्य फिर भी बनी
ी है। पुस्तक में कुछ महत्त्वपूर्ण
ओ के इतिहास तथा उनके भविष्य
ाकाश डाला गया है।

पुस्तक विज्ञान के जगत् में प्रथम
न रखने वाले स्कूली छात्रों के लिए
चस्प होगी। आशा है कि वे लोग भी
पुस्तक से लाभ उठा सकेंगे, जो अपना
ान्य ज्ञान बढाना चाहते हैं।

धातुओं के रोचक तथ्य

भाग-2

पुनर्लेखन एवं लिप्यंतरण
राजकुमार शर्मा

स्वराज्य मंदिर प्रकाशन
दिल्ली-110053

एम आर मनस्की की विश्वविख्यात कृति

Tales about Metals

का हिन्दी पुनर्लेखन एवं विस्तारण

प्रसिद्ध चिंतक राजकुमार शर्मा के द्वारा

ISBN: 81-88069-04-3

मूल्य : 150.00 रुपये

प्रथम हिन्दी संस्करण : 2002

संशोधक : उदयकांत पाठक

धातुओं के रोचक तथ्य भाग-2

स्वराज्य मंदिर प्रकाशन

ब्लॉक-सी-8, मकान नं. 174, यमुना विहार, दिल्ली-110053

द्वारा प्रकाशित

आवरण : श्याम जगोता द्वारा

मुद्रक : आर. के. ऑफसेट, दिल्ली-110032 द्वारा मुद्रित

विषय-सूची

प्रस्तावना

शताब्दियों से धातुएं मनुष्य की सेवा करती आ रही हैं। इनकी सहायता से वह विपत्तियों का सामना करता आ रहा है। धातुओं के बल पर वह प्रकृति के रहस्य समझ गया है तथा बड़े काम की चीजें बना रहा है।

धातुओं की दुनिया बड़ी विस्तृत तथा रंग-बिरंगी है। कुछ धातुओं—ताम्र, लोहा, सीसा, पारद, स्वर्ण, रजत, टिन के साथ मनुष्य हजारो सालो से परिचित है परन्तु कुछ धातुएं ऐसी हैं जिनसे मनुष्य केवल पिछले दशकों में परिचित हुआ है।

धातुओं के गुण विस्तृत तथा विविध हैं। उदाहरण के लिए, पारद शीत से बिल्कुल नहीं घबराता है और टंग्स्टन आग की तीव्र ज्वाला से नही डरता है। लीथियम एक घटिया तैराक हो सकता है क्योंकि वह पानी से दुगुना हल्का होता है। रजत अच्छा संचालक है जबकि टाइटेनियम को इस काम से नफरत है। परंतु धातुओं के गुणों में कितनी भी विविधता क्यो न हो, वे एक परिवार की सदस्य फिर भी बनी रहती हैं। पुस्तक में कुछ महत्त्वपूर्ण धातुओ के इतिहास तथा उनके भविष्य पर प्रकाश डाला गया है।

पुस्तक विज्ञान के जगत् में प्रथम कदम रखने वाले स्कूली छात्रो के लिए दिलचस्प होगी। आशा है कि वे लोग भी इस पुस्तक से लाभ उठा सकेंगे, जो अपना सामान्य ज्ञान बढ़ाना चाहते है।

'चादर', जिससे स्टील ढका जाता है

प्राचीन गाव मेंशोको का रहस्य–रोमन प्रांत दाकीय में मिली मूर्ति–मार्को पोलो साक्षी है–नकली रजत–अपरपक्षी जैसा–एक अंग्रेज जिंक का पेंटेंट ले लेता है–धुंध में सूरज–जन्म से काफी पहले–रजत नमूने–दोस्त प्रतिद्वंद्वी बन जाते हैं–अद्वितीय संग्रह–जिंक बैटरियों में कैथोड की भूमिका निभाता है–निवा नदी की सैर–पिछली शताब्दी की तीन घटनाएं–सौ साल इंतजार करना पड़ा–खुद बलिदान हो जाता है–जिंक अंतरिक्ष तकनीक में–पिस्तौल में गोलियां भरी हुई हैं–जादुई सफेद पाउडर–कांच के ऐगट–यह एल ग्रेको की बनाई तस्वीर नहीं है–टेलीविजन की स्क्रीन के इंद्रधनुषी रंग–चूहे क्यों लड़ने लग पड़े?–फूल क्या कहते हैं?–लाल सागर के तल से–अंतरिक्ष में जिंक के क्रिस्टल बनाए गए हैं

इस शताब्दी के छठे दशक के आरंभ मे काकेशस पहाडों की तलहटी मे स्थित एक प्राचीन गाव मेंशोको की खुदाई की गई। ईसा से लगभग 2500 साल पूर्व वहा जो लोग रहते थे उनका मुख्य पेशा पशुपालन था। वे लोग ताम्र तथा कासे के औजार इस्तेमाल करते थे। खुदाई के दौरान मिली धातुओ की विभिन्न चीजो मे एक चीज ने पुरातत्त्वज्ञों का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट किया। यह हरे-से रंग की एक छोटी-सी ट्यूब थी जिस पर काफी जंग लग गया था। यह कोई आभूषण लगता था। किसी जमाने मे शायद वह किसी सुंदरी के गले की शोभा बढा रहा था। आधुनिक इतिहासकार तथा पुरातत्त्वज्ञ इस चीज में इतनी दिलचस्पी क्यो दिखा रहे थे?

इस आभूषण के स्पेक्ट्रमी विश्लेषण से पता चला कि इसके निर्माण मे जिंक का इस्तेमाल किया गया था। तो क्या 5000 साल पहले मनुष्य इस धातु

से परिचित था

मनुष्य प्राचीन काल से जिंक [illegible] से परिचित [illegible] से भी ज्यादा साल पहले बहुत सी जातियों के लोग पीतल [illegible] जो [illegible] ताम्र का ऐलाय है। परन्तु रसायनज्ञ तथा धातुकर्मी [illegible] प्राप्त नहीं कर सके। ऑक्साइड से यह धातु अलग करना [illegible] काम लग रहा था। बात यह थी कि जिंक और ऑक्सीजन के जोड़ को [illegible] के लिए बहुत ऊंचे तापमान का होना आवश्यक था। यह तापमान इसके [illegible] भी बहुत उच्च था। परिणाम यह होता था कि जिंक के वाष्प वायु की ऑक्सीजन के साथ मिलकर फिर से जिंक ऑक्साइड में परिवर्तित हो जाते थे।

बहुत दिनो तक कोई भी इस जोड़े को तोड़ने में सफल नहीं हुआ। परन्तु ईसा से पांच शताब्दी पूर्व प्राचीन भारत तथा चीन के कारीगरों ने जिंक के वाष्पों का संघनन करना सीख लिया। अच्छी तरह से बंद किए मिट्टी के बरतनों में उन्होंने जिंक के पिंडो का उत्पादन शुरू कर दिया जिनका रंग नीला-सफेद था। उदाहरण के लिए, ट्रासिल्वानिया में (आज यहां रूमानिया है) हमारे युग के आरंभ में गमन प्रात दाकीया मे एक ऐसी मूर्ति मिली जिसमे 85% से ज्यादा जिंक उपस्थित था। परंतु दुर्भाग्यवश बाद में इस धातु की प्राप्ति का रहस्य खो गया तथा अठारहवीं शताब्दी के दूसरे अर्द्धांश तक यूरोप के लोग पूर्वी देशों से जिंक मंगवाते रहे तथा इसे एक विरल धातु समझते रहे।

इस कारणवश पुरातत्त्वज्ञ मेशोको में मिली इस चीज से बहुत सोच [illegible] रहे थे। उन्होंने एक बार फिर इसका स्पेक्ट्रमी विश्लेषण किया। इस बार भी परिणाम वही निकला : आभूषण मुख्यतः जिंक से बना था। इसमें ताम्र के ऐलाय बहुत थोडी मात्रा में जरूर उपस्थित थे। शायद जिंक की बनी यह चीज बाद के जमाने की थी और संयोगवश इतनी प्राचीन चीजों के बीच मिली थी। परन्तु यह धारणा गलत थी क्योंकि यह आभूषण जिस गहराई में मिला वहां ईसा से 3000 वर्ष पूर्व बस्ती के निशान थे। 'जवान' चीजें अर्थात् बाद के जमाने की चीजें वहां पहुच ही नही सकती थी। संभव है कि मेशोको में मिला यह आभूषण जिंक की बनी सभी ज्ञात चीजो मे सबसे प्राचीन हो।

मध्य-युग की दस्तावेजों में कई जगह जिंक की चर्चा मिलती है। सातवीं-आठवीं शताब्दियों की भारतीय तथा चीनी दस्तावेजों मे इस धातु के प्रगलन का विवरण दिया गया है। सुप्रसिद्ध यात्री मार्को पोलो ने तेरहवीं शताब्दी के अंत में फारस की यात्रा की। उसने अपनी पुस्तक में लिखा है कि उस जमाने में फारस के कारीगर जिंक प्राप्त करते थे। परतु जिंक को धातु का पद केवल सोलहवीं

ग्रन्थों में किया गया। बाद में सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक पारासेल्स ने अपने लेखों में इस शब्द का प्रयोग आम तौर पर किया। इससे पहले इस धातु के बहुत सारे नाम थे [illegible] तुतिया [illegible] आदि। 'जिंक' शब्द लातीनी भाषा से लिया गया है जिसका अर्थ है 'सफेद परत'।

17[illegible] में जर्मन रसायनज्ञ तथा धातुकर्मी फ्रीडरिख गेन्केल (जर्मनी में पढ़ते समय लोमोनोसोव इनके शिष्य रहे थे) ने एक खनिज कैलेमाइन से जिंक पृथक् कर लिया। गेन्केल ने कैलेमाइन को जलाकर प्राप्त राख से चमकीला जिंक प्राप्त किया और सम्भवतः इन्होंने अपने लेखों में इस धातु की अमरपक्षी से तुलना की।

यूरोप में जिंक का पहला कारखाना इंग्लैंड के एक शहर ब्रिस्टल में 1743 में लगाया गया। इस घटना से चार साल पहले एक अंग्रेज धातुकर्मी जान चैम्पियन ने भस्मीकृत अयस्कों से आसवन-विधि से जिंक के उत्पादन का पेटेंट ले लिया था। ब्रिस्टल के इस कारखाने में जिंक के उत्पादन की तकनीक प्राचीन बेनाम धातुकर्मियों की तकनीक से पूर्णतया मिलती-जुलती थी। परंतु जिंक के औद्योगिक उत्पादन का श्रेय चैम्पियन को मिला क्योंकि प्राचीन कारीगर यह जानते तक नहीं थे कि पेटेंट क्या होता है। लगभग बीस साल तक चैम्पियन जिंक के प्रगलन में व्यस्त रहा और उसने इसके उत्पादन की एक और विधि ढूंढ डाली जिसमें कच्चे माल का काम जिंक ऑक्साइड नहीं बल्कि जिंक सल्फाइड कर रहा था।

अगर ब्रिस्टल के कारखाने में जिंक का वार्षिक उत्पादन 200 टन था, तो हमारे दिनों में विश्व में इस धातु का उत्पादन लाखों टनों में होता है। आकड़े बताते हैं कि आज उत्पादन के हिसाब से अलौह धातुओं में इस धातु का तीसरा स्थान है--केवल ऐलुमिनियम तथा ताम्र का उत्पादन इससे अधिक है। फिर भी अन्य औद्योगिक धातुओं के मुकाबले जिंक में एक खास खूबी है और वह यह कि इसका उत्पादन सस्ता पड़ता है (विश्व मंडी में केवल लोहा तथा लेड इससे सस्ते हैं)। प्राचीन आसवनविधि के अलावा जिंक का उत्पादन विद्युत अपघटन-विधि से भी किया जाता है जिसमें जिंक ऐलुमिनियम कैथोडों पर इकट्ठा कर लिया जाता है और फिर प्रेरण-भट्टियों में पिघला लिया जाता है।

आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि अंग्रेज वैज्ञानिक हेनरी बेसेमर ने, जो स्टील प्रगलन परिवर्तक के निर्माता के नाम से सारे विश्व में प्रसिद्ध हैं, 1868 में एक सौर-भट्ठी बनाई। उन्हें इस भट्ठी में ताम्र और जिंक के प्रगलन में सफलता मिल गई, परन्तु यह भट्ठी प्रचलित नहीं हो पाई। इसके दो कारण थे--पहला यह कि भट्ठी के तकनीकी प्ररूप में काफी कमी थी और दूसरा यह कि इंग्लैंड में धुंधली छाई रहने से इसका व्यावहारिक प्रयोग काफी मुश्किल था।

हम बता चुके हैं कि एक धातु के रूप में मान्यता देने से काफी पहले ही मनुष्य ने जिंक से लाभ उठाना शुरू कर दिया था। पुराने जमाने में धातुकर्मी जिंक के भूरे पत्थर कोयले और ताम्र के साथ आग में फेंककर पीतल प्राप्त करते थे जो एक उत्तम कोटि का ऐलॉय है। इसकी मजबूती, तन्यता तथा संक्षारण प्रतिरोध उच्च होते हैं। इसका रंग भी बहुत सुंदर होता है। रंग की भिन्नता तथा खूबसूरती इसमें जिंक तथा अन्य अवयवों की मात्रा पर निर्भर करती है। रूस में पीतल को पीला ताम्र कहा जाता था। जिंक की मात्रा बढ़ाने से पीतल का रंग लाल की जगह हल्का पीला हो जाता है। पीतल में थोड़ा-सा ऐलुमिनियम मिलाने से इसका रंग सोने जैसा हो जाता है। इस तरह के पीतल से आज तमगे आदि बनाए जाते है। अरस्तू ने भी उस ताम्र का जिक्र किया था : '...जिसमें और सोने मे केवल स्वाद का फर्क होता है।' स्पष्ट है कि उनका अभिप्राय पीतल से था।

बहुत दिनों तक यह समझा जाता रहा कि मास्को के लाल चौक में बना मीनिन तथा पोजार्स्की का स्मारक कांसे का है, परंतु पिछले दिनों इसकी मरम्मत के दौरान यह पता चला है कि यह कांसे का नहीं बल्कि पीतल का बना है।

भारत के कुछ इलाके खूबसूरत चीजों के लिए प्रसिद्ध हैं। वहां के कारीगर ताम्र, जिंक और टिन के ऐलॉय से सुराहियां, तश्तरियां, मूर्तियां आदि बनाकर उनके ऊपर एक खास घोल लेप देते है जिससे उनका रंग काला हो जाता है। फिर वे इन चीजों पर अति सुंदर डिजाइन बनाते हैं जिनके रंग कभी फीके नहीं पडते। इस विशेषता के कारण भारत की चीजें सारी दुनिया में मशहूर हैं।

ऐलॉय मे अक्सर जिंक और ताम्र साथियों की भूमिका निभाते है तथा एक-दूसरे को मजबूत बनाते हैं। परंतु कुछ दिनों पहले दोनों एक-दूसरे के प्रतिद्वंद्वी बन गए है--जिंक ने ऐलॉय में ताम्र का महत्त्व कम करवा दिया है। यह घटना संयुक्त राज्य अमरीका में घटी : पिछले दिनों तक इस देश की मुद्रा का सबसे छोटा सिक्का—सेंट, जिस ऐलॉय से ढाला जाता था, उसमें 95% ताम्र होता था तथा 5% जिंक, परंतु अब इन दोनो धातुओं का अनुपात उलटा करने का प्रस्ताव है—97.6% जिंक होगा तथा ताम्र केवल 2.4% होगा। इस 'परिवर्तन' का कारण यह है कि जिंक ताम्र से काफी सस्ता पडता है जिसके फलस्वरूप सरकार को काफी लाभ होगा।

जिंक के कई ऐलॉय ज्ञात हैं जिनमें ताम्र, ऐलुमिनियम, मैग्नीशियम आदि धातुओ की बहुत थोडी मात्रा उपस्थित होती है। इन ऐलॉयों का गलनांक निम्न होने पर भी इन्हें सरलता से ढाला जा सकता है। इन ऐलॉयों से पतले-पतले पुर्जे

तथा अन्य कई तरह के औजार बनाए जाते है। छपाई के छोटे-छोटे अक्षर भी इन्हीं से ढाले जाते है। क्रेमलिन में पिछली शताब्दी के मध्य में निर्मित महान् प्रासाद मे जो 18 स्तभ लगे है, वे जिंक से ढाले हुए है। इनका डिजाइन रूसी वास्तुकार इ विनाली ने बनाया था।

जनवादी जर्मनी के एक नागरिक के पास जिक से ढाली चीजो का अद्वितीय सग्रह है। यह आदमी 25 साल से मनुष्यो तथा जानवरों की छोटी-छोटी मूर्तिया जिक से बनाता आ रहा है जिनकी ऊचाई सेटीमीटर से अधिक नहीं होती। उसके पास मूर्तियो के लगभग 1500 सेट है। संभवत· इन सेटो मे सबसे सुंदर सेट लेप्जिग युद्ध को समर्पित है, जहा नेपोलियन की सेना को रूस, प्रुसिया (मध्य युगीय जर्मनी का एक क्षेत्र), आस्ट्रिया और स्वीडन की सेनाओ ने बुरी तरह हराया था। इस सेट में 1000 के लगभग मूर्तिया हैं—सिपाहियों, घोडो, तोपों आदि की। इस सेट का नाम है—'राष्ट्रों की लडाई।'

जर्मन सग्रहकर्ता के सेटो की गिनती बढाने का श्रेय जिंक के निम्न गलनाक को जाता है—लगभग 420°C। इस धातु के बहुत से गुण इसकी शुद्धता पर निर्भर करते है। आमतौर पर यह अम्लो मे सरलता से घुल जाता है, परंतु अगर शुद्धता 99 999% होती है, तो अम्ल उच्च ताप पर भी इसका कुछ नही बिगाड़ पाते। शुद्धता जिक की रासायनिक 'निरापदता' का ही नहीं, उच्च तन्यता का भी प्रतीक है। ऐसी धातु के बारीक-से-बारीक तार ताने जा सकते हैं। परंतु साधारण कार्यो मे प्रयुक्त होने वाला जिंक काफी नखरेदार होता है—केवल 100°C से 150°C ताप के बीच जिक को मोड़कर इसकी पत्तिया, डलियां आदि बनाई जा सकती है। साधारण तापमानों तथा 250°C से गलनांक तक यह धातु बड़ी भंगुर रहती है—इसे बड़ी आसानी से पाउडर में पीसा जा सकता है।

विद्युत के आधुनिक रासायनिक स्रोतो में जिंक की पट्टियां कैथोड की भूमिका निभाती है, जहां धातु आक्सीकृत होती है। सन् 1800 मे पहली बार जिंक ने अपनी इस शक्ति का प्रदर्शन किया जब इतावली वैज्ञानिक अलेक्सांद्रो वोल्टा ने अपने गैल्वैनी तत्त्व की रचना की। इसके दो साल बाद एक बहुत बड़ी (उस जमाने के हिसाब से) गैल्वेनी बैटरी की सहायता से रूसी भौतिकविद् व. पेत्रोव ने पहली बार विद्युत आर्क प्राप्त किया। इस बैटरी के निर्माण मे ताम्र और जिक की 4200 गोल डिस्कें इस्तेमाल की गई थीं।

1838 में रूसी विद्युतविशेषज्ञ बो. याकोबी ने एक बोट में विद्युत से चलने वाला इंजन फिट किया। इसे गैल्वेनी बैटरी से विद्युत दी गई। कुछ अर्से तक यह बोट लोगों को निवा की सैर कराती रही। इसमें 14 सवारियां बैठ सकती

थी परतु इस इजन को चलाना बडा महगा पड रहा था तथा [illegible]।
यूस्तुस लीबिख ने खुलेआम कह दिया कोयला जलाकर जिंक प्राप्त करके उसे बैटरी मे लगाने की जगह इजन को सीधा कोयले से चलाना सस्ता पड़ेगा [illegible] उस वक्त बैटरियो से उत्पन्न विद्युत का किसी भी काम मे उपयोग नही हो रहा [illegible] विख्यात अंग्रेज भौतिकविद् जेम्स प्रेस्काट जूल ने एक बार मजाक-मजाक मे सच्ची बात कह ही दी 'बैटरी मे जिंक लगाने की जगह घोडे को चारा खिलाना सस्ता पडता है।'

हमारे दिन मे इस विचार की फिर से कद्र हुई . बहुत सारे देशों की सड़कों पर अब इलेक्ट्रोमोबाइल दौड रही है। इनके निर्माणकर्ता इनमे जिंक बैटरियो के प्रयोग को प्राथमिकता दे रहे है जो 'बिना चारा खाए' दर्जनो घोडो का काम कर रही हैं। विद्युत के इतने छोटे-छोटे स्रोत श्रवणसहायों, घड़ी सूचकों, उद्भासन-मापियो तथा मिनी परिकलित्रों मे प्रयुक्त किए जा रहे है। जेब के अदर आ जाने वाली टार्च में जो चपटी बैटरी लगाई जाती है, उसमें जिंक के तीन सिलिंडर फिट होते है 'ज्वलित होकर' (अर्थात् आक्सीकृत होकर) जिंक विद्युत उत्पन्न करता है जिससे टार्च का बल्ब जल उठता है। और अधिक भरोसेदार विद्युत स्रोतों में रजत और जिंक के इलेक्ट्रोड प्रयुक्त किए जाते हैं। इस तरह की एक बैटरी एक सोवियत कृत्रिम उपग्रह मे इस्तेमाल की गई।

पिछले दिनों और्जिकी का जो संकट उत्पन्न हो गया है, उसने बड़े-बड़े वैज्ञानिक और औद्योगिक संस्थानो को ऊर्जा के नए स्रोत खोजने पर मजबूर कर दिया है। परतु शौकिय लोग भी पेशावरो से पीछे नही है। इंग्लैंड के एक शहर किडेरमिन्स्टर मे एक घडीसाज ने इस काम के लिए—साधारण नींबू इस्तेमाल किया। उसने नीबू में जिंक और ताम्र की पट्टियां घुसाकर एक अद्भुत विद्युत बैटरी बनाई। सिट्रिक अम्ल की ताम्र और जिक के साथ प्रतिक्रिया के फलस्वरूप विद्युत उत्पन्न होती है जिससे एक छोटी-सी मोटर चालू हो जाती है। यह मोटर घड़ीसाज की दुकान के बाहर लगे विज्ञापन को घुमाती रहती है। यह एक आविष्कार नहीं तो और क्या है? परंतु इसमें एक कमी है . अगर इस तरह की बैटरी से एक टेलीविजन चलाना हो, तो विशेषज्ञों की गणनानुसार कई लाख नींबुओं की जरूरत पड़ेगी।

एक अमरीकी जीवरसायनज्ञ नोबेल पुरस्कार विजेता मेल्विन काल्विन ने और ज्यादा शक्तिशाली विद्युत स्रोत के निर्माण की योजना प्रस्तुत की। उन्होंने एक सौर बैटरी बनाई जिसमें जिंक ऑक्साइड तथा वनस्पतियो के क्लोरोफिल से विद्युत उत्पन्न की। एक छोटे-से कमरे जैसे इस हरे इलेक्ट्रोबागान से 1 किलोवाट 'फसल' काटी जा सकती है।

लगना है कि निकट भविष्य में, शायद हमारी शताब्दी के अंत तक,
मार-वनस्पति ऑर्जैनिका के क्षेत्र में नई उपलब्धियों के साक्षी बन जाए,
ाहाल हम पिछली शताब्दी में लौटते हैं और जिंक से संबंधित तीन महत्त्व
ाओं की चर्चा करते हैं।

पहली घटना 1850 की है फ्रेंच वैज्ञानिक झील्लो ने चित्र छापने की
फल नई विधि प्रस्तुत की। उन्होंने अम्लप्रूफ रंग लेकर जिंक की पट्टी पर

: बनाया और फिर धातु की ऊपरी सतह को नाइट्रिक अम्ल से निश्चे
ा। रंगे हुए हिस्से पर तो अम्ल का कोई असर नहीं पड़ा, परंतु जहां रंग
उन जगहों पर अम्ल जिंक 'चाट गया' जिसके कारण वहां गड्ढे बन गए
ार चित्र 'स्थलाकृति' में परिवर्तित हो गया और छापने पर कागज पर
ा आ गया। आगे चलकर झील्लो की इस विधि में कई सुधार लाए गए
का नाम जिंकाग्राफी (Zincography) रख दिया गया। आज सारी दुनिय
गालय इसी विधि से किताबों, अखबारों तथा पत्रिकाओं में रोज असंख्य
ा फोटो छापते हैं।

1887 में प्रसिद्ध जर्मन वैज्ञानिक हेन्नीख रूदोल्फ हेत्स ने फोटो प्रभाव
न की--प्रकाश के प्रभाव से पदार्थ द्वारा इलेक्ट्रानों का उत्सर्जन। एक
रूसी भौतिकविद् अ. स्तोलेतोव ने फोटो प्रभाव का अतिध्यानपूर्वक अध
या। उन्होंने मास्को विश्वविद्यालय की प्रयोगशाला में एक सुंदर प्रयोग

'चादर' जिससे स्टील ढका जाता है।

जो हमेशा के लिए विज्ञान के इतिहास में लिख दिया था। [illegible]
बैटरी के कैथोड के साथ जिंक की एक जाली जोड़ी। इस धात्विक जाली को उन्होंने जिंक की पट्टी के सामने कुछ दूरी पर रख दिया। स्वाभाविक था कि इस अधूरे सर्किट मे विद्युत नही दौड रही थी और गेल्वानिक मीटर की सूई शून्य पर स्थिर थी। परंतु जैसे ही वैज्ञानिक ने जिंक की पट्टी की ओर प्रकाश की तीव्र किरण भेजी, सूई तुरंत अपने स्थान से हट गई। इसका मतलब यह हुआ कि सर्किट मे विद्युत दौड रही थी। स्तोलेतोव ने प्रकाश की किरण की तीव्रता बढ़ा दी, सूई और आगे बढ़ गई अर्थात् विद्युत की तीव्रता भी बढ़ गई थी। जैसे ही प्रकाश हटा दिया गया, सर्किट से विद्युत गायब हो गई और सूई शून्य पर वापस आ गई। यह उपकरण एक प्रकार से प्रथम फोटो-बैटरी था जिसके बिना आधुनिक तकनीक की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

जिस साल स्तोलेतोव ने अपना ऐतिहासिक प्रयोग किया, उसी साल 'जिंक की पट्टी' एक रोचक आविष्कार की साझेदार बन गई। संयुक्त राज्य अमरीका मे काम कर रहे एक जर्मन इंजीनियर बर्लिनर ने ग्रामोफोन बनाया जिसमें जिंक की डिस्क का प्रयोग ध्वनिवाहक के रूप में किया। उन्होंने इस डिस्क के ऊपर मोम की पतली तह बिछा रखी थी। इस डिस्क से धात्विक सांचा बनाया जा सकता था जिससे ग्रामोफोन रिकार्डों की सैकडों प्रतियों का उत्पादन किया जा सकता था। विश्व का पहला ग्रामोफोन रिकार्ड भी बर्लिनर ने ही बनाया जो आज वाशिंगटन के राष्ट्रीय संग्रहालय की शोभा बढ़ा रहा है। 1907 में पेरिस में एनीको कारूजो, फ्रान्चेस्को तामानो, आदेलीना पाती तथा कई अन्य प्रसिद्ध गायकों के रिकार्ड बड़ी धूमधाम के साथ ऐसे बक्सों में लंबे अर्से के लिए रख दिए गए जिनके ऊपर जिंक का अस्तर चढा था। इन बक्सो को 100 साल बाद सन् 2007 में खोला जाएगा।

आधुनिक तकनीक में अखंडित जिंक के साथ-साथ जिंक की धूल के भी कई उपयोग हैं। आतिशबाज इससे ज्वाला को नीला रंग दे पाते हैं। धातुकर्मी साइनाइडों से स्वर्ण तथा रजत अलग करने में इसका प्रयोग करते हैं। यहां तक कि जिंक के उत्पादन मे भी जिंक की धूल काम आती है : इसकी सहायता से विद्युत अपघटनी विधि द्वारा जिंक सल्फेट के विलयन से ताम्र तथा कैडमियम अलग करते है। धातु के बने पुल, औद्योगिक संस्थानों के ढांचे तथा बड़ी-बड़ी मशीनें अक्सर भूरे रंग से रंगी जाती हैं, जो धातु की संक्षारण से रक्षा करता है। इस रंग में भी जिंक की धूल मिली होती है।

जब हम संक्षारण की चर्चा कर रहे हैं तो जिंक के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण

वान जरूर बताना चाहेगे। विश्व में इस धातु के कुल उत्पा
ग हिस्सा स्टील की रक्षा मे खर्च हो जाता है। यह उसके सबसे ख
ा से रक्षा करता है, जो हर साल लाखों टन लोहा खा जाता है
टब, घरो की छतं, पानी के पाइप कई सालों तक सही सलाम
ाधारण लोहे की बनी चीजों पर पहली बारिश ही भूरे धब्बे छोड

ा उत्तरदायी तथा कठिन काम जिंक को ही क्यों सौंपा गया है? क्रो
वाल्ट जैसे बढ़िया रक्षको के सामने जिक कोई अहमियत नही
त में हमारे प्रश्न का उत्तर छिपा है। एक विद्वान् ने कहा हे f
ो बडी मजबूत होती है, इसी तरह जिंक की कमजोरी बडी
हे। वह लोहे की संक्षारण से रक्षा करता है क्योंकि खुद उसके
जेक मे लोहे के मुकाबले काफी ज्यादा रासायनिक सक्रियता हे
ी सक्षारण का खतरा सामने दिखाई देता है जिक खुद को अ
द अपनी बलि देकर लोहे को मौत से बचा देता है। इसी क
े तरीके को 'आत्मबलिदान' कहा जाता है।
. बकतर पर खरोंच आने पर भी सक्षारण लोहे पर वार करने मे
जब तक जिक चढे स्टील की थोड़ी-सी भी मात्रा उपस्थित .
ी बिगाड़ा जा सकता। निकिल तथा क्रोमियम पालिश में उच्च
.ता होने के बावजूद वह जिक की तरह भरोसेदार नही सिद्ध

'चादर' जिससे स्टील ढका जाता

वह केवल एक झटका सह सकती है परंतु जरा-सी भी खरोंच लग जाने पर निकिल तथा क्रोमियम आक्रमणकारी तत्त्वों के लिए लोहे के घर का रास्ता खोल देते हैं और उनकी 'आंखों के सामने' लोहे पर संक्षारण की मार पड़नी शुरू हो जाती है।

अगर यह सोचा जाए कि जिंक लोहे के अन्य रक्षकों में सस्ता भी है तो आपको समझ आ ही जाएगा कि धातुओं पर पालिश चढ़ाते समय इसे ही प्राथमिकता क्यों दी जाती है।

पिछले कुछ समय से जिंक ने अपना कार्यक्षेत्र बढ़ा लिया है। धातुओं की जिन संरचनाओं को ज्यादा ताप सहना पड़ता है, अब उन पर जिंक की पालिश चढ़ा दी जाती है। कुछ दिनों पहले तक अंतरिक्ष राकेटों के स्टार्ट-टावर का ढांचा ताप के कारण धीरे-धीरे अपनी मजबूती खोता रहता था। अब इस कमी को दूर करने के लिए ढांचे की धातु पर जिंक का लेप चढ़ा देते हैं। निम्न क्वथनांक के कारण स्टार्ट के दौरान निकले ताप से जिंक बड़ी तेजी से वाष्पित हो जाता है और ताप की बहुत बड़ी मात्रा खुद ले लेता है जिसके फलस्वरूप धातु ताप के प्रभाव से मुक्त रहती है।

जिंकन (जिंक की पालिश चढ़ाना) की तकनीक काफी सादी है। ज्यादातर इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए स्टील की पत्तियां, पाइपों, पुर्जों आदि को सीधे प्रगलित जिंक में डुबो देते है। परंतु बिजली की लाइन के मस्तूल को कैसे डुबोया जा सकता है? इसके लिए बहुत बड़ा स्विमिंग-पूल चाहिए। इन परिस्थितियों में कई विशेष तरीके अपनाए जाते हैं। एक ऐसी विशेष 'पिस्तौल' बनाई गई है जिसमें धातु का तार भरा जाता है। फायर करने पर इस पिस्तौल से तार से प्राप्त द्रवित धातु बाहर निकलती है जो सूखने पर एक संरक्षी परत का काम करती थी। अगर पॉलिश में चमक लानी होती है तो विद्युत अपघटन-विधि अपनाते हैं।

जिंक के साथ-साथ इसके यौगिकों के कार्यक्षेत्र भी विविध हैं : मध्य युग में अरबी तथा पश्चिमी यूरोप के डॉक्टर इलाज में एक सफेद पाउडर इस्तेमाल करते थे—यह जिंक ऑक्साइड होता था। आज भी दवा की हर दुकान में मलहमों, बच्चों के पाउडरों, आंख की दवाइयों में यह तत्त्व किसी-न-किसी रूप में उपस्थित मिलेगा। हर औरत जिंक ऑक्साइड इस्तेमाल करती है हालांकि उसे इस बात का तनिक भी आभास नहीं होता। उसका पाउडर जिंक के यौगिक से तो बना होता है जिसमें रंग तथा सुगंध मिली होती है। अगर पाउडर के एक कण को आवर्धित करके देखा जाए तो उसका आकार एक मकड़ी की याद दिलाता है।

लगभग 200 साल पहले फ्रास व ब्रिटेन मे जिक-रग वनने शुरू हो
जो पुराने जमाने से प्रचलित लेड-रगो के मुकाबले मनुष्य के लिए तनिक
हानिकारक नही थे। जिक-रंग बडी जल्दी प्रसिद्ध हो गए। शीघ्र ही अन्य
म भी नए रंग बनाए जाने लगे। 1807 मे एक रूसी पत्रिका मे एक लेख
जिसमे यह बताया गया कि जिक ऑक्साइड से रग बनाए जा सकते है जो साध
रगो की जगह इस्तेमाल किए जा सकते है। जिक पुराने चित्रकारो की चित्र
की जाच के लिए बडा उपयोगी सिद्ध होता है। मिसाल के लिए, अगर
ज्येष्ठ, रूबेन्स या एल ग्रेको के नाम से बिक रहे चित्रो में जिक-रगो का इस्ते
किया गया है तो निस्सदेह चित्र नकली हैं।

रबड तथा लिनोलियम की फैक्टरियां भी जिक ऑक्साइड के बिना
नही चला सकतीं। जिक और काच की जान-पहचान भी काफी पुरानी है।
मे लंदन के विश्व मेले में काच की एक नई चीज—जिक क्रिस्टल ने सन
मचा दी थी। इसकी चमक तथा चिकनाहट कुछ खास तरह की थी। हमारे
म कांच के कारीगर जिक सल्फाइड इस्तेमाल करते है जो कांच को अति
रगो मे रंग देता है—काच को सगमरमर, जैस्पर, एगेट आदि जैसा बना देत

हमारी शताब्दी के दूसरे दशक मे जिक ऑक्साइड का क्रिस्टल पहली बार रेडियो तकनीक मे इस्तेमाल किया गया। इसकी सहायता से अति दूरी से रेडियो सिग्नल प्राप्त किए गए। इस तत्त्व के यौगिक टेलीविजन तकनीक में भी बड़े काम के सिद्ध हुए। स्क्रीन पर 3 मुख्य रगो (नीला, हरा तथा लाल) का श्रेय जिक सल्फाइड, जिक सेलेनाइट तथा जिक फास्फेट को जाता है। आशा है कि जिंक ऑक्साइड का कृत्रिम क्रिस्टल लेसर टेलीविजन मे अति महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाएगा। रगीन लेसर टेलीविजन के स्क्रीन का क्षेत्रफल कई वर्ग मीटर होगा (प्लेट के

'चादर' जिससे स्टील ढका जाता है

कमरे की दीवार के क्षेत्रफल के बराबर)। जिंक के यौगिक अर्धचालक गुण भी रखते है जिनसे काफी आशाए हैं।

जिंक की जरूरत केवल तकनीक के क्षेत्र तक ही सीमित नहीं है। जीवों तथा वनस्पतियों के लिए इसकी अल्प मात्रा परमावश्यक है। 24 घंटों में मनुष्य को 5 से 20 मिलीग्राम तक जिंक की जरूरत पड़ती है। शराब के शौकीन लोगों को इस तत्त्व की ज्यादा जरूरत रहती है क्योंकि शराब उनके शरीर में जिंक का असर कम कर देती है। ईरान तथा मिस्र मे ठिगने कद के लोगो के अध्ययन से पता चला है कि उनका कद न बढने का कारण उनके खाने में जिंक की कमी है। जिन मादा चूहों की खुराक से जिंक बिल्कुल निकाल दिया गया, वे शीघ्र ही झगडालू स्वभाव की बन गई। उनकी यह आदत उनकी संतान में भी दिखाई दी (यहां भी मादाओं ने नरो को पछाड़ दिया था)।

कुछ अकशेरुकी समुद्री जीवों में जिंक वही भूमिका निभाता है जो लोहा मनुष्य के रुधिर में। कुछ मोलस्कों के अंदर इसकी मात्रा 12% तक मिलती है। सांप के विष में इसकी काफी मात्रा मिलती है, विशेष रूप से कोबरे तथा गेहुअन के विष में। वैज्ञानिको का विचार है कि यह तत्त्व सांप को उसके अपने विष से रक्षा करता है।

वनस्पति जगत् में जिंक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उदाहरणतया, अगर मिट्टी मे जिंक नही होता, तो गेहूं की फसल नष्ट हो सकती है। अंगूर, मौसमी, नाशपाती में काफी जिंक होता है। यह टमाटर, प्याज तथा सलाद में भी होता है। कुकुरमुत्तों की कुछ किस्मों मे यह तत्त्व काफी बडी मात्रा में उपस्थित होता है।

पुराने जमाने से यह देखा जा रहा है कि कई वनस्पतियां धातुओ के निक्षेपों के पास उगना पसद करती है। उदाहरण के लिए, कुछ किस्मों के फूल जिंकयुक्त भूमि से ज्यादा लगाव रखते हैं। प्राचीन खननकर्मी इस बात को जानते थे। आधुनिक भूविज्ञानी भी इस जानकारी से लाभ उठा रहे है।

स्फैलेराइट जिंक का सबसे विस्तृत खनिज है। इसे यशदब्लैंड भी कहते हैं। इसे ऐसा नाम क्यो दिया गया है? बात यह है कि विभिन्न तत्त्वों के ऐलॉय इस खनिज को सभी संभव रगों में रंग देते हैं जिससे इसकी पहचान मुश्किल हो जाती है तथा गलती से दूसरे खनिज को स्फैलेराइट समझ लिया जाता है। अल्ताई पहाडो मे एक ऐसा अयस्क मिलता है जो जिंक-ब्लैंड तथा भूरे स्पार का ऐलॉय होता है। ये धारीदार पत्थर जंगली जानवर से लगते है।

नियमानुसार जिंक प्रकृति मे अर्धधात्त्विक अयस्को के रूप में मिलता है

जिनमे जिंक के अलावा लेड, ताम्र, लोहा तथा कई विरल तत्त्व उपस्थित होते है। यूरोप में मिले जिंक और लेड के एक निक्षेप ने एक नए देश को जन्म दिया। यह पिछली शताब्दी की बात है। नेपोलियन की हार के बाद उसके राज्य का एक भाग विजेता देशों को मिलना था। बंटवारे के दौरान नीदरलैंड तथा प्रुसिया मे मोरेने जिले के ऊपर झगड़ा हो रहा था। यह इलाका दोनो देशों की सीमाओ पर स्थित था। आखिर 1816 में एक समझौता हो गया जिसके अतर्गत जिले का एक भाग नीदरलैंड को और एक भाग प्रुसिया को दे दिया गया। जिस इलाके मे जिंक तथा लेड के बहुत सारे निक्षेप थे (जिनकी वजह से झगड़ा हो रहा था) उसे तटस्थ घोषित कर दिया गया। इस प्रकार एक नए, बहुत ही छोटे गणतत्र का जन्म हुआ जिसका नाम मोरेने रखा गया। इसका क्षेत्रफल केवल 3.3 वर्ग किलोमीटर था तथा इसकी आबादी कुछ सौ लोगो तक सीमित थी। जब देश बन गया तो उसके प्रभुत्व तथा खनिजों की रक्षा का इंतजाम भी करना पडा। देश में सेना बनाई गई जिसमें केवल.. एक सैनिक था। वह सैनिक भी था और कमाडर भी। पिछली शताब्दी के आठवे दशक मे इस देश में जिंक तथा लेड अयस्कों के सारे भंडार खाली हो गए, परतु यह देश 1920 तक बना रहा। इसके बाद यह बेल्जियम में मिल गया।

पिछले दिनों विशेषज्ञो ने एक अद्वितीय खजाने की ओर ध्यान देना शुरू कर दिया है। लाल सागर मे 2 किलोमीटर की गहराई पर जिंक, ताम्र तथा रजत के अर्धतरल अयस्क मिले है। एक विशेष जहाज के निर्माण की योजना बनाई गई है जिसके डेक से सागर के तल तक पाइप बिछाए जाएंगे, जिनके रास्ते अयस्क ऊपर लाए जाएगे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जिंक अयस्क केवल पृथ्वी के नीचे से ही नही, पानी के अंदर से भी निकाले जा रहे हैं। इस धातु के गुणो का अध्ययन अतरिक्ष मे भी किया जा रहा है : सोवियत कक्षक-स्टेशन 'साल्यूत' पर जिंक के क्रिस्टल बनाए गए तथा लोहे के साथ इसका ऐलॉय भी प्राप्त किया गया। ये प्रयोग बल्गारिया के वैज्ञानिकों के दिमाग की खोज थी। देखते हैं कि अंतरिक्ष का जिंक किस काम आता है?

यूरेनियम शलाकों की 'पोशाक'

मार्टिन क्लाप्रोत की खोज—अपने सपने में क्या देखा?—परदादा के जमाने की बात—'नौकरी की तलाश में हूं'—पक्का दोस्त—विचारों में बहुत अंतर है—नमक के अम्ल से कितनी हानि होती है?—बहुरंगी धंधा—जरूरत से ज्यादा गरम हो जाने पर भी इसका कुछ नहीं बिगड़ता है—'भाइयों' की किस्मत—'आगे जाना मना है'—'नाउटिलस' का रिएक्टर—अच्छाइयां और बुराइयां—समस्याओं की बौछार—कूड़े के ढेर से जिर्कोनियम मिलता है—समुद्री तट पर—गौन 'पेशे'—नेर्न्स्ट लैम्प—मोण्टलूई के किले में क्या हो रहा है?—'सूरज की राजधानी'—गलतफहमी दूर करनी है

1789 मे बर्लिन विज्ञान अकादमी के एक सदस्य जर्मन रसायनज्ञ मार्टिन हेनरीख क्लाप्रोत ने जिर्कोन के खनिज की विभिन्न किस्मों का विश्लेषण करते समय एक नए तत्त्व की खोज कर डाली जिसका नाम उन्होंने जिर्कोनियम रखा। अतिसुंदर रंगो (सुनहरा, नारंगी, गुलाबी आदि) के कारण जिर्कोनियम सिकंदर महान् के जमाने से एक बहुमूल्य पत्थर के रूप मे प्रसिद्ध चला आ रहा है। इसका यह नाम शायद अरबी शब्द 'जारकून' से लिया गया है जिसका अर्थ है—सुनहरा।

पुराने जमाने में जिर्कोनियम का प्रयोग केवल फैशन के लिए ही नहीं बल्कि तावीज के रूप मे भी किया जाता था। यह विश्वास किया जाता था कि यह पत्थर आदमी को जिंदादिल बना देता है, गदे विचारों तथा दु:ख को भगा देता है, मनुष्य को अक्लमद बना देता है तथा समाज में उसकी इज्जत बढाता है। पुराने जमाने में एक रूसी हकीम ने अपनी एक कितब मे पूर्ण विश्वास के साथ निम्न शब्द लिखे . 'जो आदमी लाल रंग का नग पहनता है उसे न तो बुरे सपने आते है और न ही डर लगता है। इसके अलावा उसे एक भला आदमी भी समझा

जाता है।'

स्वीडिश रसायनज्ञ जान्स वर्जेलियस ने 1824 में जिर्कोनियम प्राप्त किया। वे प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने इस तत्त्व का स्वतंत्र रूप में प्राप्त किया था। परन्तु उन दिनों शुद्ध जिर्कोनियम प्राप्त करना असंभव समझा जाता था। बहुत लंबे अर्से तक इस तत्त्व के भौतिक गुणों का भी अध्ययन नहीं किया गया। इसी वजह से दसियों साल तक अन्य कई उपयोगी धातुओं की तरह जिर्कोनियम को भी कोई काम नहीं दिया गया। इसके विपरीत लोहा, ताम्र, लेड जैसी धातुएं जानती थीं कि काम कैसे ढूंढा जाता है और वे कभी खाली नहीं बैठी थी।

केवल हमारी शताब्दी के आरभ मे वैज्ञानिकों को शुद्ध जिर्कोनियम प्राप्त करने मे सफलता मिली और तभी उन्हें इसके गुणो की पूरी-पूरी जानकारी भी प्राप्त हुई। उन्होंने यह देखा कि इस तत्त्व का एक पक्का दोस्त है जो हमेशा इसके साथ रहता है। इस दोस्त का नाम हैफनियम है। दुर्भाग्यवश 130 से भी ज्यादा सालों तक वैज्ञानिको को यह पता ही नहीं था कि जिर्कोनियम के अदर हैफनियम उपस्थित होता है। कई बार तो इसकी मात्रा बहुत ही ज्यादा होती है। इसकी वजह यह है कि दोनों तत्त्वो के रासायनिक गुणों मे बहुत समानता तो है, बल्कि अतर भी है। इसका वर्णन हम थोडी देर बाद करेंगे।

शुद्ध जिर्कोनियम देखने मे स्टील की तरह लगता है परतु मजबूती और तन्यता में यह स्टील से उत्तम होता है। जिर्कोनियम मे एक विशेष गुण यह है कि कई आक्रमणशील माध्यमों का इस पर कोई असर नहीं पडता है। सक्षारणप्रतिरोधता में यह नियोबियम तथा टाइटेनियम जैसी सक्षारणरोधी धातुओं से भी श्रेष्ठ होता है। 60°C के ताप वाले 5% नमक अम्ल के अंदर एक साल के दौरान जंगरोधी स्टील अगर 2.6 मिलीमीटर के लगभग हिस्सा गवा देता है और टाइटेनियम लगभग 1 मिलीमीटर, तो जिर्कोनियम इनसे 1000 गुना कम भाग गंवाता है। जिर्कोनियम मे क्षारों के प्रति भी उच्च प्रतिरोधक्षमता होती है।

इस गुण में टण्टलम भी इसका मुकाबला नहीं कर सकता
के सबसे शक्तिशाली शत्रु के नाम से प्रसिद्ध है अग्नी
के कारण जिर्कोनियम चिकित्सा के एक गर्भार क्षेत्र-न्यूरा
किया जाता है। इसके ऐलॉयों से रक्त का बहाव रोकने
शल्यचिकित्सा यंत्र बनाए जाते है। कई बार दिमाग के आपरेश
से बने तंतुओं से टांके भी लगाए जाते है।

जैसे ही वैज्ञानिको को यह पता चल गया कि स्टील
से स्टील के गुण उत्तम हो जाते है, उन्होने जिर्कोनियम का
के रूप में मान्यता दे दी। इस दिशा में इसके विविध उ
की मजबूती तथा शक्ति बढाता है, उसे मशीनरी कार्यों तथा
है, उसके अदर उपस्थित सल्फाइडों का चूरा कर देता है
बना देता है।

अगर निर्माण-कार्य में उपयुक्त स्टील में जिर्कोनियम
स्टील का स्केल प्रतिरोध बहुत बढ़ जाता है : 40-45 श्रेणी
जिर्कोनियम की मात्रा 0.16-0.37% तक होती है) 3 घंटे
वजन की कमी जिर्कोनियमरहित स्टील से 6-7 गुना कम

जिर्कोनियम निर्माण-इस्पात की सक्षारण प्रतिरोध-क्षम
है। उदाहरण के लिए, अगर 20G श्रेणी के स्टील को 3
डुबोकर रखा जाए तो उसके 1 वर्ग मीटर क्षेत्र के वजन म
आती है परंतु स्टील के इसी नमूने में अगर 0 19% जिर्कोनि
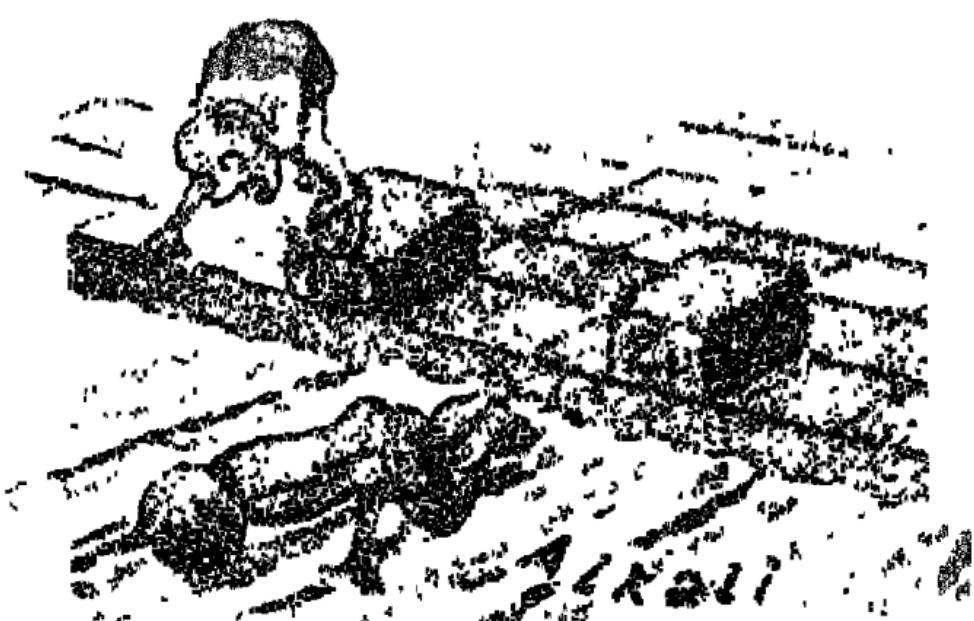
तो इसका वजन केवल 7.6 ग्राम कम होगा।

जिर्कोनियम स्टील बहुत उच्च ताप तक गरम किया जा सकता है। इस
फोर्जन, ताप-उपचार तथा स्टैम्पिंग आदि प्रक्रियाओं की गति तीव्र हो जाती है

ऊष्म संक्षारणरोधक तथा अत्यधिक मजबूत होने के साथ-साथ जिर्कोनिय
स्टील में उत्तम तन्यता भी होती है जिसके कारण यह पतली दीवारों के निर्माण में साधारण स्टील की तुलना में अधिक प्रयुक्त किया जाता है। उदाहरणतया, 10X श्रेणी के स्टील में जिर्कोनियम मिलाकर 2 मिलीमीटर मोटे पुर्जे बनाए जा सके है परन्तु जिर्कोनियम के बिना इन पुर्जों की दीवारों की मोटाई 5-6 मिलीमीटर से कम नहीं की जा सकी है। जिर्कोनियम कई अलौह धातुओं के साथ भी उपयोगी ऐलॉय बनाता है। जिर्कोनियम से ताम्र की मजबूती बहुत ज्यादा बढ़ जाती है तथा उसकी वैद्युत चालकता पहले जितनी ही रहती है। ताम्र-कैडमियम ऐलॉय में अगर 0.35% जिर्कोनियम मिला दिया जाए तो ऐलॉय की मजबूती तथा वैद्युत चालकता उच्च हो जाती है। जिर्कोनियम से ऐलुमिनियम ऐलायों की मजबूती, तन्यता, संक्षारण तथा तापप्रतिरोध बहुत बढ़ जाते हैं। 0.6-0.7% जिर्कोनियम से मैगनीशियम-जिंक ऐलॉयों की मजबूती दुगुनी हो जाती है। 14% जिर्कोनियम वाले टाइटेनियम ऐलॉय को अगर 100°C ताप पर 5% नमक अम्ल में रखा जाए तो उसका संक्षारण प्रतिरोध साधारण शुद्ध टाइटेनियम के मुकाबले 70 गुना अधिक निकलता है 5% जिर्कोनियम से मालिब्डेनम काफी सख्त हो जाता है। जिर्कोनिय मैगनीज-पीतल में तथा ऐलुमिनियम, निकिल और लेड-कांसे में भी मिलाया जात है।

इतने सारे इज्जतदार काम मिले फिर भी जिर्कोनियम संतुष्ट नहीं था। उस
मनपसंद काम की तलाश जारी रखी और उसे ऐसा काम मिल भी गया। पर
इसका वर्णन करने से पहले हम आपको मार्टिन क्लाप्रोथ की प्रयोगशाला ले चल
है जहां इस तत्त्व का जन्म हुआ था।

बात यह है कि 1789 में क्लाप्रोथ ने जिर्कोनियम के अलावा एक और अद्वितीय तत्त्व की खोज की थी जिसे बीसवीं शताब्दी में विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र में अतिमहत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी थी। यह तत्त्व यूरेनियम था। उस समय क्लाप्रोथ और उनके साथियों को इन दोनों 'भाइयों'- जिर्कोनियम और यूरेनियम के भविष्य की कोई जानकारी नहीं थी। दोनों तत्त्व काफी समय तक एक दूसरे से दूर रहे। 150 साल तक दोनों में किसी तरह के संबंध स्थापित नहीं हुए। केवल बीसवीं शताब्दी में आकर इन दोनों की फिर से मुलाकात हुई। शुरू में इस बात की जानकारी केवल कुछ गिने-चुने वैज्ञानिकों तथा इंजीनियरों को थी जो परमाणु ऊर्जा पर काम कर रहे थे और यह बात सब लोग जानते ही हैं कि इस विषय का विस्तृत प्रचार नहीं होता है। दोनों तत्त्वों की मुलाकात परमाणु रिएक्टरों में हुई जहां यूरेनियम तो नाभिकीय ईंधन का काम कर रहा था और जिर्कोनियम यूरेनियम शलाकों के आवरण के रूप में इस्तेमाल हो रहा था। पाठकों की विशेष जानकारी के लिए हम यह बताना चाहेंगे कि इस घटना से कई साल पहले अमरीकी वैज्ञानिकों ने परमाणु रिएक्टर में जिर्कोनियम इस्तेमाल करके देखा था और ऐसा रिएक्टर अमरीका की पहली परमाणु पनडुब्बी 'नॉटिलस' पर फिट किया गया था। परंतु शीघ्र ही उन्हें यह पता चल गया कि जिर्कोनियम से रिएक्टर के सक्रिय क्षेत्र के स्थायी पुर्जे बनाने की जगह ईंधन तत्त्वों के आवरण बनाना ज्यादा फायदेमंद रहेगा। बस तभी यूरेनियम और जिर्कोनियम की मुलाकात हो गई।

जिर्कोनियम के चुनाव की कोई वजह थी। भौतिकविदों को यह पता था कि अन्य धातुओं के मुकाबले जिर्कोनियम न्यूट्रानों को सरलता से निकलने देता है (न्यूट्रान पारदर्शता)। यूरेनियम शलाकों के आवरण के लिए उन्हें ऐसी धातु की ही तलाश थी। सच है कि कुछ अन्य धातुओं—मैग्नीशियम, ऐलुमिनियम तथा टिन में भी ऐसी विशेषता है परंतु ये धातुएं दो कारणों से परमाणु रिएक्टरों में इस्तेमाल नही की जा सकती—पहला यह कि इनका गलनांक निम्न होता है तथा दूसरा यह कि ये उच्च ताप नहीं सह सकतीं। जिर्कोनियम 1850 °C पर प्रगलित होता है इसलिए इसमें परमाणु ऊर्जा के तापों को सहने की क्षमता होती है।

परंतु जिर्कोनियम में कुछ कमियां भी है जिनकी वजह से इसे इतना जिम्मेदार काम देते हुए डर लगता है। बात यह है कि न्यूट्रानो के लिए केवल अतिशुद्ध जिर्कोनियम पारदर्शी होता है। बस यहीं हैफनियम की याद आ जाती है जिसे रासायनिक गुणों के कारण जिर्कोनियम का 'जुड़वां भाई' समझा जाता है। इतनी समानता होते हुए भी न्यूट्रानो के बारे में दोनों मे बहुत मतभेद है। हैफनियम

वह शक्ति से न्यूट्रानों को ग्रहण करता है (जिर्कोनियम से 500-600 गुना ज्यादा शक्ति से)। इसके अलावा अगर जिर्कोनियम में हेफनियम की मात्रा लगभग नगण्य है (होमियोपैथी की गोलियों की तरह) तब भी वह जिर्कोनियम का 'रक्त' खराब कर सकता है और उसकी न्यूट्रान पारदर्शिता नष्ट कर देता है। इसी वजह से परमाणु रिएक्टरों में जो जिर्कोनियम इस्तेमाल किया जाता है उसमें हेफनियम की मात्रा 0.02% से अधिक नहीं होती। हालांकि इतनी थोड़ी-सी अशुद्धि भी काम जरूर बिगाड़ती है -वह जिर्कोनियम की न्यूट्रान पारदर्शिता 6.5 गुना कम कर देती है।

चूंकि प्रकृति में ये दोनों धातुएं प्रायः एक-दूसरे के साथ रहती हैं इसलिए हेफनियम से पूरी तरह मुक्त जिर्कोनियम प्राप्त करना बड़ा ही मुश्किल काम है। परंतु रसायनज्ञों तथा धातुविज्ञानियों को यह काम हाथ मे लेना ही पड़ा क्योंकि परमाणु ऊर्जा उद्योग को इस धातु की सख्त जरूरत थी।

जैसे ही उन्होंने इस समस्या का हल ढूंढ़ लिया, एक नई समस्या सामने आई। अब इस बात का ख्याल रखना था कि शुद्धतम जिर्कोनियम के वेल्डिंग के दौरान उसमें 'फालतू परमाणु' न मिले क्योंकि वे धातु का सत्यानाश कर सकते थे। उनकी उपस्थिति में न्यूट्रॉनों के मार्ग में बाधा आ सकती थी। इसके अलावा वेल्डिंग का काम इस तरह से करना था कि धातु की समागता न बिगड़े : धातु और उसमें वेल्डिंग से बने टांकों मे एक जैसे गुण होने चाहिए थे। इस काम के लिए इलेक्ट्रानिक पुंज की सहायता ली गई जिसकी मदद से वेल्डिंग की परिशुद्धता प्राप्त हुई और उक्त समस्या पूर्णतया हल हो गई। परिणाम यह हुआ कि जिर्कोनियम से यूरेनियम शलाकों की पोशाक बनाई जाने लगी।

बस तभी जिर्कोनियम के उत्पादन मे बडी तेजी से वृद्धि लाई गई—1949

से 1959 के दौरान विश्व मे इस धातु का उत्पादन 1000 गुना बढ़ गया। इसमे पहले अन्य खनिजो की प्राप्ति के दौरान जो जिर्कोन रेत मिलती थी उसे बेकार समझकर फेक दिया जाता था परतु अब इस कूड़े की कीमत का पता चल गया था। उदाहरणतया, कैलीफोर्निया मे पुरानी नदियो के तलों से स्वर्ण निकालते समय जिर्कोनियम की बहुत बडी मात्रा प्राप्त हुई परतु किसी काम का न होने के कारण इसे कूडे के ढेर मे फेक दिया गया। अमरीका में आरीजोना प्रात के समुद्री तट पर युद्ध के दौरान जब क्रोमाइट निकाला गया तो खनिको को इसके साथ जिर्कोनियम भी मिला परंतु उन दिनो उद्योग-जगत् की इस धातु मे कोई दिलचस्पी नही थी जिसकी वजह से इसे वही पडा रहने दिया गया। परन्तु युद्ध के तुरन्त बाद जैसे ही जिर्कोनियम की धूम मचनी शुरू हुई, कूड़े के ये सारे ढेर 'स्वादिष्ट भोजन' में बदल गए।

आजकल सयुक्त राज्य अमरीका, आस्ट्रेलिया, ब्राजील, भारत तथा कुछ पश्चिमी अफ्रीकी देशो में जिर्कोनियम के विशाल निक्षेपो पर काम चल रहा है। अक्सर समुद्री तटो की रेत में जिर्कोनियम अयस्क काफी मात्रा मे मिलते हैं। उदाहरणतया, आस्ट्रेलिया के समुद्री तट पर 150 किलोमीटर इलाके मे जिर्कोनियम सहित रेत फैल गए हैं। सोवियत सघ में भी जिर्कोनियम अयस्कों के काफी भडार है।

जिर्कोनियम की माग हर साल बढ़ती जा रही है क्योंकि यह धातु नए-नए धधों मे उपयोगी सिद्ध हो रही है। गरम अवस्था में गैसों की अवशोषण-क्षमता के कारण यह धातु इलेक्ट्रोवाक्युम लैपो तथा रेडियो तकनीक मे प्रयुक्त की जा रही है। धात्विक जिर्कोनियम पाउडर तथा दहनशील पदार्थों के मिश्रण से तेज प्रकाश देने वाले राकेट बनाए जाते हैं। ऐलुमिनियम की पन्नी के मुकाबले जिर्कोनियम की पन्नी के जलने पर 1.5 गुना ज्यादा प्रकाश निकलता है (ऑक्सीजन की मात्रा एक-सी रहती है)। जिर्कोनियम फ्लैशें बहुत सुविधाजनक रहती हैं क्योंकि वे बहुत कम जगह घेरती है—वे एक उगली-स्तन जितनी छोटी हो सकती हैं। अतरिक्ष वैज्ञानिक जिर्कोनियम ऐलॉयों मे काफी दिलचस्पी ले रहे हैं क्योंकि ऐसी सभावना है कि इस तत्त्व के तापरोधक ऐलॉयो से अतरिक्ष यानो के अगले हिस्से बनाए जा सकते है।

बरसातियो में नमी से रक्षा करने की क्षमता का श्रेय जिर्कोनियम को ही तो है। इसके लवण विशेष ससेचित इमल्शन मे मिले होते हे जिससे बरसातियो का कपड़ा भिगोया जाता है। जिर्कोनियम लवण छपाई के रंगों, विशेष वार्निशों तथा प्लास्टिक मे भी इस्तेमाल किए जाते हैं। उच्च-आक्टेन ईधन के उत्पादन

यौगिक उत्प्रेरको की भूमिका निभाते है। जिर्कोनियम सल्फटा
मंशोधक गुण होते है।

यम टेट्राक्लोराइड को एक बढिया काम मिल गया है। इस यौगि
यह ह कि इसकी विद्युतचालकता दाब के अनुसार बदलती रह
के सिद्धांत पर विद्युत-दाब के मापक का निर्माण किया गया
। भी परिवर्तन आने पर उपकरण मे विद्युत धारा भी बदल ज
के मापको की सहातया से 0 00001 से लेकर 1000 ऐटमॉस्फि
नापा जा सकता है।

ड्यो यंत्रों, अल्ट्रा-साउड जेनेरेटरो, ध्वनि तरगों की आवृत्ति
ादि में दाबक्रिस्टलो की जरूरत पडती है। कई बार इन्हें बहुत अधि
करना पडता है। इस काम के लिए निस्संदेह लेड जिर्कोनेट क्रिस
सिद्ध हो सकते है क्योंकि 300°C ताप तक इनके दाब वि
ने ही रहते हैं।

यम का वर्णन करते समय इसके डाइऑक्साइड की उपेक्षा न
क्योंकि वह प्रकृति मे सर्वाधिक उच्चतापसह पदार्थो में गिना जा
नांक 2700°C के आसपास होता है। जिर्कोनियम डाइऑक्सा
मूओं, तापप्रतिरोधी एनैमल तथा दुर्गलनीय काच आदि के निम
से प्रयोग किया जाता है। जिर्कोनियम बोराइड का गलनांक इस
है। इस मिश्रधातु से तापवैद्युत युग्मों के लिए ऐसे रक्षा आवरण बन
गलित कच्चे लोहे मे 10 15 घंटे तक तथा द्रव स्टील मे 2-3 ि

यूरानियम शलाका की पोशाक /

तक लगातार रखा जा सकता है जबकि क्वार्ट्ज आवरण वाले माध्यमों में 5 सेकेंड से ज्यादा नहीं टिक सकते और वे भी सिर्फ एक या दो बार

जिर्कोनियम डाइआक्साइड में एक और अतिशय गुण पाया जाता है। ज्यादा गरम किए जाने पर यह इतना ज्यादा प्रकाश उत्पन्न करता है कि इसे प्रदीप्त तकनीक मे इस्तेमाल किया जा सकता है। पिछली शताब्दी के अंत में जर्मन भौतिकविद् वाल्टर नेर्न्स्ट ने इस गुण पर ध्यान दिया। उनके बनाए लैंप में (जो इतिहास में नेर्न्स्ट लैंप के नाम से प्रसिद्ध है) दीप्त शलाकें जिर्कोनियम डाइऑक्साइड की ही तो बनी थीं। आज भी प्रयोगशालाओं में कभी-कभी यह पदार्थ एक प्रकाश स्रोत के रूप में इस्तेमाल किया जाता है।

फ्रांस में वैज्ञानिकों ने एक ऐसी विधि ढूंढ़ी है जिसके द्वारा सौर-ऊर्जा की सहायता से जिर्कोनियम डाइऑक्साइड से जिर्कोनियम प्राप्त किया जा सकता है। पूर्वी पिरेनेई पहाड़ियों मे समुद्री तट से 1500 मीटर ऊंचाई पर मोण्टलूई किले में एक सौर-भट्ठी लगाई गई है जहां प्रोफेसर फेलिक्स ट्रॉम्बे के नेतृत्व में वैज्ञानिकों का एक दल इस दिशा में कार्य कर रहा है। मोण्टलूई में आयोजित एक सिम्पोजियम मे इस विधि का प्रदर्शन किया गया।

इस सिम्पोजियम के एक भागी ने निम्न शब्दों में 'सौर-जिर्कोनियम' की प्राप्ति की विधि का वर्णन किया : 'धीरे-धीरे' एक विशेष प्लेटफार्म सफेद मुलायम पाउडर को एक विशाल परवलयिक दर्पण की ओर उठाता है। जैसे ही यह प्लेटफार्म दर्पण के फोकस मे आ जाता है, पाउडर में से सफेद रंग की तीव्र ज्वाला निकलने लगती है जिससे वैज्ञानिकों और इंजीनियरों की आंखें चौंधिया जाती है।

'यह सफेद पाउडर जिर्कोनियम डाइऑक्साइड है। परवलयिक दर्पण के फोकस मे सांद्रित सौर-किरणों का तापमान 3000°C तक पहुंच जाता है जिससे पाउडर पिघल जाता है। इस वक्त ज्वाला की कौंध केवल काले चश्मों से देखी जा सकती है। प्लेटफार्म पर पड़ा गलित पदार्थ का छोटा-सा ढेर पुराने जमाने के एक ज्वालामुखी के विस्फोट की याद दिलाता है।'

इस यूनिट में एक विशेष सौर परावर्तक लगा होता है जो असंख्य दर्पणों से बना होता है। इसका व्यास 12 मीटर है तथा यह प्रकाशतन्त्रों की सहायता से अपने आप सूरज के पीछे-पीछे घूमता रहता है। परावर्तक किरणों को संकेंद्रित करके-उन्हें विशाल परवलयिक दर्पण की ओर भेजता है जिसका व्यास 10 मीटर है। इस दर्पण की तापक्षमता 75 किलोवाट है तथा यही सौर किरणों को भट्ठी मे सकेंद्रित करता है।

मोण्टलूई से 10 किलोमीटर दूर तक छोटे-से पहाड़ी गांव ओडेयो में दुनिया

का सबसे बड़ी सौर भट्ठी लगाई गई है यहा के लोग अपने गाव को बडे गर्व से सूरज की राजधानी कहते है . हर आगंतुक को इस गाव में एक विचित्र नजारा दिखाई देता है। उसे ऐसा लगता है जैसे किसी काल्पनिक फिल्म की शूटिंग हो रही हो। पुराने नगर के पास एक बहुत आधुनिक कई मंजिली इमारत दिखाई देती है—यह सौर-ऊर्जा की प्रयोगशाला है। इस इमारत का उत्तरी भाग एक विशाल परवलयिक दर्पण से बना है जिसका व्यास 50 मीटर के लगभग है। इस इमारत के बिल्कुल सामने पहाड़ी की ढाल मे दसियों विशाल दर्पण (हीलियोस्टेट) पंक्तिबद्ध लगाए गए है। ये हीलियोस्टेट सौर-किरणों को परवलयिक दर्पण की ओर परावर्तित कर देते है जहां से वे एक पुंज के रूप मे प्रगलन भट्ठी में फेंकी जाती है जिसके फलस्वरूप भट्ठी का तापमान 3500°C तक पहुंच जाता है।

ओडियो सौर-भट्ठी का दैनिक उत्पादन 2.5 टन है जबकि मोण्टलूई की भट्ठी प्रतिदिन केवल 60 किलोग्राम जिर्कोनियम देती है। परावर्तित सौर किरणों द्वारा भट्ठी मे उत्पन्न ताप 1000 किलोवाट विद्युत शक्ति के बराबर होता है।

सौर-भट्ठियों की मुख्य विशेषता यह है कि प्रगलन प्रक्रिया के दौरान धातु मे किसी भी तरह की अशुद्धियां नहीं मिलती है और वे आएं भी कहा से? इसी वजह से जो भी धातुएं तथा मिश्रधातु सौर-ऊर्जा से प्राप्त की जाती है वे हमेशा अतिशुद्ध होती हैं तथा उनकी बहुत मांग रहती है। इस विधि से एक और लाभ यह है कि सौर-ऊर्जा मुफ्त मिल जाती है।

अंत में एक गलतफहमी हम जरूर दूर करना चाहेगे। भू-पर्पटी में जिर्कोनियम की मात्रा ताम्र, निकिल, लेड और जिंक से ज्यादा है परंतु फिर भी जिर्कोनियम को एक विरल तत्त्व माना जाता है। किसी जमाने में यह बात जरूर सच थी क्योंकि तब जिर्कोनियम अयस्कों की एक तो कमी थी और दूसरी बात यह है कि इसकी प्राप्ति भी बहुत कठिन थी। इसके अलावा तकनीक में इसका प्रचलन भी बहुत कम था। परतु आज जब जिर्कोनियम का उत्पादन हर साल बढता जा रहा है और इसे नए-नए कामों में प्रयुक्त किया जा रहा है, इसे विरल धातु कहना अन्याय होगा। यह बात ठीक है कि बीते दिनों को भूला नही जा सकता, अतः अगर आपसे जिर्कोनियम की उत्पत्ति के बारे में पूछा जाए तो आप बड़े गर्व के साथ कह सकते हैं कि यह 'विरल तत्त्वों' में से एक है।

फ्लैट नंबर इकतालिस

आपका घर कहां है?—झगड़ेबाजी न हो—पड़ोसियों के मन में उत्सुकता पैदा होती है—कोलंबिया नदी की घाटी से एक पार्सल मिलता है—150 साल बाद—एक नहीं दो आविष्कार—'एक बार फिर पूछताछ की जाएगी'—दुःख की देवी के सम्मान में—'कोलंबियनों' को अंतर्राष्ट्रीय संगठन का फैसला मानना पड़ता है—जिगरी यार—काम करने लायक है—हर बुराई में कुछ भलाई भी होती है—मान्यता मिल जाती है—कई जरूरी काम करने हैं—निर्वात काम आता है—सर्दी का डर नहीं है—फर्म 'वैस्टिंगहाउस' की चालाकी—प्रतिरोध लुप्त हो जाता है—जिर्कोनियम का प्रतिद्वंद्वी—गैसों का दुश्मन—'अस्पताल का एक जिम्मेदार कर्मचारी'—'वित्तीय कार्रवाइयां'—भविष्यवाणी सच सिद्ध होती है

पिछली शताब्दी के मध्य तक दसियों रासायनिक तत्त्वों की खोज हो चुकी थी परंतु दुर्भाग्यवश उनके पास 'रहने के लिए' अपनी कोई जगह नहीं थी। 1869 में प्रसिद्ध रूसी वैज्ञानिक मेंडेलीफ ने जब अपनी आवर्त सारणी की महान् इमारत बनाई तब कहीं इन सब तत्त्वों को सिर छिपाने की जगह मिली।

'फ्लैट' बांटते समय भावी निवासियों के विज्ञान तथा इंजीनियरी में योगदान तथा अनुभव आदि को कोई महत्त्व नहीं दिया गया। केवल उनके व्यक्तिगत गुणों का ख्याल रखा गया (खास तौर पर, परमाणु भार का)। इसके अलावा उनकी प्रवृत्तियों तथा पड़ोसियों के साथ समानता पर भी ध्यान दिया गया। पारस्परिक संबंधों (हमारा मतलब रासायनिक संबंधों से है) ने भी इस काम में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। झगड़ेबाजी से बचाने के लिए भिन्न-भिन्न विचारों वाले निवासियों के फ्लैट एक-दूसरे से दूर रखे गए।

पांचवें प्रवेशद्वार में (अर्थात् पांचवें ग्रुप में) पांचवीं मंजिल पर (अर्थात् पांचवें

आवर्त की छठी श्रेणी में) फ्लैट नंबर इकतालिस में एक नए मालिक को स्थ
दिया गया, जिसका नाम बड़ा सुंदर था—नियोबियम। पड़ोसियों को यह जा
की बड़ी उत्सुकता थी कि यह नया मालिक है कौन और आया कहां से ?

सत्तरहवीं शताब्दी के मध्य में कोलंबिया नदी (उत्तरी अमरीका) की घा
में लोगों को सुनहरी अभ्रक के साथ गहरे काले रंग का एक खनिज भी मिल
उन दिनों नई दुनिया के विभिन्न क्षेत्रों में जितने भी नए खनिज मिल रहे थे उन्हें ब्रिटेन भेजा जा रहा था। इस खनिज की किस्मत में भी ब्रिटिश संग्रहालय की शोभा बढ़ाना लिखा था। 150 साल तक यह खनिज (बाद में इसका नाम कोलंबाइट पड़ गया था) संग्रहालय में एक शीशे के बक्से में एक नमूने की तरह रखा रहा और इसे लोह-अयस्क समझा जाता रहा। 1801 में चार्ल्स हैटचेर ने, जो उस वक्त एक रसायनज्ञ के रूप में विख्यात हो चुके थे, इस खूबसूरत खनिज में दिलचस्पी ली। उन्होंने इसका विश्लेषण किया। पता चला कि खनिज में लोहे, मैंगनीज तथा ऑक्सीजन के अलावा एक अज्ञात तत्त्व उपस्थित है जो अम्लीय ऑक्साइड के गुणों वाला पदार्थ बनाता है। हैटचेर
इस तत्त्व का नाम कोलंबियम रखा।

एक साल बाद 1802 में स्वीडिश वैज्ञानिक एकेबर्ग ने स्कैण्डीनेवियन दे
के कुछ खनिजों में एक और नया तत्त्व पाया जिसका नाम उन्होंने टैण्टेलम र
(पौराणिक कथा के एक नायक के सम्मान में)। सच बात यह थी कि यह न
इस बात का प्रतीक था कि इस नए तत्त्व का अध्ययन एक बहुत मुश्किल क
लग रहा था (इस तत्त्व के ऑक्साइड को अम्लों में घोलना असंभव हो रहा था
टैण्टेलम और कोलंबियम के गुणों में पूर्ण समानता थी, इस कारण बहुत स
वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि उनका दो तत्त्वों से नहीं बल्कि एक ही त
से संबंध है और वह तत्त्व टैण्टेलम है। सुप्रसिद्ध रसायनज्ञ बर्जेलियस भी इ
मत से सहमत थे।

आगे चलकर वर्जेलियस को अपने फैसले पर शक होने लगा। उन्होंने अपने एक विद्यार्थी, प्रसिद्ध जर्मन रसायनज्ञ व्योलर को निम्न शब्दों का एक पत्र लिखा 'तुम्हारा X वापस भेज रहा हू। मैंने सारे तरीके अपनाकर देखे पर हर बार अस्पष्ट उत्तर मिले। मैंने पूछा—'क्या तुम टाइटेनियम हो?' उसने जवाब दिया—'क्या व्योलर ने तुम्हें नही बताया है कि मैं टाइटेनियम नही हू?' मैने उससे यह कबूल करवाने की कोशिश की कि वह जिर्कोनियम है परतु उसने जवाब दिया कि वह सोडे मे घुल जाता है। जबकि जिर्कोनियम सहित मिट्टी मे यह गुण नही होता है। 'अच्छा, तो क्या तुम 'मेरे अदर टिन है जरूर परंतु बहुत थोडी मात्रा में।' 'ि ही हो सकते हो।' 'मैं उसका रिश्तेदार हूं परतु में कास्टिक घुल जाता हु और पीले-भूरे रंग के अवक्षेप में बदल जात कौन-सी बला हो?'—मैने पूछा। तब मुझे ऐसा लगा जैसेवि 'मेरा अभी तक कोई नाम ही नहीं रखा गया है।' गडबड़ी नहीं कि वास्तव में उसने ये शब्द कहे या नही क्योंकि वह था। तुम तो जानते ही हो कि मुझे दाएं कान से कम सु कान बिल्कुल ठीक है इसलिए मै इस शरारती को तुम्हारे पा तुम इससे पूछताछ करो।'

परंतु व्योलर भी हैटचेर तथा एकेबर्ग द्वारा आविष्कृत सबंध समझने में असफल रहे। अंत मे एक जर्मन रसायन- 1844 में यह सिद्ध किया कि खनिज कोलबाइट मे दो तत्त्व टेण्टेलम और दूसरा कोलंबियम। उन्होने इस दूसरे तत्त्व रखा—नियोबियम। यह नाम उन्होंने यूनानी लोककथा की ए की पुत्री देवी नियोब के सम्मान में रखा जिसे दुःख की दे परतु बहुत दिनो तक कुछ देशो मे (अमरीका, ब्रिटेन) इसे

———

जाता रहा 195 मे अनराष्ट्रीय शुद्ध तथा अनुप्रयुक्त रसायन संगठन (UPAC) ने दो नामों के इस झगडे का निबटारा कर दिया। यह फैसला किया गया कि भविष्य में इन तत्त्व को केवल नियोबियम नाम से पुकारा जाएगा।

आरम्भ मे अमरीका तथा ब्रिटिश रसायनज्ञो ने इस फैसले का विरोध किया क्योंकि उनके विचार से यह ज्यादती वाली बात थी। परंतु संगठन का फैसला अंतिम था तथा अपील की कोई गुंजाइश नही थी। अतः 'कोलंबियनों' को यह फैसला मानना पड़ा और शीघ्र ही अमरीका व ब्रिटेन के रासायनिक साहित्य मे एक नया संकेताक्षर "Nb" दिखाई देने लगा।

नियोबियम और टैण्टेलम मे बहुत अधिक रासायनिक समानता होने के कारण दोनो तत्त्व प्रकृति में 'इकट्ठे रहते है।' इसका परिणाम यह हुआ कि बहुत समय तक इन धातुओं का औद्योगिक उत्पादन रुका रहा। 1866 मे पहली बार स्विटजरलैंड के एक रसायनज्ञ जोन गैलीसार्ड डि मारीन्याक इन 'जुडवा भाइयों' को पृथक् करने में सफल हुए। उन्होंने इन धातुओं के कुछ यौगिकों के विलय गुणों मे भिन्नता का लाभ उठाया : मिश्रित टैण्टलीफ्लुओराइड जल मे अविलेय होता है जबकि नियोबियमफ्लुओराइड जल मे आसानी से घुल जाता है। पिछले दिनों तक इन दोनों धातुओं को पृथक् करने के लिए डि मारीन्याक की विधि का प्रचलन रहा परन्तु अब कुछ नई बढ़िया विधियां अपनायी जा रही है जैसे, चयनशील निचोडन, आयन विनिमय, हेलाजनाइड परिशोधन आदि।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में एक फ्रेंच रसायनज्ञ हेनरी मोइसन ने विद्युत-तापीय प्रक्रम द्वारा शुद्ध नियोबियम प्राप्त किया (उन्होंने एक विद्युत भट्टी मे कार्बन द्वारा नियोबियम ऑक्साइड का अपचयन किया)।

आज के जमाने में धात्विक नियोबियम का उत्पादन एक बहुचरणी जटिल प्रक्रम है। सबसे पहले नियोबियम अयस्क को सांद्रित किया जाता है। फिर इसे विभिन्न गालकों (कास्टिक सोडे, हाइड्रोसल्फेट या सोडे) के साथ प्रगलित करके विक्षारित करते है जिसके परिणामस्वरूप नियोबियम तथा टैण्टेलम के हाइड्रो-ऑक्साइडो के अविलेय अवक्षेप प्राप्त होते है। इन्हें एक-दूसरे से अलग करने के लिए नियोबियम क्लोराइड या ऑक्साइड इस्तेमाल करते है। उच्च ताप पर इन यौगिकों का अपचयन करके नियोबियम पाउडर प्राप्त होता है जिसे निम्न विधि द्वारा एक ठोस व तन्य धातु मे परिवर्तित किया जाता है।

सबसे पहले उच्च दाब पर पाउडर को वर्गाकार या आयताकार शलाकों मे संहित कर लेते हैं। फिर इन शलाकों को निर्वात में कई चरणो में प्रगलित किया जाता है—अंतिम चरण पर तापमान 2350°C हो जाता है। इसके पश्चात्

नियोबियम का निवात आर्क भट्ठी में डाला जाता है जहां नि
धातु में परिवर्तित होने का प्रक्रम समाप्त हो जाता है।

पिछले कुछ सालों से इसके लिए एक नई विधि अपन
इलेक्ट्रान-पुंज प्रगलन विधि कहते हैं। इसकी विशेषता यह है
मध्यवर्ती चरणों से पीछा छुड़वा दिया है जैसे निर्वातन त
नियोबियम की ओर एक शक्तिशाली इलेक्ट्रान पुंज संकेंद्रि
पाउडर को पिघला देता है। प्रगलित धातु की बूंदें नियोबियम
लगती है। पाउडर के पिघलने के साथ-साथ सिल्ली का आक
इसे धीरे-धीरे चैंबर से बाहर निकाल लिया जाता है।

आपने देख ही लिया है कि नियोबियम अयस्क से नि
कितना जटिल काम है। परंतु इतनी मेहनत व्यर्थ तो नहीं
को आज नियोबियम की बड़ी सख्त जरूरत है। अजीब बात
की जिंदगी कूडे के ढेर से शुरू हुई। उन दिनों इसे टिन को
समझा जाता था तथा टिन की खुदाई के दौरान जितना भ
होता था उसे कूडे मे फेंक दिया जाता
था। इस धातु की किस्मत तब भी नहीं
पलटी जब उद्योग जगत् टैण्टेलम में रुचि
लेने लगा था। टैण्टेलम अयस्कों से
जितना नियोबियम कूडा निकलता था
उसे बेकार समझकर फेंक दिया जाता
था। परंतु जैसाकि कहा जाता है कि हर
बुराई मे कोई अच्छाई भी होती है। जैसे
ही मनुष्य को नियोबियम की कीमत पता
चल गया, कूडे के ये ढेर नियोबियम
अयस्को के 'मूल्यवान निक्षेप' बन गए।

जैसे ही 1907 में जर्मन रसायनज्ञ
फोन बोल्टेन ने ठोस नियोबियम प्राप्त
कर लिया, इस तत्त्व को भी उच्च
गलनांक वाले अपने 'भाइयों' की तरह
बिजली के बल्बो में तंतु के रूप में इस्तेमाल करके देखा गय
काम के अयोग्य सिद्ध हुआ। आप जानते ही हैं कि इस का
एक तत्त्व उपयुक्त निकला—टंग्स्टन। बाकी सारी धातुओं को

पेशे ढूढन पडे

सन् 1925 में पहली बार नियोबियम का प्रयोग एक ऐलॉय के रूप मे करके देखा गया . संयुक्त राज्य अमरीका मे तीक्ष्ण स्टील में टंग्स्टन की जगह नियोबियम प्रयुक्त किया गया। हालांकि ये प्रयोग असफल सिद्ध हुए, हा एक फायदा जरूर हुआ - धातुकर्मी नियोबियम मे रुचि लेने लगे।

1930 मे विश्व में नियोबियम की चीजों (पत्तों, तारो आदि) का कुल स्टाक केवल... 10 किलोग्राम था। परतु शीघ्र ही इस धातु की कीमत पता चल गई ओर इसका उत्पादन बड़ी तर्जा से बढने लगा। नियोबियम ने यह दिखा दिया कि वास्तव मे वह स्टील के लिए एक 'विटामिन' हे। क्रोमियम स्टील मे नियोबियम मिलाने से स्टील की तन्यता श्रेष्ठ हो जाती है तथा सक्षारणप्रतिरोध बढ़ जाता था। प्रयोगो से पता चला कि जंगरोधी स्टील में नियोबियम (1% तक) मिलाने से कणों की सीमाओ पर क्रोमियम कार्बाइडों का अवक्षेपण बंद हो जाता है जिसके फलस्वरूप अतराक्रिस्टलीय संक्षारण से छुटकारा मिल जाता है। निर्माण में प्रयुक्त स्टील में नियोबियम मिलाने से निम्न तापो पर स्टील की घात प्रतिरोध क्षमता बहुत बढ़ जाती है। इस स्टील मे अस्थिर भार सहने की क्षमता उत्पन्न हो जाती हे, जो एक महत्त्वपूर्ण गुण हे। उदाहरण के लिए, वायुयान उद्योग में ऐसा स्टील बहुत उपयोगी होता है।

भविष्य मे वेल्डिंग कार्य में नियोबियम बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने वाला था। जब तक साधारण स्टील की वेल्डिंग से वास्ता पड़ता रहा, इस कार्य मे कभी कोई दिक्कत महसूस नहीं हुई। परंतु जैसे ही विशेष ऐलॉयो वाले स्टीलों की वेल्डिंग करनी पडी तो पता चला कि वेल्डिंग के बाद धातु के कई महत्त्वपूर्ण गुण नष्ट हो जाते है, उदाहरणतया, जंगरोधी स्टील की वेल्डिंग के बाद ऐसा देखने को मिला। समस्या यह थी कि टांके की कोटि उत्तम कैसे की जाए? वेल्डिंग उपकरण का डिजाइन बदलकर देखा गया, पर कोई फायदा नहीं हुआ। इलेक्ट्रोडो का सयोजन बदल दिया गया, इससे भी काम नहीं बना। वेल्डिंग का काम निष्क्रिय गैसो के माध्यम में करके देखा गया, अब भी कोई लाभ नहीं हुआ। आखिर नियोबियम ही काम आया। जिस स्टील में इस तत्त्व को मिलाया गया उसके टांके की कोटि मे जरा-सी भी खराबी नहीं आई : जिस जगह पर वेल्डिंग नहीं की गई थी वहा की धातु ओर टाके वाली जगह की धातु में तनिक भी फर्क नहीं मिला।

पिछले दिनो तक दो उच्च गलनांक वाली धातुओं की वेल्डिंग के दौरान बडी कठिनाइयां सामने आती थीं जैसे नियोबियम के साथ मालिब्डेनम की वेल्डिंग के समय। निर्वात ने इन परेशानियों से हमेशा के लिए पीछा छुड़वा दिया। पता

चला कि साधारण अवस्थाओं के मुकाबले निवात में बहुत सारी धातुओं का गलनांक निम्न होता है बस वैज्ञानिकों ने तुरंत इस गुण का फायदा उठाया। उन्होंने उच्च गलनांक वाली धातुओं की वेल्डिंग निवात में करके देखी प्राप्त परिणामों से वे पूर्णतया संतुष्ट थे।

अलौह धात्विकी में नियोबियम एक ऐलॉय के रूप में विख्यात है। उदाहरणतया, ऐलुमिनियम क्षारों में बड़ी आसानी से घुल जाता है परंतु जैसे ही इसमें 0.05% नियोबियम मिला दिया जाता है, क्षारों का इस पर कोई असर नहीं पड़ता। ताम्र तथा उसके ऐलॉयों में नियोबियम मिलाने से उनकी सख्ती बढ़ जाती है। नियोबियम से टाइटेनियम, मालिब्डेनम तथा जिर्कोनियम की तापप्रतिरोधकता तथा मजबूती श्रेष्ठ हो जाती है। निम्न तापों पर बहुत सारे ऐलॉय तथा स्टील की कई किस्में कांच की तरह भंगुर होती हैं; नियोबियम इस खराबी से उन्हें छुटकारा दिलवा सकता है। केवल 0.7% नियोबियम मिलाने से –80°C ताप पर भी धातु की मजबूती कायम रहती है। यह गुण जेट हवाई जहाजों के पुर्जों के लिए बहुत महत्त्व रखता है क्योंकि ये हवाई जहाज बहुत अधिक ऊंचाई पर उड़ते है।

नियोबियम को अन्य तत्त्वों के साथ दोस्ती करने का शौक भी है। जब अमरीकी फर्म 'वेस्टिंगहाउस' ने अतिशुद्ध नियोबियम का उत्पादन शुरू कर दिया तो खरीदारों को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हो रहा था कि यह नियोबियम 2500°C पर भी पिघल नहीं रहा था, हालांकि शुद्ध नियोबियम का गलनांक 2468°C है। प्रयोगशाला में विश्लेषण से उन्हें पता चला कि फर्म ने 'अतिशुद्ध' नियोबियम में थोड़ा-सा जिर्कोनियम मिला दिया था। इस घटना से एक तापप्रतिरोधी ऐलॉय-नियोबियम-जिर्कोनियम ऐलॉय का पता चल गया।

कुछ धातुएं ऐसी है जिनके मिलाने से नियोबियम में कई नई विशेषताएं आ जाती हैं। टंग्स्टन तथा मालिब्डेन धात्विक नियोबियम का तापप्रतिरोध उच्च कर देते है, ऐलुमिनियम इसकी मजबूती बढा देता है, ताम्र इसकी विद्युतचालकता बढा देता है। शुद्ध नियोबियम की विद्युतचालकता ताम्र से आठ गुना कम होती है परंतु अगर उसमें 20% ताम्र मिला दिया जाए तो उसकी विद्युतचालकता उच्च हो जाती है तथा वह शुद्ध ताम्र से दुगुना ज्यादा मजबूत और सख्त हो जाता है। नियोबियम में अगर टैण्टेलम मिला दें तो 100°C ताप पर भी सल्फ्यूरिक तथा हाइड्रोक्लोरिक अम्ल का नियोबियम पर कोई असर नहीं पड़ेगा।

जेट इंजनों के टर्बाइन ब्लेडों में तापमान बहुत उच्च हो जाता है। अतः इनके निर्माण में ऐसे ऐलॉयों का प्रयोग किया जाता है जो अधिक-से-अधिक

तापमान पर भी अपनी मजबूती कायम रखे. इन एलायो मे नियोबियम युक्त ऐलॉयो तथा शुद्ध नियोबियम से सुपरसोनिक जेटो, अतरिक्ष राकेटो तथा पृथ्वी के कृत्रिम उपग्रहो के कुछ पुर्जे बनाए जाते है।

अगर कुछ साल पहले अनिचालकता मे केवल भोतिकविद् रुचि लेते थे तो आज इसका कार्यक्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया है। प्रयोगशालाओं से वाहर निकलकर यह तकनीक पर 'कब्जा' करने जा रही है जहा उसके विस्तृत व्यावहारिक प्रयोग की बडी संभावनाए खुल जाती हैं। आप पूछेंगे कि अनिचालकता क्या चीज है?

70 से भी ज्यादा साल पहले वेज्ञानिकों को यह पता चल गया था कि बहुत निम्न तापमानों पर कई धातुओं, ऐलॉयों तथा रासायनिक यौगिकों में प्रवाहित करते समय विद्युत धारा की किसी भी प्रकार की हानि नही होती है अर्थात् उनकी प्रतिरोध क्षमता खत्म हो जाती है। परंतु इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए एक बात आवश्यक थी कि धातु को परम शून्य तक ठडा करना जरूरी होता था अर्थात् 273°C तक। अभी ज्ञात पदार्थों मे नियोबियम स्टैनाइड (नियोबियम और टिन का एक योगिक) में अतिचालकता अवस्था प्राप्त करने का तापमान सर्वोत्तम होता है (18°K अथात्- 255°C)। इन तत्त्वा के एलॉयो से बनी अतिचालक चुंबकीय कुडलियो का चुंबकीय क्षेत्र अतिविशाल होता है। ऐसे ऐलॉय का बना फीता 16 सेंटीमीटर व्यास तथा 1 सेंटीमीटर ऊंचाई वाले एक चुबक पर लपेट दिया जाए तो इसके चुम्बकीय क्षेत्र की शक्ति 1 लाख ओर्स्टेड तक पहुच सकती है (तुलना करें : पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र की शक्ति केवल कुछ ओर्स्टेड होती है)।

नियोबियम शुद्ध रूप मे भी तकनीक मे इस्तेमाल किया जाता है। अतिउच्चसंक्षारण-प्रतिरोधक्षमता के कारण यह धातु रासायनिक इजीनियरी मे बहुत उपयोगी सिद्ध हो रही है। आपको शायद इस बात की जानकारी नहीं है कि हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के उत्पादन में यह दो रूपो में प्रयुक्त किया जाता है—निर्माण-सामग्री तथा उत्प्रेरक के रूप में। इसके उत्प्रेरक गुण के फलस्वरूप अम्ल की सांद्रता उत्तम हो जाती है। नियोबियम के उत्प्रेरक गुण कई अन्य प्रक्रियाओ मे भी काम आते हैं उदाहरण के लिए, ब्यूटाडाइन से ऐल्कोहॉल का सश्लेषण करने में।

जिर्कोनियम की तरह नियोबियम भी परमाणु रिएक्टरों में बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। कई बार तो यह जिर्कोनियम का मुकाबला तक कर लेता है। इसमें जिर्कोनियम के लगभग सभी गुण विद्यमान हैं—न्यूट्रान पारदर्शता, अतिउच्च गलनाक, बड़ी तापरोधता, उच्च रासायनिक प्रतिरोध, अच्छे यांत्रिक गुण। इसके

अलावा नियोबियम पर गलित क्षारीय धातुए न के बराबर अ
सोडियम आर पोटेशियम स्वतत्रतापूर्वक नियोबियम पाइपो म
है ये धातुए कुछ परमाणु रिएक्टरो मे तापवाहको के रूप म
है। नियोबियम मे एक आर भी विशेषता होती है, इसम कृत्रिम
क्षमता बढाने की संभावना बहुत कम हे जिसकी वजह से इस ध
कूडे के सचय या कूड़े के इस्तेमाल के लिए बक्स बनाए

इस धातु के एक और गुण की चर्चा जरूरी है-- इसमे
की अद्वितीय क्षमता होती है। उदाहरणतया, साधारण ताप पर
100 घन सेंटीमीटर से भी अधिक हाइड्रोजन सोख सकता है
पर नियोबियम मे हाइड्रोजन की विलयन क्षमता 75 घन सेंटीमी
है। धातु के इस गुण का इस्तेमाल उच्च निर्वात इलेक्ट्रान ट्
किया जाता है। ट्यूबो को खाली करते समय थोड़ी-बहुत
जाती है जो काम में बाधा डालती हैं। ट्यूबों में लगा नियो
एक स्पज की तरह सोख लेता है जिसके परिणामस्वरूप उच्च
है। टैण्टेलम या टग्स्टन के मुकाबले नियोबियम के पुर्जे सस्ते
उम्र भी ज्यादा होती है। उदाहरणतया, नियोबियम कथोड
10,000 घंटे तक काम कर सकती हैं।

टैटेलम की तरह नियोबियम भी मनुष्य के ऊतको पर बिल्कुल भी बुरा प्रभाव नही डालता। यह ऊतकों के साथ मिल जाता है तथा द्रव माध्यम मे बहुत देर तक रहने पर भी निष्क्रिय बना रहता है। इन गुणों के कारण शल्यचिकित्सकों ने इसका इस्तेमाल शुरू कर दिया है और अब यह खुद को 'अस्पताल का एक जिम्मेदार कर्मचारी' बता सकता है।

पिछले दिनो से एक अफवाह फैली हुई है कि नियोबियम 'वित्तीय कार्रवाइयों' मे भाग लेने जा रहा है। बात यह है कि रजत की कमी की वजह से अमरीकी पूंजीपति नियोबियम

से मिश्रण बनाने की मनाही है क्योंकि दोनों धातुओं का मूल एक जैसा है।

भू-गर्भ में नियोबियम की मात्रा के बारे में जितने भी आकड़े इकट्ठे किए गए हैं, [illegible] पिछले कुछ दशकों से इस तत्त्व की मात्रा बढती जा रही है। इस बात से कोई नहीं मानेगा कि पृथ्वी पर इस धातु के भडार स्थायी हैं परन्तु इनके निक्षेप की संख्या लगातार बढ़ रही है। हाल ही में अफ्रीका मे नियोबियम अयस्क के विशाल निक्षेप मिले हैं। विश्व-मंडली मे नाइजेरिया सबसे ज्यादा नियोबियम प्राप्त कर रहा है। इस देश में कोलंबाइट के विशाल निक्षेप हैं।

सोवियत संघ में कोला प्रायद्वीप को खनिजो का खजाना कहा जा सकता है। सदियों तक इस इलाके की जमीन को बेकार तथा उजाड़ इस इलाके की जमीन को बेकार तथा उजाड़ समझा जाता रहा। हालाकि 1763 में विख्यात रूसी वैज्ञानिक लोमोनोसोव ने निम्न भविष्यवाणी की थी : 'मुझे ऐसे कई सबूत मिले हैं जिनके आधार पर मैं यह कह सकता हूं कि उत्तरी इलाके की जमीन कुदरती उपहारों से सम्पन्न है तथा श्वेत सागर के तट पर खनिज मिलने चाहिए।' सोवियत सरकार की स्थापना होने पर इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम उठाए गए। इस इलाके में कई बार महत्त्वपूर्ण निक्षेप ढूंढे गए हैं, दसियों कीमती खनिज प्राप्त किए गए हैं जिनमें लोपेराइट भी शामिल है। इस खनिज में 8% तक नियोबियम उपस्थित होता है। इस खनिज की खोज का श्रेय सुप्रसिद्ध रूसी अन्वेषक अलेक्सान्द्र फेर्समान को जाता है। उन्हें कोला प्रायद्वीप का अध्ययन करते समय यह खनिज खिबीनी पहाड़ों में मिला। ध्यान देने योग्य है कि लोपेराइट दुनिया के किसी और कोने में नहीं मिलता है।

...तो हमने आपका फ्लैट नंबर इकतालिस के मालिक से परिचय करवा ही दिया जिसके दरवाजे पर 'नियोबियम' का नाम-पट्ट लगा हुआ है।

लोहे का दोस्त

मसाले के बिना [illegible]—
यूनानवासियों की गलती—1600 मंजिली गगनचुम्बी इमारत—समतल सड़क पर कार दुर्घटना—हज्जामों के काम की चीज—टंग्स्टन तंतु के लिए होल्डर—'यह बोझ मैं खुद उठाऊंगा'—कांच का रंग बदल जाता है—सच्चे दोस्त—सामूराइयों की तलवारों का रहस्य—टैंक नष्ट करना असंभव हो जाता है—शेविंग ब्लेड—'सजातीय आत्माएं'—ठंड का डर नहीं है—मनुष्य के 'अतिरिक्त पुर्जे'—सेम का कृपापात्र—बालों का रंग मेहंदी जैसा क्यों हो जाता है?—बिन बुलाए मेहमान—साधारण भूमिका—'मिलिटरी' धातु—पहाड़ की चोटी पर—करोड़ों मीटर लंबा तार—'खजाने' की चाबी कहां है?

जिस प्रकार रसोइया खाना जायकेदार बनाने के लिए उसमें मसाले मिलाते है, उसी प्रकार स्टील बनाने वाला स्टील को बढ़िया करने के लिए उसमें विभिन्न ऐलॉय तत्त्व मिलाता है।

हर मसाले का असर अलग होता है। कुछ खाने को स्वादिष्ट बना देते है, दूसरे उसे खुशबूदार बना देते हैं, तीसरे चटपटा बना देते हैं, चौथे...। मसालों की सारी खूबियों का वर्णन काफी मुश्किल काम है। परंतु स्टील में क्रोमियम, टाइटेनियम, निकिल, टंग्स्टन, मालिब्डेनम, वैनेडियम, जिर्कोनियम तथा अन्य तत्त्वों से जो गुण आ जाते है, उनका वर्णन इससे भी मुश्किल है।

इस अध्याय में हम लोहे के एक पक्के दोस्त-मालिब्डेनम की चर्चा करने जा रहे हैं।

मालिब्डेनम की खोज 1778 में स्वीडिश रसायनज्ञ कार्ल विलियम शैले ने की। इस तत्त्व का नाम यूनानी शब्द 'मालिब्डोस' से लिया गया। नए तत्त्व का यूनानी

कई शताब्दियों पहले मालिब्डेनम ने अपना कामकाज ल
मे शुरू किया। उन दिनों इन पेंसिलों का निर्माण खनिज माग
जाता था (आप शायद जानते ही होंगे कि आज भी यूनानी भ
'मालिब्डोस' कहते है।) ग्रेफाइट की तरह मालिब्डेनम भी अस
का बना होता है। इन पपड़ियों की मोटाई इतनी कम होती ह
ऐसी पपडिया एक-दूसरे के ऊपर रख दी जाए तो उनकी कुल
के बराबर होगी। इन पपडियों के कारण ही मालिब्डेनाइट लिखने
की 'क्षमता' रखता है। यह कागज पर हरे-भूरे रग के निशा

आज आपको मालिब्डेनाइट की बनी स्लेट-पेंसिलें दिखाट
कारण यह है कि ग्रेफाइट ने पेंसिल उद्योग को कब्जे मे क
मालिब्डेनम डाइसल्फाइट (मालिब्डेनाइट का रासायनिक नाम)
ढूढ लिया है। इसका वर्णन करने से पहले, आइए, हम आ
सुनाते है।

इस घटना को बीते कई साल हो गए हैं। मास्कियन म
हाईवे पर 'जापोरोजेत्स' कारो का परीक्षण चल रहा था। कार
थे परंतु अचानक पूरी रफ्तार से दौड रही
एक कार समतल सडक पर उलट गई।
भाग्यवश कार मे बैठे लोगो को बिल्कुल
चोट नहीं लगी। विशेषज्ञो के लिए
दुर्घटना का कारण एक पहेली बना रहा
परतु जैसे ही उन्होने कार के सारे पुर्जे
खोल दिए, राज खुल गया। पता चला
कि ट्रासमीशन का एक गियर, जिसे
स्टील खोल में आराम से घूमना चाहिए
था, इस खोल के साथ कसकर चिपक
गया था। स्वाभाविक था कि ऐसे 'ब्रेक'
ने उसी क्षण करामात दिखाई जिसके परिणाम-स्वरूप कार तु

ऐसी दुर्घटनाओं से बचने के लिए एक उचित स्नेहक
यही मालिब्डेनाइट याद आया। विशेषज्ञो ने अतिसूक्ष्म पपडियों
क्षमता का लाभ उठाने का फैसला किया। इन पपड़ियों को
मे स्नेहक का काम करना था।

स्टील के पुर्जे को 2% मालिब्डेनम डाइ-सल्फाइड विलय

लिए डुबाने से भी उसकी सतह पर ठोस स्नेहक की बढ़िया तह जम जाती है। परन्तु इस स्नेहक को एक खतरनाक दुश्मन का डर रहता है। यह उच्च ताप नही सह पाता है। गरम होने पर मालिब्डेनम डाइसल्फाइड मालिब्डेनम ऐन्हाइड्राइड मे परिवर्तित होना शुरू हो जाता है। यह पुर्जो को किसी तरह की हानि तो नही पहुचाता परन्तु दुर्भाग्यवश स्नेहक गुणों से वंचित होता है। इस समस्या को कैसे हल किया जाए?

इंजीनियरो को यह पता चला कि पुर्जे को डाइसल्फाइड मे डुबाने से पहले गरम फॉस्फेट मे डालना जरूरी है। इससे डाइसल्फाइड के कण फास्फेट लेप के सूक्ष्म रंध्र तक पहुच जाते है और पुर्जे की ऊपरी सतह पर स्नेहक की एक अतिमहीन परत जम जाती है जो बड़े-से-बडा बोझ सह सकती है—एक वर्ग सेंटीमीटर क्षेत्र कई टन बोझ सह सकता है। गियर के खोलों पर ऐसे लेप चढ़ाकर कठिन-से-कठिन परिस्थितियो में कारें चलाकर परीक्षण किए गए। हर बार गियर ठीक काम करते रहे। बस तब से 'जापोरोजेत्स' कारे लंबे-से-लबा सफर तय करती आ रही है और गियर के इस खतरनाक पुर्जे ने ड्राइवरो को कभी धोखा नही दिया है।

मालिब्डेनम डाइसल्फाइड के गुण केवल यहीं तक सीमित नही हैं कि वह स्टील के लिए स्नेहक का काम करता है। अगर कर्तन औजार पर मालिब्डेनाइट का लेप चढा दिया जाए तो उसकी मजबूती और कार्य-अवधि बढ जाती है। हज्जामो ने मालिब्डेनाइट की इस खूबी का तुरंत फायदा उठाया।

आइए, मालिब्डेनम की ओर लौटे। उच्च गलनांक तथा निम्न तापीय प्रसरण के कारण मालिब्डेनम विद्युत इंजीनियरी, रेडियो इलेक्ट्रानिक तकनीक तथा उच्चतापी इंजीनियरी में विस्तृत रूप से प्रयुक्त किया जाता है।

एक साधारण बल्ब में टंग्स्टन ततु जिन हूकों पर लटके होते है वे मालिब्डेनम के ही तो बने होते हैं। इसके अलावा रेडियो-लैंपों तथा एक्स-रे ट्यूबो के बहुत सारे पुर्जो मे भी यही धातु इस्तेमाल की जाती है। शक्तिशाली वैद्युत निर्वात प्रतिरोध भट्ठियो में बहुत उच्च ताप पैदा करने के लिए मालिब्डेनम कुडलिया लगाई जाती हैं।

यूक्रेइन की विज्ञान अकादमी के द्रव्य अध्ययन संस्थान में वैज्ञानिको ने बहुत उपयोगी पदार्थ प्राप्त किए हैं। उन्होंने ऐलुमिनियम, ताम्र, निकिल, कोवाल्ट, टाइटेनियम जैसी तन्य धातुएं मूल पदार्थ के रूप में लेकर टंग्स्टन और मालिब्डेनम जैसी अधिक मजबूत धातुओ से प्रबलन के तंतु बनाए हैं जो तनाव सहते है। इस प्रकार के संयोजन से तंतुओं की मजबूती बहुत बढ़ जाती है। उदाहरणतया, टंग्स्टन या मालिब्डेनम द्वारा प्रबलित होने पर निकिल और कोबाल्ट की मजबूती

तीन गुना बढ जाती है। साधारण टाइटेनियम के मुकाबले मालिब्डेनम प्रबलित टाइटेनियम दो गुना ज्यादा मजबूत होता है।

कुछ साल पहले सयुक्त राज्य अमरीका मे एक अद्भुत किस्म का काच बनाया गया। यह काच पहर के अनुसार अपना रंग बदलता रहता है। सूरज की रोशनी मे इसका रग नीला हो जाता है तथा अंधेरे मे यह पारदर्शी हो जाता है। काच को यह गुण मालिब्डेनम देता है जिसे या तो गलित काच में मिला देते है या कांच की दो तहों के बीच एक पारदर्शी फिल्म के रूप मे लेप देते है।

मालिब्डेनम के यौगिको के उपयोग विविध है। इनसे एनेमलो की आवरण-शक्ति उच्च हो जाती है। मालिब्डेनम रंजक चीनी-मिट्टी, प्लास्टिक, चर्मशोधन, फर तथा वस्त्र उद्योग में प्रयुक्त किए जाते है। मालिब्डेनम ट्राइऑक्साइड पेट्रोल भजन तथा अन्य रासायनिक प्रक्रियाओं मे उत्प्रेरक का काम करता है।

आपने देख ही लिया है कि मालिब्डेनम के पास कितने सारे काम हैं। परतु अभी तक हमने इसके असली धंधे की जरा-सी भी चर्चा नहीं की है। आपको याद होगा कि इस अध्याय के आरभ मे मालिब्डेनम को लोहे का जिगरी दोस्त कहा गया है। अतः अब हम लोहे और मालिब्डेनम की मित्रता का सविस्तार वर्णन करना चाहेगे। आपको शायद यह जानकारी होगी कि विश्व मे मालिब्डेनम के कुल उत्पादन का 75% भाग स्टील उद्योग में खप जाता है। रूस में मालिब्डेनम स्टील का उत्पादन 1886 में शुरू हुआ। धातुविज्ञानियों ने सेंट-पीटर्सबर्ग के पुतीलोव प्लाट में 3 7% मालिब्डेनियमयुक्त स्टील बना लिया। परतु मालिब्डेनम के इस गुण के उपयोग का इतिहास इस घटना से कहीं ज्यादा पुराना है।

सामूराइयों की तलवारों की धार इतनी तेज क्यों होती है? इस रहस्य को बहुत दिनों तक कोई नहीं समझ पाया। धातुकर्मियों की कई पीढियों ने इस तरह का स्टील बनाने के लिए हर संभव प्रयास अपनाए परंतु हर बार असफलता ही मिली। विख्यात रूसी धातुविज्ञानी पावेल आनोसोव (1799-1851) ने भी इस काम को हाथ में लिया और उनके प्रयास व्यर्थ नहीं गए। आखिर इस रहस्यमयी स्टील का राज खुल ही गया। पता चला कि जापानी लोग स्टील में मालिब्डेनम मिलाते थे जो धातु (स्टील) की मजबूती और तन्यता दोनों गुण उत्तम कर देता था। हालाकि आमतौर पर यह होता था कि धातु की मजबूती बढ़ाने से उसकी भगुरता भी बढ़ जाती थी।

बकतर स्टील के लिए मजबूती तथा तन्यता का संयोजन बहुत सख्त जरूरी है। 1916 में प्रथम विश्व युद्ध में ब्रिटेन और फ्रांस की सेनाओं के पास जो टैंक थे वे मजबूत परंतु भगुर मैंगनीज स्टील के बने थे। हालांकि इनकी दीवारों की

मोटाई 75 मिलीमीटर थी परन्तु फिर भी ये जर्मन तोपो के सामने ठहर नही सके जर्मन सेना के गोले इन टैंको को ऐसे बेध रहे थे जैसे चाकू मक्खन को। परंतु जैसे ही इन टैंकों के स्टील में केवल 1.5-2% मालिब्डेनम मिला दिया गया, इन्हे नष्ट करना असम्भव हो गया हालांकि अब इनकी दीवारों की मोटाई तीन गुना कम कर दी गई थी।

बकतर में यह जादुई ताकत कैसे आ गई? बात यह है कि मालिब्डेनम स्टील के क्रिस्टलीकरण की प्रक्रिया के दौरान कणो की वृद्धि पर रोक लगा देता है और स्टील को सूक्ष्मकणिक तथा समांगी बना देता है जिसकी वजह से धातु के उत्तम गुण कायम रहते है। ऐलॉय स्टील की अधिकांश किस्मों को भंगुरता का भय लगा रहता है परन्तु जिन स्टीलो मे ऐलॉय का काम मालिब्डेनम करता है उन्हे इस 'बीमारी' की परवाह नहीं होती। इन स्टीलों पर बिना किसी डर के तापीय उपचार किया जा सकता है क्योकि उनके अंदर आंतरिक प्रतिबल पैदा होने की सम्भावना खत्म हो जाती है। मालिब्डेनम स्टील की मजबूती काफी उच्च कर देता है। ऐसा स्टील उच्चतापसह होता है तथा उसका विसर्पण प्रतिरोध भी उच्च होता है। टंग्स्टन भी स्टील पर इसी तरह का असर करता है परंतु मालिब्डेनम स्टील की मजबूती ज्यादा बढ़ाता है। 0.3% मालिब्डेनम वही असर करता है जो 1% टंग्स्टन और फिर टंग्स्टन मालिब्डेनम से महंगा भी तो होता है।

मालिब्डेनम स्टील का कार्यक्षेत्र बकतर स्टील तक ही सीमित नही है। बंदूको की नाल, हवाई जहाजो और कारो के पुर्जे, बायलर, टर्बाइनें, कर्तन औजार तथा शेविंग ब्लेड—ये सारी चीजें मालिब्डेनम स्टील से बनाई जाती है। मालिब्डेनम ढलवां लोहे पर भी अनुकूल प्रभाव डालता है : यह उसकी मजबूती तथा कार्य-अवधि बढा देता है।

मालिब्डेनम में उत्तम ऐलॉय गुण होने का कारण यह है कि इसका क्रिस्टलीय जालक लोहे के जालक का समरूपी होता है और इसके परमाणुओं की त्रिज्याए भी लगभग बराबर-सी होती हैं। इन बातों की वजह से 'सजातीय आत्माएं' आपस में आसानी से घुल-मिल जाती है। लेकिन इसका मतलब यह नही है कि मालिब्डेनम की दोस्ती सिर्फ लोहे के साथ है। इसके ऐलुमिनियम, क्रोमियम, कोबाल्ट तथा निकिल ऐलॉयों का अम्ल प्रतिरोध बहुत उच्च होता है जिसके कारण इन्हें रासायनिक उपकरणो मे प्रयुक्त किया जाता है। इन तत्त्वों के कुछ ऐलॉयों का घर्षण-प्रतिरोध भी उच्च होता है। मालिब्डेनम तथा टंग्स्टन के ऐलॉय प्लेटिनम की जगह इस्तेमाल किए जा सकते हैं। ताम्र तथा रजत के साथ इस धातु के ऐलॉय विद्युत संपर्को के निर्माण में प्रयुक्त किए जाते हैं।

प्रशीतन तकनीक मे द्रवित गैसो का विशेष रूप से नाइट्र
प्रचलन है। इस गैस को द्रवित अवस्था मे रखने के लिए ठंड सा
आवश्यक है—तापमान—200°C। साधारण स्टील इतने निम्न ता
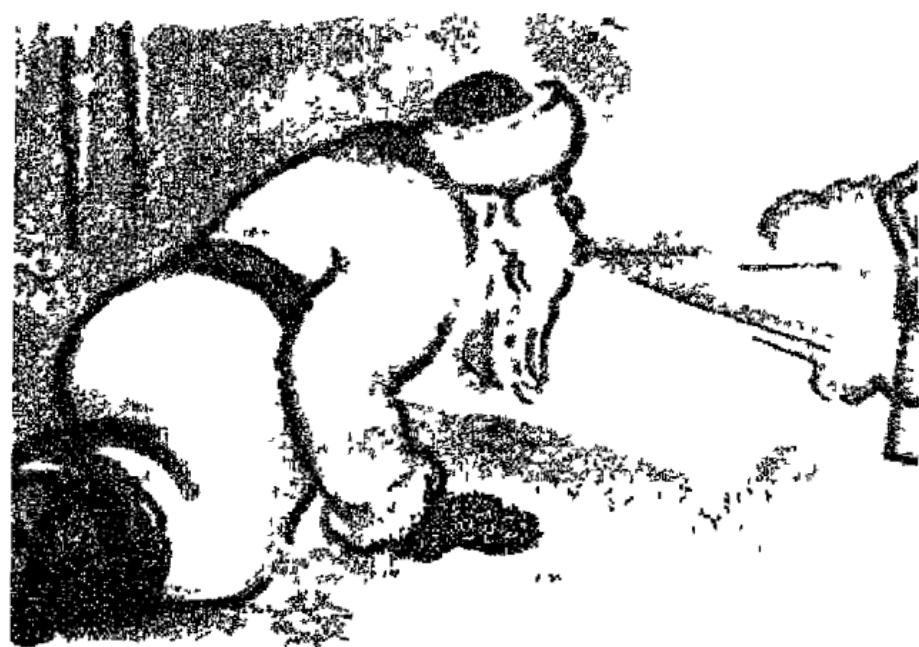
सह पाता जिसका परिणाम यह होता है कि यह कांच जैसा भंगुर
इस परेशानी से बचाने के लिए द्रवित नाइट्रोजन के डिब्बे वि
शीतप्रतिरोधी स्टील से बनाए जाते हैं। परंतु बहुत दिनों तक इस
कमी बनी रही—वेल्डिंग की टांकें बहुत कच्ची निकलती थी। इस
करने में मालिब्डेनम ने मदद की। शुरू में वेल्डिंग में जिन यौगि
किया जाता था उनमें क्रोमियम मिलाया जाता था। पता चला कि
इस खराबी का जिम्मेदार था। वैज्ञानिकों ने इसकी जगह मालिब्डे
करने का फैसला किया। सिद्ध हो गया कि मालिब्डेनम वास्तव में ट
से रक्षा करता है। बहुत सारे परीक्षणों के बाद यह तय किया ग
मालिब्डेनम का मिश्रण सर्वोत्तम है। बस तब से टांके भी —200°
ठंड उतनी ही आसानी से झेल लेते हैं, जैसे स्टील।

हाल ही में धातुविज्ञानियों ने कोबाल्ट, मालिब्डेनम तथा क्रो
अद्वितीय ऐलॉय 'क्रोमाक्रोम' बनाया है। यह 'मनुष्य के अतिरिक्त पु
करता है। जी हां, हम मनुष्य के शरीर के पुर्जों की बात कर रहे
है कि कोमाक्रोम शरीर के लिए बिल्कुल भी हानिकारक नहीं है। अत
के जोड़ ठीक काम नहीं कर रहे होते, उसके शरीर में सर्जन लोग
बने जोड़ फिट कर देते हैं।

मालिब्डेनम कृषि-उद्योग में भी बहुत उपयोगी सिद्ध हो रहा है

मे सोवियत वैज्ञानिकों के एक दल को सूक्ष्मतत्त्वों की जीवविज्ञानी भूमिका तथा कृषि उद्योग में उनके उपयोग सबधी अनुसधान कार्य के लिए लेनिन पुरस्कार दिया गया। मिट्टी मे या जानवरों के चारे में अगर कुछ तत्त्वो की बहुत जरा-सी मात्रा मिला दी जाए तो एक जादू-सा हो जाता हे। मालिब्डेनम भी ऐसा जादू करता हे। इस तत्त्व की बहुत थोडी-सी मात्रा से कई फसलों की पैदावार बढ़ जाती है तथा कोटि भी उत्तम हो जाती है। सेम के पौधों को तो मालिब्डेनम से विशेष लगाव है।

अमोनियम मालिब्डेट मे ससाधित मटर के बीजो से आम से ज्यादा फसल मिली। मालिब्डेनम पौधों के कदो में सांद्रित होकर वायुमंडल से नाइट्रोजन लेने में उनकी सहायता करता हे जो पौधों के विकास के लिए परम आवश्यक है। मालिब्डेनम की उपस्थिति से वनस्पतियो के ऊतको में प्रोटीन, क्लोरोफिल तथा विटामिनो की मात्रा बढ जाती है। इतना गुणकारी होते हुए भी मालिब्डेनम कुछ खर-पतवारो के लिए हानिकारक रहता है।

ओसाका विश्वविद्यालय मे जापानी वैज्ञानिक ने अत्यधिक महत्त्वपूर्ण अनुसंधान कार्य किए हैं। आधुनिकतम उपकरणों की सहायता से मनुष्य के जले बालो के अवशेषो के अध्ययन से वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे है कि बालों का रग उनके अंदर उपस्थित धातुओ की अतिसूक्ष्म मात्रा पर निर्भर करता है। उदाहरणतया, चमकीले बालो में निकिल ज्यादा होता है, सुनहरे बालो में टाइटेनियम विस्तृत होता है। लाल बालों वाले लोग अगर अपने बालो के रंग से असतुष्ट हैं तो उन्हें मालिब्डेनम को दोष देना चाहिए क्योंकि जापानी वैज्ञानिकों के मतानुसार यही तत्त्व बालो को लाल रंग देता है। अत. अगर वास्तव मे 'लाल बालों वाले लोगो का गुट'* जैसा कोई गुट होता तो मालिब्डेनम जरूर उनका प्रतिचिह्न होता।

बदकिस्मती से यह तत्त्व कई बार भलाई की जगह बुराई के काम भी करने

* ब्रिटिश उपन्यासकार आर्थर कानन डायल के एक उपन्यास के कुछ पात्रो के गुट का नाम।

लगता है सोवियत वैज्ञानिकों के एक अभियान दल ने नया समुद्री यात्रा से लौटने के बाद इस तत्त्व के 'गंदे' कामों की पोल खोली।

यह अभियान 1966 के आखिरी दिनों में व्लादीवास्तोक से शुरू हुआ। वैज्ञानिकों को एक विशेष अनुसंधान जहाज 'मिखाइल लोमोनोसोव' दिया गया। इस अभियान का उद्देश्य था—विश्व के विभिन्न भागों में विघटनाभिक संदूषण का स्तर बताना। महीनों तक जहाज विभिन्न सागरों में घूमता रहा। उस पर लगे गाइगर मापक-यन्त्र की सूइयां दिन-रात सीमा के पहरेदारों की तरह बड़ी वफादारी के साथ अपना फर्ज निभाती रहीं। जैसे ही विकिरण के नए संकेत (मेहमान) दिखाई देते थे वे उन्हे तुरत पकड लेते थे।

एक दिन जहाज प्रशांत महासागर के सबसे बियाबान इलाके में भूमध्य रेखा पार करने जा रहा था। जहाज पर लगी पखुड़ियां 24 घंटे बड़ी तेजी से घूमती हुई हजारो घन मीटर समुद्री वायु को फिल्टरों में फेंक रही थीं। ये फिल्टर 0 01 माइक्रोन जितने सूक्ष्म धूलकण रोकने की क्षमता रखते थे। समय-समय पर इकट्ठी हुई धूल को फिल्टरो सहित जलाकर अतिसंवेदी उपकरणों की सहायता से राख का विघटनाभिक स्तर नापा जाता था। अचानक गाइगर मापक की सुइयां बडी तेजी से कापने लगी—राख मे विघटनाभिक समस्थानिक मालिब्डेनम-99 तथा निओडियम-147 दिखाई दिए। इन समस्थानिकों का जीवन-काल बहुत अल्प होता है। उदाहरण के लिए, मालिब्डेनम-99 के क्षय की अर्द्धविधि केवल 67 घंटे होती है। वैज्ञानिको ने उपकरणों तथा गणना से यह पता लगाया कि इन 'बिन बुलाये मेहमानो' का जन्म 28 दिसम्बर 1966 को हुआ था। और वास्तव में उनकी गणना बिलकुल ठीक निकली। चीनी समाचार एजेन्सी 'सिन्हुआ' ने घोषणा की कि इस दिन चीन ने परमाणु शस्त्र का परीक्षण किया था। कुछ दिनों के अंदर हवा से विघटनाभिक कण हजारों मील दूर पहुंच गए थे।

यहां हम यह जरूर बताना चाहेंगे कि इस खतरनाक खेल में मालिब्डेनम बहुत ही साधारण भूमिका निभाता है। हमें उम्मीद है कि आने वाले सालो में परमाण्विक परीक्षणो पर पूरी रोक लग जाएगी और तब मालिब्डेनम इस तरह के गंदे कामों में भाग नहीं ले पाएगा। तब यह तत्त्व केवल भले काम करेगा और मानवजाति की पूरे दिल से सेवा करेगा। ऊपर लिखी बातों से आप यह तो समझ ही गए होंगे कि मालिब्डेनम बड़े काम की धातु है। विविध उपयोगो के कारण मनुष्य को इसकी विशाल मात्रा चाहिए। प्रश्न उठता है कि आखिर हमारे ग्रह पर इसकी मात्रा है कितनी ?

भू-पर्पटी मे मालिब्डेनम की मात्रा 0.0001% है। प्रकृति मे उपलब्धि के

अनुसार मेंडेलीफ की आवर्त सारणी के तत्त्वो मे इस तत्त्व ने बहुत साधारण जगह ले रखी है—इसकी गिनती तत्त्वो के छठे दर्जन में की जाती है हालांकि इसके निक्षेप दुनिया के कई हिस्सो मे मिलते हैं।

यदि बीसवीं शताब्दी के आरंभ मे मालिब्डेनम का कुल उत्पादन केवल कुछ टनो तक सीमित था तो प्रथम विश्व युद्ध के दौरान इसका उत्पादन लगभग 50 गुना बढ गया (वकतर स्टील की जरूरत जो थी)। युद्ध के तुरत बाद मालिब्डेनम अयस्कों की निकासी का स्तर गिर गया परतु 1925 के आसपास मालिब्डेनम के उत्पादन में फिर तेजी आ गई। 1943 में इसका उत्पादन उच्चतम सीमा पर पहुच गया (30 हजार टन)। यह द्वितीय विश्व युद्ध के दिनों की बात है। इसी वजह से मालिब्डेनम को 'मिलिटरी' धातु कहा जाता है।

1934 में भूविज्ञान की एक विद्यार्थिनी वेरा फ्लेरोवा को उत्तरी काकेशस मे बाक्सान नदी की घाटी मे मालिब्डेनम अयस्कों के विशाल निक्षेप मिले। सोवियत संघ के विरल धातु उद्योग के इतिहास में यह धातु महत्त्वपूर्ण घटना थी। दो साल बाद इस स्थान पर एक विशाल मालिब्डेनम खान थी। परंतु अभाग्यवश वेरा की किस्मत में यह देखना नही लिखा था कि किस प्रकार पहाड की चोटी पर एक नया शहर तिरनाउज बस जाएगा जिसकी जन्मदाता वह खुद थी। 1936 मे एक पहाडी दुर्घटना में वेरा की मृत्यु हो गई। तिरनाउज शहर के एक चौक का नाम इस बहादुर लडकी के सम्मान मे रखा गया तथा वहा के पहाड की चोटी का नाम भी उसके सम्मान मे रखा गया। भीड़भाड से दूर एक पहाडी की ढाल मे एक छोटा-सा स्मारक स्थापित किया गया है। इस जगह से कुछ दूर ट्रालिया स्टील की कनातो के रास्ते मालिब्डेनम अयस्क दूसरे किनारे तक पहुचाती रहती है।

मालिब्डेनम अयस्को को मुख्यतः फेरोमालिब्डेनम में परिवर्तित किया जाता हे तथा इन्हें उच्च-कोटि के स्टीलों तथा विशेष किस्मो के कुछ ऐलॉयो के निर्माण मे प्रयुक्त किया जाता है। फेरोमालिब्डेनम का औद्योगिक स्तर पर उत्पादन पिछली शताब्दी के आरंभ में शुरू हुआ। 1890 में मालिब्डेनम ऑक्साइडों के अपचयन द्वारा फेरोमालिब्डेनम प्राप्त करने की एक विधि ढूढ़ ली गई। परतु जार के रूस में फेरोमालिब्डेनम का उत्पादन इस विधि तक सीमित रहा। 1929 मे श्तेनबर्ग तथा कुसाकिन ने तापीय प्रक्रिया द्वारा एक ऐलॉय प्राप्त किया जिसमें मालिब्डेनम की मात्रा 50 से 65% तक थी। 1930-1931 में व. एल्यूतीन को ऐसे कुछ और प्रयोगों में सफलता मिली जिनके आधार पर आगे चलकर यह विधि धात्विकी उद्योग मे अपना ली गई।

तकनीक को मालिब्डेनम स्टील के अलावा शुद्ध मालिब्डेनम भी चाहिए। परंतु बहुत लंबे अर्से तक वैज्ञानिक शुद्ध मालिब्डेनम की चीजें बनाने में असफल होते रहे। इसका कारण क्या था? लोग इस धातु का लगभग शुद्ध पाउडर प्राप्त करने की विधि बहुत पहले सीख चुके थे। इसका दोषी मालिब्डेनम का उच्च गलनांक था जिसके कारण धातु-कर्मी पाउडर को ठोस धातु में प्रगलित नहीं कर पा रहे थे। मजबूर होकर उन्होंने दूसरे तरीके ढूढने शुरू कर दिए। आखिर 1907 में प्रयोगशाला परिस्थितियों में मालिब्डेनम तंतु प्राप्त हो गया। इसके लिए मालिब्डेनम पाउडर में चिपचिपा कार्बनिक पदार्थ मिलाकर एक मातृकस (डाइ) से गुजारा था। इस प्रकार प्राप्त चिपचिपे तंतु को हाइड्रोजन वायुमंडल में रखकर इसके अंदर विद्युत-धारा प्रवाहित की गई। वही हुआ, जिसकी आशा थी। तंतु जलने लगा। कार्बनिक पदार्थ भस्म हो गया और धातु प्रगलित होकर एक धागे में बदल गई (हाइड्रोजन की जरूरत इसलिए थी कि तापन के दौरान मालिब्डेनम का ऑक्सीकरण न हो)।

इस घटना के 3 साल बाद उच्च गलनांक वाली धातुओं के उत्पादन का पेटेंट दिया गया। मालिब्डेनम भी इस सूची में शामिल था। यह पाउडर धात्विकी विधि सोवियत संघ में आज भी अपनायी जा रही है। इस विधि के अंतर्गत धात्विक पाउडर को संपीडित करके प्रगलित करते हैं और फिर इसे पत्तियों या तारों में बदल देते है। अब धातु तकनीकी कामों के लिए उपयुक्त हो जाती है।

सोवियत संघ में मालिब्डेनम तारों का उत्पादन 1928 में शुरू हुआ। इसके 3 साल बाद मास्को के विद्युत-कारखाने में इनका उत्पादन 2 करोड़ मीटर तक पहुंच गया।

पिछले कुछ सालों से निर्वात आर्क प्रगलन द्वारा भी मालिब्डेनम का उत्पादन संभव हो गया है। इस विधि में इलेक्ट्रान-पुंज प्रगलन का प्रयोग किया जा रहा है जिससे और भी बढ़िया परिणाम मिल रहे हैं।

हम ऊपर बता ही चुके है कि भू-पर्पटी में मालिब्डेनम अयस्कों के निक्षेपों की संख्या सीमित है। अतः, संभव है कि कुछ समय बाद ये सारे भंडार बिल्कुल खाली हो जाएंगे और तब मनुष्य के सामने यह समस्या खड़ी हो जाएगी कि इतनी कीमती धातु अब कहां से लाई जाए?

परंतु फिलहाल हमें आने वाली पीढ़ियों के भविष्य की चिंता करने की कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि भू-पर्पटी के अलावा महासागरों तथा सागरों के जल में भी विभिन्न तत्त्व घुले हुए हैं। अगर सारे समुद्री खजाने को पृथ्वी के सारे वासियों के बीच बराबर बांट दिए जाएं तो हममें से हर कोई अरबपति बन

जाएगा। यहा इतना कहना ही काफी होगा कि वरुण देवता हर आदमी को 3 टन स्वर्ण दे सकता है। और जहां तक मालिब्डेनम का सवाल है तो समुद्र हर आदमी को इसकी 100 टन मात्रा दे सकता है। देखा आपने, समुद्र कितने मालदार है।

मनुष्य अभी इन 'समुद्री सदूकों' की चाबियां ढूंढ़ रहा है। वह दिन दूर नहीं जब ये खजाने उसके कब्जे में होंगे।

अभिजात वर्ग का

महान् सिकंदर अपनी सेना का वापस लौटने का आदेश देता है—साइरस के 'पवित्र बर्तन'—रजत की बनी नालें—दूसरा सबसे पुराना पेशा—रूबल का जन्म—शाही वंश के लोगों की जालसाजी—रूसी बोयारों की चतुराई—टकसाल की 250वीं जयंती—जार उपराज्यपाल को रजत खरीदने के आदेश भेजता है—नेवयान्स्क मीनार का रहस्य—खानदानी रजत—काउंट ओरलोव का डिनर-सेट—नोवगोरोव के सुनारों का हुनर—एक फोटोग्राफर के स्टूडियो में—चक्रवात का मुकाबला—दर्पण ऐश की चीज नहीं है—पनडुब्बी 'थ्रेशर' समुद्र में डूब जाती है—विजेता धातु—भूगोल का रजत के साथ क्या संबंध है?—महारानी समुद्री डाकू की प्रशंसा करती है—रात के वक्त नाविक रम पीने में मस्त थे—रजत का खजाना समुद्र में छिपा है—फ्लोरिडा के एक मछुए की भूल—गोताखोर खजाने का मालिक बन जाता है—विलियम्स फिप्स पैर पटकता है—शराबी का सपना सच निकला

महान् सिकंदर की सेना बड़ी तेजी से पूर्व की ओर बढ रही थी। एक के बाद दूसरा देश जीता जा रहा था। फारस, फोनिसिआ, मिश्र, बाबिलोन, बाक्ट्रीया तथा सोगडिआना पर कब्जा हो चुका था। ईसा से 327 वर्ष पूर्व सिकंदर ने भारत पर हमला कर दिया। लग रहा था कि यहां भी इस महान् सेनापति की विशाल सेना का कोई मुकाबला नहीं कर पाएगा। परंतु यूनानी सैनिको को अचानक पेट की एक भयंकर बीमारी लग गई। थके तथा बीमार सैनिकों में विद्रोह की भावना पैदा होने लगी। उन्होंने वापस लौटने की इच्छा प्रकट की। बादशाह की आगे बढ़ने की बड़ी तमन्ना थी परंतु मजबूर होकर उसे लौटने का आदेश देना पडा।

आश्चर्य की बात यह थी कि साधारण सैनिकों के मुकाबले सेना अधिकारियों

को यह रोग बहुत कम हो रहा था हालांकि वे भी सैनिको की तरह खानाबदोश जिदगी बिता रहे थे।

इस रहस्य का भेद खुलने मे 2000 से भी ज्यादा साल लग गए। वैज्ञानिकों को पता चला कि सैनिको के बीमार होने का कारण यह था कि वे टिन के प्यालो का इस्तेमाल करते थे और उनके अधिकारी इसलिए बीमार नही होते थे क्योंकि उनके प्याले रजत के बने होते थे। रजत मे एक अद्वितीय गुण होता है। पानी मे घुला रजत बहुत सारे हानिकारक जीवाणुओ को मार देता है। एक लीटर पानी को शुद्ध करने के लिए एक ग्राम रजत का करोड़वा हिस्सा काफी रहता है।

प्राचीन इतिहासकार हेरोडोटस का कथन है कि ईसा से पांच शताब्दी पूर्व फारस का बादशाह साइरस सफर के दौरान जल को ' वर्तनों' मे रखता था। भारतीय धार्मिक पुस्तको में भी यह पढने को मिल कि जल को शुद्ध करने के लिए उसमें तप्त रजत डाला जाता था। बहुत देशो मे कुंओं के जल को शुद्ध करने के लिए उनमें रजत के सिक्के फेक प्रथा चली आ रही है।

जलशुद्धि रजत का प्राचीनतम पेशा माना जा सकता है। हालाकि य भी सच है कि कुछ प्रभावशाली व्यक्तियों के कारण इस धातु को फालतू के भी करने पडे। उदाहरण के लिए, रोमन सम्राट् नीरो ने, जो फिजूलखर्ची के मशहूर था, अपने खच्चरों की नाले रजत की बनवाई थी। परंतु यह बात धातु के इतिहास की एक छोटी-सी घटना है।

रजत का दूसरा प्राचीनतम पेशा मुद्रा मानक है। धातु ने इस काम में

सारा जीवन बिता दिया है।

प्राचीन रोमवासियों ने ईसा से 269 वर्ष पहले रजत के सिक्के ढालने शुरू किए थे। स्वर्ण सिक्कों की तुलना में रजत सिक्कों का इतिहास 50 वर्ष पुराना है। रूस मे रजत के सिक्कों का चलन काफी देर से शुरू हुआ। रूसी राजा व्लादीमिर के जमाने के कुछ रजत-सिक्के आज भी सुरक्षित है। इन सिक्कों के एक ओर सिहासन पर बैठे राजा का चित्र अंकित है और दूसरी तरफ शाही प्रतीक बना हुआ है। इन सिक्को पर निम्न शब्द अंकित है : 'व्लादीमिर सिहासन पर बैठा है और यह उसका रजत है।'

बारहवी तथा तेरहवीं शताब्दियों में रूसी सिक्को का प्रचलन बद हो गया था। इसकी वजह यह थी कि कीव रूस नामक सयुक्त राज्य फिर छोटे-छोटे स्वतत्र राज्यों में विभाजित हो गया था और इतने राज्यों में एक ही तरह का सिक्का चलाना एक असंभव कार्य था। एक बार फिर रजत की सिल्लियो ने सिक्कों की जगह ले ली और इनका मुद्रा के रूप में प्रचलन शुरू हो गया। इतिहासकार इस काल को 'बिना सिक्के का युग' कहते हैं।

रूबल के जन्म की घटना तेरहवीं शताब्दी की बात ही तो है--यह रजत की एक सिल्ली के आकार का था और इसका वजन 200 ग्राम के लगभग था। कई प्राचीन पुस्तकों मे रूबल को ग्रीवेन्का भी कहा गया है। इनके बनाने का तरीका निम्न था : सबसे पहले रजत की एक लंबी और पतली सिल्ली ढाली जाती थी और फिर एक तेज औजार से उसे कई टुकड़ों में बाट दिया जाता था। इन टुकड़ों को ही रूबल कहते थे।

मंगोल-तातारो के प्रभुत्व ने भी रूसी सिक्को के पुनर्ढालन पर बुरा असर डाला। उन दिनो गोल्डन होर्डे ने अपना रजत का सिक्का चला रखा था जिसे डायरगेमा या देन्गा कहते थे (तातार भाषा मे 'देन्गा' शब्द का अर्थ है—'छनकने वाला')। धीरे-धीरे शब्द 'देन्गा' रूसी शब्द 'देन्गी' में बदल गया जिसका अर्थ है—'धन'।

चौदहवीं शताब्दी के मध्य में जैसे ही मंगोल-तातारों का प्रभुत्व कम किया गया, रूस ने फिर से अपने सिक्के ढालने शुरू कर दिए।

सन् 1534 में रूसी जार इवान 'भयंकर' की माता हेलेन ग्लीन्स्काया के शासन काल मे सारे देश के अंदर एक जैसी मुद्रा के चलन की व्यवस्था की गई। रजत के छोटे सिक्को पर तलवार पकड़े एक घुड़सवार का चित्र अंकित होता था। इन्हें तलवार वाले सिक्के कहा जाता था। रजत के बड़े सिक्कों पर अंकित घुडसवार के हाथ में बरछा होता है। रूसी भाषा मे बरछे को 'कोप्ये' कहते हैं।

आधुनिक शब्द कोपेक इसी शब्द से ही तो लिया गया है।

आज सच का पता करना बहुत मुश्किल है परतु लगता है कि असली सिक्को के चलते ही जाली सिक्कों का धंधा भी शुरू हो गया था। आम जालसाजो की बात क्या करे जब बादशाह जैसे अमीर लोग भी जाली सिक्कों का धधा करते थे। तेरहवीं शताब्दी के अत तथा चौदहवीं शताब्दी के आरभ मे फिलिप चतुर्थ फ्रास का सम्राट् था जिसे फिलिप 'सुदर' उपनाम से पुकारा जाता था। कई ऐतिहासिक दस्तावेजो मे इस सम्राट् को फिलिप-जालसाज कहा गया है। खुद को दौलतमंद बनाने के लिए फिलिप या तो स्वर्ण तथा रजत के सिक्कों का वजन कम करवा देता था या उनम ताम्र, टिन जैसी सस्ती धातुएं मिलवा देता था। य कारण है कि प्रसिद्ध इतालवी कवि दाते ने नर्क का वर्णन करते हुए फिलिप च को भी नरकवासी बताया है।

सतरहवी शताब्दी मे भी इससे मिलती-जुलती एक घटना घटी। यह 16 की बात है। पोलैंड के साथ युद्ध करते-करते रूस का खजाना खाली हो ग था परतु मुद्रा की जरूरत बढती जा रही थी। और कोई उपाय न देखकर ज अलेक्सेंई ने कर बढा दिए परंतु जनता कर देती कहा से। तब एक बोयार* फ्यो रतीश्चेव ने एक तरकीब बताई जिससे जार का खजाना भर सकता था प वास्तविकता में उसने सरकार का बेडा गर्क कर दिया।

उन दिनों रूस में रजत के सिक्के चला करते थे। देश के पास खुद रजत तो था नहीं, अतः इन सिक्को को विदेशी सिक्कों से बनाया जाता थ आमतौर पर इस काम में जोआचिमस्टाले इस्तेमाल किए जाते थे (न

---

* अठारहवी शताब्दी तक रूस में अभिजात वर्ग के लोगो को बोयार कहा जाता था

चेकोस्लोवाकिया के एक शहर जोआचिमस्टाले में ढाला जाता था)। रूसी टकसाल मे उनके ऊपर से लातीनी शब्द मिटाकर रूसी शब्द अंकित कर दिए जाते थे। रतीश्चेव तथा अन्य बोयारों की सलाह पर जार ने 50 कोपक कीमत वाली एफिम्की पर एक रूबल की मोहर लगाने की आज्ञा दे दी। इसके अलावा जार ने एक और आदेश जारी कर दिया जिसके अनुसार 50, 25, 10, 3 तथा 1 कोपेक के सिक्के सस्ते ताम्र के बनाए जाने लगे परंतु उनकी कीमत रजत के बराबर रखी गई। जार के इन सलाहकारो ने हिसाब लगाया कि इस प्रकार सरकारी खजाने मे 40 लाख रूबल जमा हो जाएगे। यह संख्या जार द्वारा लगाए करो की कुल सख्या से दस गुना अधिक थी। बस फिर क्या था, इन आकडो से जार का तो दिमाग ही खराब हो गया। उसने यह आदेश दिया कि दिन-रात पूरी गति से सिक्के ढाले जाएं जिससे खजाना जल्दी-से-जल्दी भर जाए।

देश मे सस्ते सिक्को का ढेर लग गया। परंतु मुद्रा के कुछ अपने कायदे-कानून होते हैं जिन पर सम्राटो का भी नियत्रण नही होता। अगर हिसाब से अधिक सिक्के चला दिए जाए तो उनकी क्रयक्षमता गिर जाती है जिसके फलस्वरूप चीजे महगी हो जाती हैं। रूस मे उस वक्त बिल्कुल ऐसा ही हुआ। साधारण नागरिको को शीघ्र ही जार के सुधारवादी आदेशों के परिणाम भुगतने पड़े। डबल रोटी तथा अन्य खाद्य पदार्थो के भाव बहुत बढ गए और व्यापारी लोग माल का भुगतान केवल रजत में स्वीकार करने लगे। परतु रजत आता कहां से? सारा रजत तो जार के खजाने में बंद था। देश में भुखमरी फैल गई। लोगों के धैर्य का बाध टूट गया और 1662 में मास्को मे दगे शुरू हो गए। इतिहास मे यह घटना 'ताम्र दगो' के नाम से प्रसिद्ध है। जार ने बडी सख्ती से बलवाइयों का दमन किया परतु जनता ने अपनी माग पूरी करवाकर छोडी · ताम्र के सिक्के वापस ले लिये गए और उनकी जगह रजत के सिक्के चला दिए गए।

जार पीटर प्रथम के शासनकाल में सिक्कों की ढलाई का काम मुख्यत मास्को में होता था। 1711 मे सीनेट (ससद) ने यह आदेश जारी किया कि रजत के सिक्के केवल एक टकसाल में ढाले जाएं और यह केवल मास्को की इस टकसाल मे। इसके कुछ साल बाद 1724 मे जार के आदेश पर सेंट पीटर्सबर्ग में एक नई टकसाल डाली गई। यह टकसाल (लेनिनग्राद) आज भी चालू है और कुछ साल पहले इसकी 250वीं जयती मनाई गई।

पीटर प्रथम ने स्वर्ण तथा रजत का उत्पादन बढाने की दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम उठाए। परतु इसके बावजूद बहुत दिनों तक रूस ये कीमती वस्तुएं दूसरे देशों से खरीदता रहा। ऐसे दस्तावेज मिले है जो यह बताते हैं कि 1734 मे इर्कूत्स्क

के उपराज्यपाल को यह आदेश मिला कि वह चीन से बहुत बडी मात्रा मे रजत खरीद ले।

इन्ही दिनो अकीन्फी देमीदोव (यूराल में देमीदोव खानदान लोहे के बहुत बड़े व्यापारी के रूप मे मशहूर था) के अयस्क-खोजियो को रजत अयस्क का एक निक्षेप मिला। उन दिनो के कानून के अनुसार किसी को कहीं भी जब कभी रजत अयस्क मिलता तो वह सरकार की सपत्ति माना जाता था। परतु देमीदोव इस खजाने को अपने पास रखना चाहता था। उसने अपने सिक्के ढालने शुरू कर दिए, जो जार के सिक्कों से पूर्णतया मिलते-जुलते थे। हां, एक फर्क जरूर था और वह यह था कि इन सिक्कों मे रजत की मात्रा सरकारी सिक्कों के मुकाबले अधिक थी। इतिहास में शायद यह एकमात्र मिसाल है जब जाली सिक्के असली सिक्कों से ज्यादा कीमती थे।

एक किवदती के अनुसार देमीदोव की जागीर—नेवयान्स्क मे एक भूमिगत टकसाल थी। यह टकसाल एक ऊंची मीनार के तहखाने मे स्थित थी जहां जंजीरो मे जकड़े गुलाम दिन-रात जाली सिक्के बनाते थे। यह बड़ी भयकर जेल थी। वहा से भाग निकलना असंभव था तथा सरकार को इसकी बिल्कुल भी जानकारी नहीं थी। इतनी सारी सावधानियो के बावजूद नेवयान्स्क टकसाल की खबर राजधानी पहुंच गई। शुरू में इसे एक अफवाह समझा जाता रहा। सम्राज्ञी आन्ना

इवानोव्ना भी यूराल के इस बेताज बादशाह से संबंध नहीं बिगाड़ना चाहती थी। परंतु कहते हैं कि एक बार ताश खेलते समय हारने पर जब देमीदोव ने सम्राज्ञी को रजत के नए सिक्के दिए, तो वह अचानक पूछ बैठी — 'निकीतिच! ये सिक्के तुम्हारी टकसाल में ढले हैं या मेरी?' देमीदोव सिर झुकाकर खड़ा हो गया और मुस्कराकर बोला — 'सम्राज्ञी! हम सब आपके हैं। मैं भी आपका हूँ और जो कुछ मेरा है, वह सब भी आपका ही तो है।'

परंतु शीघ्र ही एक ऐसी घटना घटी जिसने इस भूमिगत टकसाल का बेड़ा गर्क कर दिया। देमीदोव का एक कारीगर मालिक के प्रकोप के डर से नेव्यान्स्क से भाग निकलने में सफल हो गया। जैसे ही देमीदोव को इस बात का पता चला उसने भगोड़े के पीछे अपने आदमी दौड़ाए और उन्हें यह आदेश दिया कि वे उसे जान से मार दें। देमीदोव ने यह भी कह दिया कि अगर भगोड़ा नहीं मिलता तो वे जल्दी-से-जल्दी राजधानी पहुंचकर सम्राज्ञी को रजत निक्षेप मिलने की 'खुशखबरी' सुना दें।

भगोड़ा नहीं मिला। मजबूर होकर सम्राज्ञी को यह 'खुशखबरी' बतानी पड़ी। इस खजाने को राजधानी लाने के लिए एक आयोग नेव्यान्स्क भेजा गया। इसके वहां पहुंचने से दो दिन पहले देमीदोव ने मीनार के तहखाने में पास बहती झील का पानी छुड़वा दिया जिससे टकसाल के सारे कारीगरों का मुंह हमेशा के लिए बंद हो गया और इस अपराध का कोई साक्षी न रहा।

रूसी तथा फ्रेंच अभिजात-वर्ग के लोगों को रजत की चीजों का बहुत ही ज्यादा शौक था। ये लोग 'खानदानी रजत' को भद्रता तथा संपन्नता की निशानी समझते थे। काउंट ओरलोव के पास एक अद्वितीय डिनर-सेट तथा जिसमें 3275 चीजें थीं। इस सेट के निर्माण में लगभग दो टन शुद्ध रजत व्यय किया गया था।

नोवगोरोद के सुनार मीनाकारी तथा नक्काशी के लिए पुराने जमाने से प्रसिद्ध चले आ रहे हैं। उनके बनाए प्यालों, कटोरों तथा बर्तनों की खूबसूरती तथा चमक ने उस जमाने के कारीगरों को आश्चर्यचकित कर रखा था। ऐसे दस्तावेज मिले हैं जो यह बताते हैं कि सोलहवीं शताब्दी के अंत में नोवगोरोद में 100 के लगभग बढ़िया सुनार चांदी का काम करते थे तथा छोटे-मोटे सुनार (अंगूठियां, कान के बुंदे आदि बनाने वाले) इतने ज्यादा थे कि उनकी गिनती करना असंभव था। नोवगोरोद के सुनारों के रजत कारीगरी के नमूने आज मास्को के शस्त्रागार व राष्ट्रीय ऐतिहासिक संग्रहालय तथा लेनिनग्राद के रूसी संग्रहालय की शोभा बढ़ा रहे हैं।

हमारे दिनों में रजत का यह महत्त्व जरा भी कम नहीं हुआ है और आज भी उसी तरह से यह धातु गहनों तथा घर की अन्य चीजों के निर्माण मे इस्तेमाल हो रही है। परंतु आज इस धातु के पास कुछ इनसे भी ज्यादा जरूरी काम है। जब से 1839 में फ्रेंच चित्रकार तथा खोजकर्ता डेगर ने सुग्राहित पदार्थों पर स्थायी चित्र खींचने की विधि खोजी है तब से रजत का हमेशा के लिए फोटोग्राफी के साथ संबंध जुड़ गया है। इस विधि में फोटो फिल्म या पेपर पर जमी रजत ब्रोमाइड की पतली सतह मुख्य भूमिका निभाती है। प्रकाश की किरणों के प्रभावस्वरूप रजत ब्रोमाइड विभाजित हो जाता है—ब्रोमियम रासायनिक रूप से सतह में उपस्थित जिलेटिन में मिल जाता है तथा रजत नन्हे-नन्हे क्रिस्टलो के रूप मे अवक्षेपित हो जाता है। ये क्रिस्टल इतने सूक्ष्म होते है कि एक साधारण सूक्ष्मदर्शी में भी दिखाई नहीं देते। रजत ब्रोमाइड के विभाजन का स्तर प्रकाश की शक्ति पर निर्भर करता है : प्रकाश जितना तीव्र होता है, उतना ही ज्यादा रजत अलग हो जाता है।

इसके बाद की प्रतिक्रियाओं (फिल्म का व्यक्तीकरण तथा स्थायीकरण) से चित्र का नेगेटिव मिल जाता है जिससे पॉजिटिव प्रिंट बना लिया जाता है। एक शताब्दी से ज्यादा अर्से के दौरान फोटोग्राफी के क्षेत्र में काफी तरक्की हुई है परंतु रजत तथा उसके योगिकों के बिना फोटोग्राफी आज भी असभव है।

वैज्ञानिको ने रजत आयोडाइड के लिए एक मजेदार तथा बढ़िया काम ढूंढ़ लिया है : इसकी सहायता से उष्णकटिबंधी चक्रवात का सफलतापूर्वक मुकाबला किया जा सकता है। चक्रवात की नष्टकारी शक्ति कम करने के लिए उसे फैलाना अर्थात् उसका व्यास बढ़ाना आवश्यक होता है। रजत आयोडाइड इस काम मे सहायक सिद्ध होता है, वह वायुमंडलीय आर्द्रता को वर्षा की बूंदो में परिवर्तित करने की क्षमता रखता है।

आज से 10 साल पहले इस विधि द्वारा पहली बार एक चक्रवात 'बेइला' का मुकाबला किया गया। हवाई जहाजों की सहायता से इस चक्रवात के मार्ग मे रजत आयोडाइड की 10 किलोमीटर ऊंची तथा 30 किलोमीटर लंबी स्क्रीन बिछा दी गई। इतने विशाल आकार के बावजूद इस स्क्रीन के निर्माण में केवल कई सेंटनर रजत आयोडाइड की जरूरत पड़ी। स्क्रीन से टकराते ही चक्रवात ने इसे लपेट दिया और फिर इसे गटक गया। बस, फिर क्या हुआ। उसी क्षण चक्रवात के केंद्रीय भाग के चारो ओर बिखरे बादलो की दीवार (इसे चक्रवात की आंख कहते हैं) खंडित होकर वर्षा करने लगी जिसके फलस्वरूप चक्रवात का वेग बहुत कम हो गया। यह बात जरूर थी कि इस आक्रमण से चक्रवात घबराया नहीं।

उसने दोबारा बादलो की दीवार बनानी शुरू कर दी
का व्यास पहले से बहुत ज्यादा था जिसके कारण उ
गई। इस प्रकार रजत ने चक्रवात की नष्टकारी शकि

पिछली शताब्दी के मध्य से रजत दर्पणों के निम
रहा है। सब धातुओं में रजत की परावर्तन-क्षमता सर्वाधि
के ऊपर इस धातु का पतला-सा लेप चढ़ाने से यह धात
की चीज का नहीं बल्कि डॉक्टरों के औजारों, दूरदर्शियों
प्रकाशिकीय यन्त्रो का भी आवश्यक अंग बन जाती

वैद्युतचालकता तथा तापचालकता में कोई भी धातु
कर सकती। सुग्राही भौतिक यंत्रों के तारों के निर्माण
जाता है। विभिन्न प्रकार के रिलों के महत्त्वपूर्ण टर्मिनल
जाते हैं तथा रेडियो तकनीक में महत्त्वपूर्ण पुर्जो की वेल्टि
है।

असंख्य स्वचालित मशीनों, अंतरिक्ष-राकेटों, पनडु
उपकरणों, संचार-साधनों तथा सिग्नल-प्रणाली में संपर्को
सकता। अपने लबे जीवनकाल में ऐसे हर संपर्क को
काम करना पडता है। ये संपर्क इतना बड़ा बोझ तभी स
उच्च जीर्णरोधकता होगी, प्रयोग में विश्वसनीय होंगे तथ
की मागों के अनुकूल होंगे। इन संपर्को के निर्माण के

जाता है। विशेषज्ञों को इस धातु से कोई शिकायत नहीं है : वह इस मुश्किल काम को बड़ी अच्छी तरह से निपटाती है। परंतु अगर रजत मे कुछ विरल तत्त्व मिला दिए जाए, तो इस धातु के गुण बहुत श्रेष्ठ हो जाते है। इस रजत के बने संपर्कों की कार्य-अवधि कई गुना बढ़ जाती है।

विदेशी वैज्ञानिक पत्रिकाओं मे यह बताया गया है कि कुछ जेट-इजनो के तुड़ा के पुर्जे रजत मे संतृप्त फोम टंग्स्टन से बनाए जाते है। शायद सब लोगो को इस बात की जानकारी नहीं है कि अमरीकी पनडुब्बी 'थरैशर' के समुद्र मे डूबने से कई टन रजत भी हाथ से गया जो इस पनडुब्बी की बैटरियों मे लगा हुआ था।

रजत इतना अधिक तन्य होता है कि इससे केवल 0.00003 सेंटीमीटर मोटी पारदर्शक पत्ती ढाली जा सकती है। एक ग्राम रजत से 2 किलोमीटर लंबा तार निकाला जा सकता है।

शुद्ध रजत अति सुंदर सफेद रंग का होता है। इसी कारण लातीनी भाषा में इसका नाम 'अर्जेण्टम' रखा गया। यह शब्द संस्कृत से लिया गया है जिसमे 'अर्जेण्टा' का अर्थ होता है—'हल्के रंग वाला।'

अब अगर नामों की बात चल ही पड़ी है तो क्यों न हम आपको इनसे संबंधित एक महत्त्वपूर्ण घटना सुना दे। भूगोल के नक्शे ने तत्त्व का नाम ढूंढने मे आविष्कारों की हमेशा मदद की है। मेंडेलीफ की आवर्त सारणी में आपको इसके कई उदाहरण मिलेंगे—जर्मेनियम, फ्रांसियम, यूरोपियम, अमेरिसियम, स्कैण्डियम, कैलिफार्नियम आदि। इस तरह के उदाहरणों की सूची बहुत लंबी है। परंतु धातु के सम्मान में एक विशाल नदी और फिर पूरे के पूरे देश का नाम रखने की मिसाल शायद ही मिलेगी। ऐसी एक धातु है—रजत। यह घटना 400 से भी ज्यादा साल पुरानी है।

सोलहवीं शताब्दी के आरंभ मे स्पेनिश यात्री जुआन डिआज डि सोलिस ने दक्षिणी अमरीका के पूर्वी तट की यात्रा के दौरान एक विशाल नदी की खोज की। जुआन ने बिना किसी शर्म के इस नदी को अपना नाम दे दिया। 10 साल बाद कप्तान सेबेस्त्यान केबोट को इस नदी की यात्रा का मौका मिला। उसे यह देखकर बहुत आश्चर्य हो रहा था कि उसके नाविकों ने इस नदी के तट पर बसे लोगो को लूटकर जो माल इकट्ठा किया था, उसमे रजत की मात्रा बहुत ही ज्यादा थी। केबोट ने इस नदी का नाम ला-प्लाटा रखने का फैसला किया (स्पेनिश भाषा में रजत को ला-प्लाटा कहते हैं)। आगे चलकर सारे देश का यही नाम पड़ गया। परंतु उन्नीसवी शताब्दी के आरंभ में स्पेनिश लोगों का प्रभुत्व

समाप्त हो गया और तब उस देश के लोगों ने अपने दुखी अतीत को भुलाने के उद्देश्य से अपने देश का लातीनी नाम रख दिया—अर्जेण्टीना (लातीनी भाषा मे रजत को 'अर्जेण्टुम' कहते है)।

एक और किवदंती प्रसिद्ध है जिसमें भी रजत भोगोलिक नाम के साथ संबंधित है। 1577 में इग्लैड के तट से एक समुद्री बेड़ा यात्रा पर निकला जिसका नेतृत्व एडमिरल फ्रेंसिस ड्रेक कर रहा था। महारानी एलिजाबेथ ने ड्रेक को समुद्री डाकू के रूप मे देश की सेवा के उपलक्ष्य मे इस उच्च पद से सम्मानित किया था। इस नई यात्रा का उद्देश्य दक्षिणी अमरीका के समुद्री नगरों को लूटना था। महारानी ने गुप्त रूप से इस लूट की सहमति दे रखी थी। एलिजाबेथ तथा उनके सामत इस समुद्री डाकू की सहायता से खूब पैसा कमाने की आशा लगाए बैठे थे। इस समुद्री डाकू का नाम सारी दुनिया में मशहूर हो चुका था।

कई महीनो तक ड्रेक के जहाजो ने विभिन्न सागरो और महासागरो में लूट मचाए रखी। असख्य लडाइया लड़ी गई जिनमें ड्रेक के पांच मे से चार जहाज नष्ट हो गए परतु उसके ध्वज-पोत 'स्वर्ण-मृग' ने फिर भी समुद्री नगरो मे तहलका मचाए रखा।

एक दिन शाम के समय जब ड्रेक कैलाओ के पास पहुचा तो वहा 30 के लगभग स्पेनिश जहाज खड़े थे। साहस में ड्रेक का कोई मुकाबला नही कर सकता था 'स्वर्ण मृग' बंदरगाह में घुस गया और सारी रात दुश्मन के जहाजों के बिल्कुल पास खडा रहा। स्पेनिश नाविको ने खूब रम पी रखी थी। वे सारी रात डेक पर नाचते-गाते रहे और बडी जोर-जोर से उन जहाजों की बाते करते रहे जो कुछ समय पहले उस बंदरगाह से रवाना हुए थे तथा जिन पर खजाना लदा था। उन नाविकों के कथनानुसार स्पेन के बादशाह के जहाज 'काकाफुएगो' पर तो बहुत ही ज्यादा खजाना लदा हुआ था। यह सुनते ही ड्रेक ने तुरंत लगर उठाया और इस जहाज का पीछा शुरू कर दिया।

ड्रेक के जहाज का नाम 'स्वर्ण मृग' वैसे ही नहीं रखा गया था : चाल में इसका मुकाबला गिने चुने जहाज कर सकते थे। शीघ्र ही एक्वाडोर के तट के पास ड्रेक ने 'काकाफुएगो' पर कब्जा कर लिया। ड्रेक के एक साथी ने इस घटना का निम्न शब्दों मे वर्णन किया : 'अगली सुबह खजाने की गिनती शुरू हुई और इस काम मे छः दिन लग गए। स्पेनिश जहाज पर हमें असंख्य मणि, रजत के सिक्कों के 13 बक्से, 18 पाउंड स्वर्ण तथा अमुद्रांकित रजत के 26 पीपे मिले। छठवें दिन हमने उस जहाज के कप्तान से विदा ली। उसने अपना जहाज पनामा की ओर बढाया और हमने खुले सागर की ओर।'
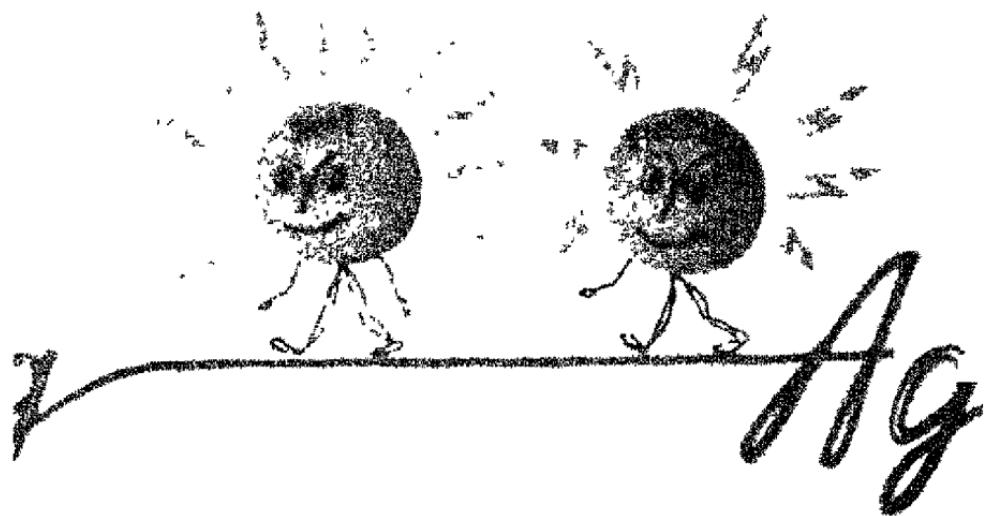
ड्रेक बहुत अक्लमद था। उसे पता था कि 'स्वर्ण-मृग' को अभी काफी सफर करना था। सभव था कि स्पेनिश लोग अपने खजाने को वापस लेने का प्रयास करें (हालांकि उन्होंने यह खजाना दक्षिणी अमरीका के वासियो को लूटकर इकट्ठा किया था)। ज्यादा बोझ होने के कारण जहाज की गति मद हो गई थी। इसे अक्लमदी कहे या लालच? ड्रेक ने जो फैसला किया वह बिलकुल उचित था : 45 टन अमुद्रांकित रजत समुद्र में फेक दिया गया। रजत के इस खजाने की याद मे एडमिरल ने पास वाले द्वीप का नाम ला-प्लाटा रख दिया।

यह कोई पहली घटना नहीं है जब स्वर्ण, रजत तथा हीरे-जवाहरात समुद्र के तल मे पहुंच गए। शताब्दियों से समुद्री यात्राओं के दौरान जहाज विभिन्न कारणो से समुद्र मे डूबते रहे हे और उन पर लदे खजाने भी जल के गर्भ में समाते गए हैं। इन खजानों ने आज भी हजारों लोगों को पागल कर रखा है।

सागर अपना माल देकर खुश नहीं है, परंतु लोग फिर भी नहीं मानते। समुद्र के गर्भ से खजाना निकालने के इतिहास की कई घटनाएं काफी रोचक हैं। रजत से संबधित कुछ ऐसी घटनाओ का हम यहां वर्णन करने जा रहे है।

1939 में फ्लोरिडा के तट पर पिजेनकेस नामक द्वीप के दक्षिण-पूर्व में एक बूढे मछुए को समुद्र मे कुछ भारी लंबे पत्थर मिले। कुछ दिनों तक वह इन पत्थरों

से अपनी नाव का सतुलन करता रहा और फिर उसने उन्हे समुद्र मे फेंक दिया एक पत्थर किसी तरह से बच गया बूढे ने इसे ठोकपीट के काम मे इस्तेमाल करना शुरू कर दिया—वह उस पर कील रखकर हथौड़ा से उन्हे सीधा करता दो साल बीत गए। बार-बार ठोंकने-पीटने से पत्थर नर्म हो गया और चमकने लगा। अब जाकर मछुए को पता चला कि वह पत्थर शुद्ध रजत का बना था। परंतु मछुआ खुश होने की जगह रोने-पीटने लगा क्योंकि उसने मूर्खतावश भगवान का दिया खजाना अपने ही हाथो से लुटा दिया था।

बूढे को उम्मीद थी कि उस जगह पर ऐसे कुछ और पत्थर अभी भी पड़े होंगे। परतु लाख कोशिशो के बावजूद वह उस जगह को न ढूढ पाया, जहा किसी जमाने मे चांदी की सिल्लियो से लदा कोई जहाज डूब गया था।

अमरीकी गोताखोर मैक-की इस मामले मे ज्यादा भाग्यशाली निकला। मई 1949 मे वह की-लारगो जलशैल से कुछ दूर फ्लोरिडा के समुद्री तट की अंतर्जलीय सतह के फोटो खींच रहा था। एक दिन 20 मीटर गहराई पर मैक-की को किसी जहाज के अवशेष दिखाई दिए। जहाज की तलाशी लेने पर उसे वहा कुछ बदूकें, एक लगर तथा भारी व लंबे आकार के धातु के तीन टुकड़े मिले। मैक-की ने इन चीजो को ऊपर पहुंचाया। इस परिश्रम का उसे तुरत फल मिल गया। धातु के टुकड़े शुद्ध रजत की सिल्लिया निकले जिन पर NATA की मोहर लगी हुई थी। मैक-की इस खजाने को वाशिगटन ले आया। वहा के ऐतिहासिक संग्रहालय के विशेषज्ञ इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि यह मोहर पनामा की एक पुरानी रजत खान की है तथा जिस जहाज को मैक-की ने ढूंढ़ा है वह उन 14 स्पेनिश जहाजो मे से एक है जो 1715 की वसत में एक भयकर तूफान की लपेट मे आकर समुद्र की गोद मे समा गए थे।

इस प्रकार बिना इच्छा के फ्लोरिडा का मछुआ तथा मैक-की खजाने के खोजी बन गए। ज्यादातर यह होता है कि पानी में डूबे खजानो की खोज का काम योजना बनाकर किया जाता है। परतु हर तरह के साधनों से लैस ऐसे अभियान-दल अक्सर खाली हाथ लौटते है। कई बार उन्हे सफलता तब मिलती है जब उन्हें उसकी तनिक भी आशा नही होती है। सतरहवी शताब्दी के अत मे एक अंग्रेज विलियम फिलिप के साथ ऐसी ही घटना घटी। इंग्लैड के बादशाह जेम्स II के आदेश पर वह एक स्पेनिश जहाज के खजाने को ढूंढ़ने निकला जो बहामा द्वीप समूह के पास समुद्र में डूब गया था।

दिन-हफ्ते, महीने बीतते गए, परंतु फिलिप के अभियान-दल को डूबे जहाज के अवशेष कही नही मिले। इस तरह एक साल बीत गया। फिलिप अब अपनी

हार मानने को तैयार हो गया। उसने अपने सहायकों को बुलाया और खोज का काम बंद करने की आज्ञा द दी। बातचीत के दौरान जैसे ही गुस्से में उसने अपने पैर से मेज को ठोकर मारी, मेज से कोई चीज़ बाहर गिरी जो मूंगे के बड़े टुकड़े से मिलती-जुलती थी। फिलिप ने कुल्हाड़ी से टुकड़े को तोड़ दिया। उसे इसके अंदर मजबूत लकड़ी का बना एक छोटा-सा बक्सा मिला जिसे तोड़ते ही फर्श सोने और चांदी के सिक्कों से भर गया।

यह 'मूंगा' एक रेड-इंडियन गोताखोर को समुद्र में मिला था। उसने ही इसे मेज के नीचे फेंक दिया था। जिस जगह यह कीमती चीज मिली थी वहां फिलिप ने तुरंत कई गोताखोर भेजे। उन्हें जल मे ऐसी कई दर्जन चीजे मिली।

काम बड़े जोर-शोर से चलता रहा। फिलिप ने खुद भी कई बार गोताखोरी की। तीन महीने के अंदर उस समुद्र मे 30 टन रजत, काफी सोना तथा सिक्कों से भरे अनगिनत बक्से मिले। इस सारे खजाने की कीमत 3 लाख पाउंड थी (आज के हिसाब से 30 लाख पाउंड)।

कुछ दिनो पहले समुद्र के गर्भ से मिला रजत अंतर्राष्ट्रीय विवाद का कारण बन गया। हुआ यह कि 1972 मे गर्मियो के दिनों मे 'सीफाउंडर्स' कंपनी के एक कर्मचारी अमरीकी पुरातत्त्वज्ञ राबर्ट मार्क्स को बहामा द्वीप समूह से 45 मील दूर समुद्र में डूबा एक स्पेनिश जहाज दिखाई दिया (यह कपनी समुद्रों में खजाने ढूंढने का काम करती है)। कुछ दिनों बाद बड़े जोर-शोर से इस जहाज का माल ऊपर लाने का काम शुरू हो गया। शीघ्र ही पता चल गया कि यह जहाज 1656 मे समुद्र मे डूबा था। दस्तावेजों के अध्ययन ने बताया कि यह जहाज रजत तथा हीरे-जवाहरातों से लदा पड़ा था जिनकी कीमत 20 लाख रूबल के लगभग थी।

जल के वासियों की रजत में कभी रुचि नहीं रही है। अतः यह आशा की गई कि जहाज का सारा रजत उसकी केबिनों में सुरक्षित पड़ा होगा। बस फिर क्या था—दो-तीन हफ्ते बाद इस खजाने का पहला हिस्सा ऊपर पहुंच गया।

कपनी के मालिक इस काम से काफी मालदार बनने की उम्मीद लगाए बैठे थे और उनके ऐसा सोचने की बात भी ठीक थी जहाज खजाने से लदा पडा था परंतु अचानक अप्रत्याशित परेशानिया सामने आ गई। बहामा की सरकार को जैसे ही इस बात का पता चला, उसने सारे खजाने को अपना घोषित कर दिया। कपनी को काम बद कर देना पडा। झगडा इतना ज्यादा बढ गया कि अमरीकी सरकार को बीच मे पडना पड़ा। इसके प्रतिनिधि ने यह घोषणा की कि जहाज बहामा की जल-सीमा में नहीं बल्कि अतर्राष्ट्रीय जल-सीमा में मिला है, अतः बहामा की सरकार का उस पर कोई हक नही है। यह झगडा अभी चल रहा है और पता नहीं इसका फैसला क्या होगा।

यह जानते हुए भी कि पानी के अदर खजाना मिलने की सभावना बहुत कम होती है लोग फिर भी इसे ढूढने की धुन मे पागल रहते हैं और ऐसे लोगो की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। हां, यह बात जरूर है कि फिलिप के जमाने के मुकाबले आज के गोताखोरों की सफलता की सभावना काफी ज्यादा है क्योकि उस जमाने मे गोताखोरों को सांस के लिए केवल अपने फेफड़ों पर निर्भर रहना पडता था। परंतु इतना सब कुछ होते हुए भी सागर से उसका खजाना लेना कोई आसान काम नही है।

रजत के खजाने पृथ्वी पर भी काफी मिलते हैं। कुछ दिनों पहले स्वीडिश द्वीप गोटलैड मे रजत के हजार अरबी सिक्के मिले है। इन सिक्कों के मिलने की कथा काफी रोचक है। इन्हे ढूंढने का श्रेय एक खरगोश को जाता है। जी हा, एक भूरे खरगोश को जिसने एक छोटे-से शहर ब्यूरस के बाहरी इलाके में अपना बिल बनाना चाहा। अपना घर बनाते समय इस खरगोश के रास्ते मे धातु की कई डिस्कें आ गई। इस बेचारे ने बड़ी मेहनत करके इन्हें अपने रास्ते से हटा दिया। उन दिनों कुछ पुरातत्त्वज्ञ उस द्वीप पर खुदाई करवा रहे थे। शीघ्र ही ये डिस्कें उनकी नजर में पड गई। उन्होने इन्हें स्टाक्होम के ऐतिहासिक संग्रहालय मे पहुचा दिया जहा विशेषज्ञो ने इस खजाने का रहस्य खोल दिया।

किसी जमाने मे गोटलैड यूरोप का एक बहुत बडा व्यापारिक केंद्र था। विभिन्न देशो के व्यापारी यहां आते-जाते रहते थे। सैकडों, हजारो की सख्या मे रजत के सिक्के इधर से उधर होते रहते थे या भाग्यशाली व्यापारियों के संदूको मे जमा होते रहते थे। कभी-कभी ये खजाने विकिंगो के हाथ पड़ जाते थे जो इस द्वीप पर आया-जाया करते थे। एक किवदंती के अनुसार खरगोश को जो खजाना मिला था उसे एक विकिग सरदार स्टावेर ने जमीन मे गाडा था। कई दशकों तक स्थानीय लोग इस कहानी मे विश्वास करते रहे कि 150 साल पहले

एक शराबी गोटलैंडी किसान को सपने में शैतान ने स्टावेर के खजाने मे से बहुत सारे रजत के सिक्के दिए और यह कहा कि पाच पीढियो बाद यह खजाना लोगों के हाथ लग जाएगा जिसे शक्तिशाली विकिंग ने बुरे दिन के लिए संभाल रखा था।

यह कहना मुश्किल है कि यह कहानी सच है या झूठ। परतु एक बात जरूर है कि किवदंती में बताई जगह पर ठीक पाच पीढियो बाद खजाना मिला। हा, एक बात समझ में नहीं आती कि शैतान ने किसान को यह क्यो नहीं बताया कि इस खजाने को ढूढ़ने का काम एक खरगोश करेगा।

सख्त भी है और नर्म भी

अभियानदल का दर्दनाक अंत–'टिन की महामारी'–रूसी ठंड का मजाक–बटनों की चोरी–ये सब करतूतें डाइनों की है–परमाणु खुले होकर बैठ जाते हैं–'महामारी' का 'टीका'–'टिन की चीख'–मुकाबला करने वाला कोई नहीं है–टिन के सिपाही की किस्मत–सख्त है या नर्म?–कब्र में टिन की बनी सबसे पुरानी चीज मिली है–हैफेस्टेट आचिलस को अजेयी ढाल बनाकर देता है–लैटिन अमरीकी जातियों की प्राचीन मुद्रा–जुलियस सीजर इस बात की पुष्टि कर सकता है–बादशाह गलती पर था–बहुत भारी चीज की नुमाइश–उत्तरी ध्रुवीय महासागर के किनारों पर खोज का काम–'फोर्ड मोटर्स' कंपनी के शीशे–सूरज को पकड़ने के लिए एक नया शीशा–'बैंक ऑपरेशन' असफल रहता है–टिन अपना बलिदान दे देता है

1910 में इंग्लैंड के ध्रुव अन्वेषक कप्तान रोबर्ट स्काट ने एक अभियान-दल तैयार किया जिसका उद्देश्य दक्षिणी ध्रुव की यात्रा करना था। उन दिनों तक मनुष्य के कदम इस क्षेत्र मे नही पड़े थे। कई महीनों तक हिम्मती यात्री बड़ी मुश्किलो का सामना करते हुए अटार्कटिक के बर्फीले इलाकों मे आगे बढ़ते रहे। रास्ते मे वे जगह-जगह पर कुछ भोजन-सामग्री तथा केरोसीन छोड़ते गए जिससे लौटते समय उन्हें इन चीजों की दिक्कत महसूस न हो।

1912 के आरभ में अभियान-दल दक्षिणी ध्रुव पहुंच गया परंतु उन्हें यह जानकर बहुत खेद हुआ कि नार्वेजियन यात्री रूआल आमुण्डसेन उनसे भी पहले वहां पहुच चुका था। परंतु स्काट को इससे भी बुरे दिन देखने थे। वापस लौटते समय असली मुसीबत सामने आई। पहले स्टेशन पर जो रसद और केरोसीन छिपा कर रखा गया था उसका कहीं पता नहीं चल रहा था। थके और भूखे यात्री

न तो आग जला सके और न ही खाना बना सके। बड़ी मुश्किल से वे अगले स्टेशन तक पहुंचे, परन्तु वहां भी कैन खाली थे। केरोसीन बह गया था। बर्फीले तूफान ने प्रकोप को और भी बढ़ा दिया था। जिसकी वजह से कप्तान स्काट और उनके साथी शीघ्र ही मौत का शिकार बन गए।

केरोसीन के गायब होने का रहस्य क्या था? इतनी बढ़िया तरह से आयोजित अभियान का इतना दर्दनाक अंत क्यों हुआ? कप्तान स्काट ने ऐसी कौन-सी गलती की थी?

इस दुर्घटना का कारण बड़ा साधारण था। बात यह थी कि केरोसीन को जिन कैनों में रखा गया था उनकी सोल्डरिंग में टिन इस्तेमाल किया गया था। लगता है कि अन्वेषकों को यह मालूम नहीं था कि शीत में टिन को बीमारी लग जाती है। यह चमकदार धातु पहले फीके भूरे रंग की हो जाती है और फिर पाउडर में परिवर्तित हो जाती है। इसे टिन की महामारी कहते हैं तथा यही स्काट के अभियान के लिए इतनी घातक सिद्ध हुई।

टिन को ठंड की बीमारी लगने की बात इन घटनाओं से पहले भी पता थी। मध्य युग में टिन के बर्तनों को 'फोड़े' हो जाते थे जो धीरे-धीरे बढ़ते जाते थे और अंत में धातु पाउडर में बदल जाती थी। यह भी पता था कि अगर कोई बीमार टिन की प्लेट स्वस्थ प्लेट के संपर्क में आ जाती थी तो स्वस्थ प्लेट पर भूरे धब्बे बनने लगते थे और वह टूट जाती थी।

पिछली शताब्दी के अंत में हॉलैंड ने रूस को मालगाड़ी द्वारा टिन की सिल्लियां भेजीं। मास्को में जब मालगाड़ी के डिब्बे खोले गए तो उनके अंदर टिन की जगह एक भूरे रंग का पाउडर मिला जो किसी काम का न था। यह रूसी ठंड की करामात थी, उसने टिन के खरीदारों के साथ गंदा मजाक किया था।

लगभग इन्हीं दिनों अच्छी तरह से सुसज्जित एक अभियान-दल साइबेरिया भेजा गया। इस बात का पूरा-पूरा ख्याल रखा गया था कि साइबेरिया की भयंकर

ठड से काम मे बाधा न पडे परंतु यात्रियों से एक गलती वे अपने साथ टिन के बने बर्तन ले गए थ जो शीघ्र ही बेका होकर उन्हे लकड़ी के चम्मच व पतीले बनाने पड़े। तब कहीं ज आगे बढ़ पाया।

बीसवीं शताब्दी के बिलकुल आरंभ में पीटर्सबर्ग के मि सनसनी-खेज घटना घटी। लेखा-परीक्षण के दौरान यह पता च वर्दियो के लिए रखे टिन के सारे-के-सारे बटन गायब है। जिन रखे हुए थे वे ऊपर तक भूरे रंग के एक पाउडर से भरे पड बड़ा परेशान था। उसे यह डर था कि चोरी के इल्जाम में उ जाएगा और कड़ी सजा दी जाएगी। परंतु रासायनिक प्रयोगश इस बेचारे की जान बचा दी। इस रिपोर्ट मे ये शब्द लिखे हु चीज भेजी है वह टिन ही है। लगता है कि यहां हमारा वास्ता ' से पड़ा है।'

इस परिवर्तन के दौरान टिन के अंदर कौन-सी प्रक्रिया युग में पादरी लोग यह विश्वास रखते थे कि डाइनें टिन को है। उनके आदेश पर बहुत सारी निर्दोष महिलाएं जिंदा जला दी के विकास के साथ इन धारणाओ की असंगति स्पष्ट होती वैज्ञानिक बहुत दिनो तक टिन की महामारी का असली कारण

एक्स-रे की खोज होते ही धातुकर्मियो ने धातुओ के अंदर झाककर देखना शुरू कर दिया। इसके बल पर वे धातु की क्रिस्टलीय सरचना का अध्ययन करने मे सफल हुए और तब 'डाइनों' के माथे पर लगा कलंक मिट गया और इस रहस्यमयी बीमारी का सही वैज्ञानिक कारण पता चल गया। साधारण तथा उच्च ताप पर सबसे अधिक परिवर्तनशील सफेद टिन होता है जो एक तन्य धातु है। 13°C से नीचे ताप पर टिन की क्रिस्टलीय जाली इस प्रकार फैल जाती है कि उसके
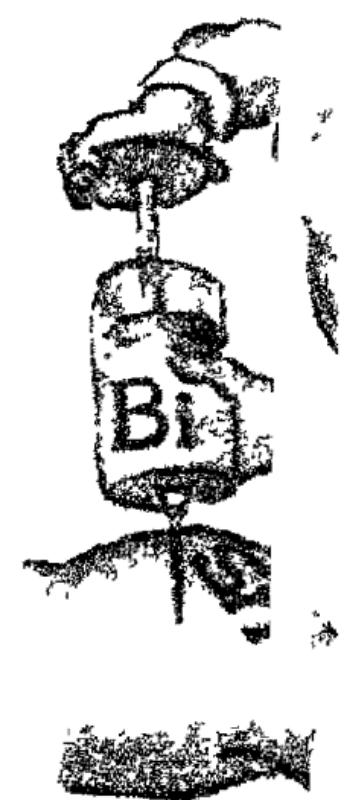
ज्यादा खुल होकर बैठ जाते है। इस प्रक्रिया के फलस्वरूप टिन का
जाता है और वह धातु के गुण खो देता है। अब यह अर्द्धचालक
। इस प्रकार विभिन्न क्रिस्टलीय जालियों के जोडो मे आंतरिक प्रति
होने लगते हैं जिनके परिणामस्वरूप पदार्थ चटकने लगता है और ि
म परिवर्तित हो जाता है। यही कारण है कि अत्यधिक शीत टिन
ो इतनी जल्दी म गला देती है। आसपास का तापमान जितना नी
क्रिस्टलों के अंदर यह परिवर्तन इतनी ही जल्दी होता है।–33°C
पर इस परिवर्तन का वेग उच्चतम होता है। इसलिए सख्त सर्दी ि
। चीजो को बुरी तरह बर्बाद करती है।

हा पाठक यह कह सकते हैं कि रेडियो इंजीनियरी में (विशेषत
र्कों में) सोल्डरिंग के काम में टिन ही तो इस्तेमाल किया जाता है। इस
तार तथा अन्य पुर्जे भी टिन की सहायता से ही जोडे जाते हैं। अथ
करणों के साथ-साथ टिन भी आर्कटिक, अण्टार्कटिक तथा अन्य ठंडी जग
जाता है। तो क्या इसका मतलब यह हुआ कि जिन उपकरणो मे ि
ता है, वे ठंडी जगहों मे तुरंत खराब हो जाते हैं? जी नहीं, ऐसी ब
हीं है। वैज्ञानिक टिन को टीका लगाना सीख चुके है। इस टीके से ि
मारी का कोई असर नहीं पड़ता। इस प्रकार के टीके के लिए एक उपयु
बिस्मथ है जिसके परमाणु टिन की जाली में अतिरिक्त इलेक्ट्रान भेज
मजबूत बना देते हैं जिससे उसे बीमारी का तनिक भी खतरा नही रह
शुद्ध टिन में एक अद्वितीय गुण विद्यमान होता है : इस धातु की शल

या प्लेटें मोडने पर चटक की आवाज सुनाई देती है इसे टिन का रोना कह सकते हैं टिन के क्रिस्टलों के अव्यवस्थित तथा विकृत होने के दौरान उनके पारस्परिक घर्षण से यह आवाज निकलती है, परन्तु टिन के गुणाग्र इस अवस्था मे 'अपनी जबान बंद रखते हैं।'

विश्व में उत्पादित टिन का लगभग आधा भाग टिन प्लेट के उत्पादन में व्यय हो जाता है जो मुख्यत डिब्बों के निर्माण मे प्रयोग किया जाता है। इस क्षेत्र मे टिन की अच्छाइयां बहुत काम की साबित होती हैं : ऑक्सीजन, जल तथा कार्बनिक अम्लो के प्रति इसका रासायनिक प्रतिरोध तथा मनुष्य के शरीर के लिए इसके लवणों का पूर्णतया अहानिकारक होना। टिन यह काम बड़ी बहतरी से करता है। कोई दूसरी धातु शायद ही इसका मुकाबला कर सके। इसी वजह से टिन को 'डिब्बों की धातु' (canning metal) कहते हैं। टिन की बहुत पतली परत से लोग लाखो टन मास, मछली, फल, सब्जियां तथा दूध की चीजें सुरक्षित रख पाते है।

पहले टिन का लेप चढाने के लिए गरम टिन इस्तेमाल किया जाता था साफ तथा चिकनाईरहित लोहे की एक परत को पिघले टिन मे डुबाया जाता था। अगर परत की केवल एक सतह पर टिन चढाना होता था तो इसको साफ करके गरम किया जाता था ओर फिर टिन के साथ रगड़ा जाता था। अब इस विधि का प्रचलन बंद हो गया है ओर इसकी जगह 'विद्युत अपघटन बाथ' की विधि इस्तेमाल की जाती है।

कभी-न-कभी हर डिब्बे को कूडे के ढेर का मुह जरूर देखना पडता है, परन्तु टिन (हर डिब्बे मे इसकी मात्रा आधे ग्राम के लगभग होती है) को वहा ज्यादा देर तक नही रहना पड़ता। मनुष्य इस बात का ख्याल रखता है कि इस कीमती धातु को इकट्ठा करके फिर से काम लायक बनाया जा सके। टिन को अलग करना कोई ज्यादा मुश्किल काम नही है। क्षारो से इसे अलग करने के लिए विद्युत धारा का इस्तेमाल किया जाता है। इस काम मे टिन के एक अन्य गुण का उपयोग किया जाता है : यह क्लोरीन के साथ बड़ी सरलता से प्रतिक्रिया करता है। अगर एक पुराने डिब्बे पर शुष्क क्लोरीन छिड़क दी जाए, तो डिब्बा वाष्पशील स्टैनस क्लोराइड में बदल जाता है जिससे टिन प्राप्त करना बहुत आसान काम है।

टिन अपेक्षाकृत बहुत कम गलनाक वाली धातु है। प्रसिद्ध लेखक हैन्स क्रिस्टियन एंडरसन की कहानी की वह घटना आपको याद होगी कि जैसे ही निर्दयी लडके ने टिन के सैनिक को आग में फेंका, वह तुरंत पिघल गया। निम्न गलनाक के कारण यह धातु सोल्डरिंग के काम मे मुख्य स्थान रखती है।

एक दिलचस्प बात यह है कि बिस्मथ (52%) तथा लेड (32%) के साथ टिन (16%) का एलॉय उबलते पानी में पिघलाया जा सकता है : इस ऐलॉय का गलनांक केवल 95°C होता है जबकि, इसके घटकों का गलनाक काफी उच्च होता है - टिन का 232°C, बिस्मथ का 271°C तथा लेड का 327°C। गैलियम तथा इंडियम के साथ टिन के ऐलॉयों का गलनांक और भी निम्न होता है। उदाहरणतया, एक ऐसे ऐलॉय का गलनांक [illegible]°C है। इस प्रकार के ऐलॉय बिजली के फ्यूजों में इस्तेमाल किए जाते हैं।

विभिन्न प्रकार के कांसे, प्रिंटिंग एलॉयों तथा बैबिटो (उच्च जीर्णरोधता वाले एलॉयों का बोधक करने हेतु व बाल-बेयरिंग में इस्तेमाल किए जाते है) मे भी टिन मिलाया जाता है।

तकनीक के विभिन्न क्षेत्रों में टिन के रासायनिक योगिको का प्रयोग विस्तृत है। स्टैनस तथा स्टैनिक क्लोराइड रुई तथा रेशम के रंजन मे रंगवधक का कार्य करते हैं। प्राकृतिक रेशम बहुत हल्का होता है तथा इस पर रंग चढ़ाना बहुत मुश्किल काम होता है। टिन के यौगिकों के विलयनों मे रेशम भिगोने पर उसके तन्तुओं पर स्टैनिक हाइड्रो-ऑक्साइड जम जाता है। कई बार तो इसकी मात्रा कपड़े के भार का दुगना हो जाती है, जिसकी वजह से रेशम पर रंग पक्की तरह से चढ़ जाता है।

चीनी मिट्टी के बर्तनों तथा कांच में लाली लाने के लिए कासियस-पर्पिल इस्तेमाल करते हैं जो स्टैनस क्लोराइड तथा स्वर्ण क्लोराइड के विलयन से बनाया जाता है। सुनहरे (स्वर्ण) रंग में रंगने के लिए स्टैनस डाइसल्फाइड प्रयुक्त किया जाता है। इसे मोजेक स्वर्ण भी कहते हैं।

युद्ध के समय स्टैनिक क्लोराइड धुएं के बादल पैदा करने के लिए इस्तेमाल किया जाता है। यह पदार्थ जल के साथ बड़ी आसानी से प्रतिक्रिया कर जाता है जिसके फलस्वरूप स्टैनिक डाइऑक्साइड घने धुएं के रूप में निकलने लगता है।

यह कहना बहुत कठिन है कि मनुष्य का टिन के साथ परिचय कब हुआ। शुरू में टिन केवल कांसे नाम के ऐलॉय के निर्माण में इस्तेमाल किया जाता था। इस ऐलॉय को कांसा कहते हैं, जो ईसा से पूर्व युग में भी प्रचलित था। कासे के हथियार तांबे के हथियारों से काफी ज्यादा मजबूत होते थे। शायद इसी वजह से लातीनी भाषा में टिन का नाम 'स्टैनुम' रखा गया जिसका अर्थ है--सख्त।

शुद्ध रूप में टिन बहुत ही नर्म होता है, अतः यहां नाम बडे और दर्शन छोटे वाली बात सच्च सिद्ध होती है। परंतु इतिहास ने इस विरोधाभास को उचित

सिद्ध कर दिया है। धातुकर्मी दिन-रात इस नर्म धातु को जी-भरकर तोडते-मोड़ते रहते है और कभी सोचने तक नही हैं कि उनका वास्ता एक 'सख्त' धातु के साथ पड रहा है।

60 शताब्दियो पुरानी कब्रों की खुदाई करने पर वहा कांसे की बनी कई चीजें मिली है। प्लीनी ज्येष्ठ ने दर्पणों का वर्णन करते हुए इस बात का दावा किया कि 'हमारे बाप-दादाओं के जमाने में सबसे उम्दा दर्पण ब्रुण्डीजियम में बनाए गए और वे ताम्र और टिन के मिश्रण से बनाए गए।'

यह निश्चित करना बहुत कठिन है कि मनुष्य ने टिन का शुद्ध रूप में इस्तेमाल कब शुरू किया। मिस्र के अठारहवे राजवंश (ईसा से 1580 से 1350 वर्ष पूर्व के बीच के अर्से के दौरान) के एक सदस्य की कब्र में पुरातत्त्वज्ञो को टिन की एक अगूठी तथा बोतल मिली है जिन्हें टिन की सबसे प्राचीन चीजे म

प्रसिद्ध यूनानी कवि होमेर ने अपनी पुस्तक 'इलिआड' मे वर्णन किया है कि किस प्रकार अग्नि तथा धातु के देवता हैफेस्टेर को एक खास ढाल बनाकर दी। इस ऐतिहासिक ढाल पर एक चि

ढाल बनाने के बाद हैफेस्टे ने आचिलस की टांगों की रक्षा के कवच भी बनाकर दिए।

पेरू के रेड-इडियनो इंका जाति के लोगो के एक पुराने किले को शुद्ध टिन मिला है। उन लोगों ने यह टिन शायद कांसे के नि रखा होगा। यहां के लोग किसी जमाने मे बडे बढ़िया धातु-कर्मी और इनकी बनाई कांसे की चीजें बहुत उम्दा समझी जाती थी।

कि इंका जाति के लोग टिन को शुद्ध रूप में इस्तेमाल नहीं करते थे क्योंकि इस किले में शुद्ध टिन की बनी एक भी चीज नहीं मिली है।

स्पेनिश विजेता फर्नान्डो कोर्टेज ने सोलहवीं शताब्दी के आरभ मे मैक्सिको जीत लिया। उसके लेख में निम्न शब्द मिलते हैं : 'टाक्स्को प्रात के लोगो के पास मैंने टिन के छोटे-छोटे कुछ गोल टुकडे देखे। आगे बढते-बढते मुझे पता चला कि इस प्रांत में तथा मैक्सिको के अन्य भागों में टिन के ये टुकडे सिक्को के रूप में चलते थे।'

1925 में इंग्लैंड में पुरातत्त्वज्ञों को ईसा से तीन शताब्दी पूर्व पुराने एक दुर्ग की खुदाई करवाते समय कुछ प्रगलन गर्त मिले जिनके अदर टिनयुक्त धातुमल पडा था। इसका मतलब यह हुआ कि 2000 से भी ज्यादा साल पहले इंग्लैड मे टिन-उद्योग विकासमान था। जूलियस सीजर ने अपनी पुस्तक 'डे बैलो गैलिको' मे भी इस बात का वर्णन किया है कि इंग्लैंड के कुछ इलाकों में टिन का उत्पादन विकसित था।

सन् 1917 में इंग्लैंड में 94 कारीगरों को मरणोपरात प्रतिष्ठित किया गया। इन बेचारों को 800 साल पहले झूठे इलजाम में कड़ी सजा भुगतनी पडी थी। बात यह थी कि 1125 में इंग्लैंड के बादशाह हेनरी प्रथम ने अपनी टकसाल के कर्मचारियों पर बेईमानी का इलजाम लगाया। किसी ने बादशाह से यह कह दिया था कि चांदी के सिक्के ढालते समय ये कारीगर उनमे टिन बहुत ज्यादा मात्रा में मिला देते थे। शीघ्र ही यह मामला बादशाह की अदालत के सामने आया और वहां इन निरपराध लोगों को कड़ी सजा सुना दी गई। अदालत के आदेश पर इन बेचारों के दायें हाथ काट दिए गए। साढे आठ सौ से भी ज्यादा साल बाद आक्सफोर्ड के एक वैज्ञानिक ने इन बदनसीब सिक्कों का एक्स-रे द्वारा बडी बारीकी से अध्ययन किया। वैज्ञानिक ने बड़े विश्वास के साथ इस बात की घोषणा की कि इन सिक्कों में टिन की मात्रा बहुत ही कम है। बादशाह को गलतफहमी हो गई थी।

पुराने जमाने से कैसिटराइट (रांगा पत्थर) टिन का मुख्य स्रोत चला आ रहा है। इस कीमती खनिज के विशाल निक्षेप मलाया द्वीप समूह मे है। सोवियत संघ में टिन अयस्क सुदूर पूर्व, ट्रांसबैकाल क्षेत्र तथा कजाखस्तान में मिलते है। उसुरीस्क शहर के एक कारखाने के संग्रहालय में 'रांगा पत्थर' का एक अतिविरल नमूना रखा हुआ है। इसकी लंबाई, चौड़ाई व ऊंचाई केवल 30×20×8 सेंटीमीटर है, परंतु इसका वजन 50 किलोग्राम है।

कुछ साल पहले वैज्ञानिकों ने टिन संसूचक नामक एक उपकरण का निर्माण

किया है जिसकी सहायता से भूविज्ञानी कुछ मिनटों में अयस्क के अंदर टिन की बिल्कुल सही-सही प्रतिशत मात्रा जान सकते हैं। इस उपकरण की एक खास बात यह है कि यह केवल केसिटेराइट की उपस्थिति में कार्य करता है। टिन के अन्य खनिजों का इस पर कोई असर नहीं पड़ता, उदाहरणार्थ स्टेनाइट, जो उद्योग-जगत के लिए किसी काम का नहीं होता।

सोवियत वैज्ञानिकों ने कुछ समय पहले एक महत्त्वपूर्ण खोज की है। उन्होंने यह सिद्ध कर दिखाया है कि फ्लुओरिन की सहायता से किसी भी भौगोलिक क्षेत्र मे टिन की उपस्थिति का पता लगाया जा सकता है। अनेक प्रयोगों तथा विश्लेषणों के आधार पर इन वैज्ञानिकों ने वे प्रक्रियाएं दोहराकर दिखा दीं जो लाखो साल पहले अयस्कों की रचना के समय घटी होंगी। उस प्रागैतिहासिक युग मे टिन एक यौगिक पदार्थ के रूप में मिलता था तथा इसके अंदर फ्लुओरिन जरूर उपस्थित होती थी। धीरे-धीरे टिन तथा इसके यौगिक एक अवसाद के रूप में जमा होते गए। आगे चलकर इन जगहों पर टिन के निक्षेप बनते गए तथा टिन की भूतपूर्व सहेली फ्लुओरिन ने हमेशा के लिए इन भंडारों के पास अड्डा बना लिया। इस महत्त्वपूर्ण खोज के आधार पर अब टिन के भंडारों का पता लगाया जा सकता है।

भूविज्ञानी केसिटेराइट जमीन के अलावा जल के अंदर भी खोज रहे हैं। उनकी कोशिशे बेकार नहीं जा रही हैं . जापान सागर मे टिखान्गा खाड़ी में रांगे पत्थर के भडार मिले है। उत्तरी ध्रुवीय महासागर के किनारे तथा कुछ अन्य इलाके भी इनसे समृद्ध हैं। गोताखोर इस काम मे भूविज्ञानियो की बहुत सहायता कर रहे हैं। भूविज्ञानियो ने खुद भी एक विशेष गोताखोरी-सूट बनाया है जिसके बिना उत्तरी महासागर मे इस काम का प्रयास करना बिल्कुल बेकार है।

टिन की कमी होने की वजह से वैज्ञानिक तथा इंजीनियर लोग हर समय यह सोचते रहते हैं कि इसकी जगह और कौन-सी धातु से काम चलाया जा सकता है। उधर यह धातु नए-नए क्षेत्र में उपयोगी सिद्ध हो रही है। कुछ दिनों पहले अमरीकी कपनी 'फोर्ड मोटर्स' ने एक कारखाना लगाया है जिसमें मोटरों की खिडकियों के शीशों का निर्माण एक नई विधि से किया जा रहा है। इस शीशे की चौड़ाई 2.5 मीटर है। इस विधि के अंतर्गत पिघले शीशे को 53 मीटर लबे बाथ मे द्रवित टिन के ऊपर फैला दिया जाता है। चूंकि गलित धातु (टिन) की सतह बहुत चिकनी होती है इसलिए उसके ऊपर ढाला शीशा पहले ठंडा तथा फिर सख्त होकर खुद भी बहुत चिकना हो जाता है। अब इस शीशे पर पालिश करने की कोई जरूरत नही रहती जिसकी वजह से काफी खर्चा बच जाता है।

सोवियत वैज्ञानिकों ने एक निराला शीशा बनाया है जो सूरज को पकड़ सकता है। यह शीशा देखने मे एक आम शीशे की तरह लगता है। अंत केवल यह होता है कि इसके ऊपर स्टैनिक डाइऑक्साइड का बहुत पतला लेप चढ़ा होता है जो आंखों को दिखाई नहीं देता है। यह लेप सूरज की किरणों को केवल आने देता है और इस बात का बड़ी चौकसी से ख्याल रखता है कि उनकी गर्मी बाहर न निकले। ऐसा शीशा सब्जी के खेतो के मालिको के लिए बहुत काम का रहेगा। दिन में सूरज की किरणो से गरम होकर यह कांचघर रात के वक्त भी दिन जैसा तापमान बनाए रखेगा। साधारण शीशे मे यह गुण नहीं होता। वह सूरज की गर्मी व्यर्थ करता रहता है। सड़क पर –10°C तापमान होने पर भी अब कांचघरो में पौधे उगाए जा सकते हैं। यह करामात इन शीशो की है। टिन का लेप चढ़े शीशे सौर-हीटरों तथा अन्य उपकरणो में काम के सिद्ध हो सकते है जहा सूरज की गर्मी को ऊर्जा में बदला जाता है।

टिन की जीवन-कथा अधूरी रह जाएगी अगर हम आपको एक जासूसी कहानी नहीं सुनाएंगे जहां इस धातु ने बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

...द्वितीय विश्वयुद्ध का अंत नजदीक आ रहा था। 'आजाद स्लोवाकिया' राज्य के नेताओं को अपना भविष्य अंधेरे में दिखाई दे रहा था। हिटलर ने 1939 मे इन नेताओं को चेकोस्लोवाकिया के इस राज्य की गद्दी सौंप दी थी। इन नेताओ ने बुरे दिनो के लिए कोई चीज छिपाकर रखने का फैसला किया। सरकारी खजाने में भरा सोना छिपाना सबसे आसान काम था। परंतु कुछ देशभक्तों ने इस योजना को असफल करने का निश्चय किया। इनमें से कुछ बैंक के कर्मचारी भी थे। उन्होंने सोने का एक हिस्सा गुप्त रूप से स्वीटजरलैंड के एक बैंक में पहुंचा दिया जहां यह युद्ध के अंत तक चेकोस्लोवाकिया सरकार के खाते में जमा रहा। सोने का कुछ भाग देशभक्तों-छापेमारों के पास पहुंचा दिया। परंतु अभी भी ब्राटीस्लावा के बैंक में काफी सोना बाकी रह गया।

कठपुतली सरकार के एक नेता ने ब्राटीस्लावा में जर्मन राजदूत को चुपके से यह बात बता दी और बैंक के सेफों मे भरे इस खजाने को लूटने के लिए सैनिक मांगे। इस लूट का एक और भागीदार बन गया। यह जर्मन SS का एक जनरल था। अब लूट के इस ऑपरेशन की सफलता की गारंटी लग रही थी।

SS के सैनिकों ने बैंक को चारों ओर से घेर लिया। उनके अफसर ने बैंक के कर्मचारियों को बंदूक दिखाकर खजाने की चाबियां ले लीं। बस फिर क्या था? कुछ मिनटों बाद सोने से भरे बक्से जर्मन ट्रकों पर लाद दिए गए। उन लोगों की खुशी का ठिकाना न था, परंतु उन्हें यह पता नहीं था कि बक्सो मे

जो सोना भरा था उसे टकसाल के चतुर डायरेक्टर ने. ।
जर्मन सैनिको के जाते ही बैंक के कर्मचारियों ने गुप्त ज
के तालों की जांच की जिनके अंदर असली सोना भरा र
से उस दिन का इंतजार कर रहे थे जब उनका देश जर्म
हो जाएगा।

जन्म के समय बहुत यंत्रणा हुई

टैण्टेलस की यंत्रणा–समानता धोखे में डाल देती है–हेनरी रोज गलतफहमी दूर करता है–हमेशा एक-दूसरे के साथ रहते हैं–100 साल बाद–पूर्वसूचना सच निकलती है–आपके पास कोई सिफारिश चिट्ठी है?–माचिस की तीली के सिरे से बड़ा नहीं है–रुचि बढ़ती जाती है–अम्ल-राज का भी इस पर कोई असर नहीं होता–क्या यहां खोपड़ियों की मरम्मत की जाती है?–टैण्टेलस से तंत्रिकाएं बनाई जाती हैं–रोग का निदान बिल्कुल ठीक निकला–मानवोचित मिशन–मालदार गाहक–अतिविशाल तापमान इसका कुछ नहीं बिगाड़ सकते हैं–नजदीकी संबंध–टैण्टेलस 'गरम' कामों मे इस्तेमाल किया जाता है–टैण्टेलस के साथ हमदर्दी है–इसकी निष्ठा देखकर ईर्ष्या होती है–जौहरियों के हाथ में खर्चा वसूल हो जाता है

एक बार भगवान जीयस के चहेते पुत्र फ्रीजिया के बादशाह टैण्टेलस ने देवताओं को भोज पर बुलाया। देवताओं को प्रसन्न करने के लिए उसने अपने पुत्र पेलोप्स के मांस से विशेष व्यजन बनवाया। बादशाह की इस क्रूरता से देवता लोग बहुत क्रोधित हुए और उन्होंने उसे शाप दिया कि वह हमेशा भूखा और प्यासा रहेगा तथा डर से सताया जाएगा।

उस दिन से टैण्टेलस जल के बीच खडा है। उसकी गर्दन पानी से बाहर निकली हुई है और पक्के फलों से लदी डालिया उसके मुंह के पास झूल रही है। जैसे ही वह अभागा अपनी प्यास बुझाने के लिए मुंह खोलता है, पानी उसके होठों के ऊपर से निकल जाता है। भूख मिटाने के लिए जैसे ही वह हाथ फलो की ओर बढ़ाता है, हवा डालियों को ऊपर उठा देती है। पापी इतना अशक्त होता है कि अपनी जगह से हिल तक नहीं पाता और भूखा ही खड़ा रहता है।

उसके सिर के ऊपर एक चट्टान लटक रही है जो किसी भ
तोड सकती है।

एक यूनानी दंतकथा में 'टैण्टालस की यंत्रणा' का
मिलता है।

स्वीडिश रसायनज्ञ एण्डेरस एकबर्ग को इस कथा के नायक की यंत्रणा की कई बार याद आई होगी जब वह एक नए तत्त्व के ऑक्साइड को विभिन्न अम्लों मे घोलने में असफल रहे। यह तत्त्व इस वैज्ञानिक ने 1802 में खोजा था। कई बार वैज्ञानिक को ऐसा लगा कि वे सफलता के बहुत नजदीक हे परतु इस नई धातु को शुद्ध रूप में प्राप्त करने में वह असफल रहे। थककर उन्होंने अपनी हार मान ली और इस धातु को अलग करने का विचार ही छोड दिया, परतु अपनी परेशानियो की याद मे उन्होंने इसका नाम 'टैण्टेलम' रखने का फैसला किया।

कुछ समय बाद यह पता चला कि टैण्टेलम का एक जुड़वां भाई भी है जो उससे पहले पैदा हुआ है, परंतु उसके गुण बिल्कुल टैण्टेलम जैसे हैं। यह जुडवां भाई कोलंबियम था जिसकी
अग्रेज वैज्ञानिक चार्ल्स हैटचेट ने की थी। दोनों तत्त्वों में इत
होने से बहुत सारे रसायनज्ञों को गलतफहमी हो गई थी। व
वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि ये दो अलग-अलग तत्त्व न होक
है।

यह गलतफहमी 40 साल तक बनी रही। 1844 मे ज
रोज ने इस भ्रम को दूर किया और यह सिद्ध किया कि कोल

दो अलग-अलग तत्त्व हे तथा कोलवियम के भी उतने ही अधिकार है जितने टैण्टेलम के। दोनों तत्त्वों के नजदीकी सबधो का ध्यान रखते हुए रोज ने कोलबियम को एक नया नाम दे दिया--नियोबियम (टैण्टेलम की पुत्री का नाम नियोबिया था)।

तब से टैण्टेलम और नियोबियम एक-दूसरे के साथ रह रहे है, परतु इन बचारो की किस्मत बड़ी खराब रही है।

कई दशको तक औद्योगिक जगत् ने टेण्टेलम मे कोई रुचि नहीं दिखाइ। और यह बात स्वाभाविक थी। उस वक्त टैण्टेलम था भी कहां। इसकी खोज के केवल 100 साल बाद यह धातु शुद्ध रूप में प्राप्त की जा सकी। यह घटना 1903 की है। तब 101 साल की उम्र मे इस धातु को पहली बार कोई काम दिया गया उच्चतापरोधी गुण के कारण वैज्ञानिकों ने बिजली के बल्बो मे टैण्टेलम इस्तेमाल करने का फैसला किया। और कोई प्रस्ताव न मिलने के कारण मजबूरी मे टेण्टेलम को हा करनी पड़ी हालाकि वह समझ रहा था कि यह काम उसकी हैसियत लायक नही है।

इसकी आशंका ठीक ही निकली। धातुओं की दुनिया के कठोर नियमो ने शीघ्र ही इसकी रोजी छीन ली। इसकी जगह एक अन्य धातु टग्स्टन को दे दी गई जिसका गलनांक और भी ज्यादा उच्च था।

टेण्टेलम फिर से बेकार हो गया। 'रोजगार की दुनिया' मे केवल उन धातुओ को काम दिया जा रहा था जो पुराने जमाने से प्रसिद्ध चली आ रही थीं या जिनके पास भौतिकविदों, रसायनज्ञों या अन्य वैज्ञानिकों की सिफारिश होती थी। उन दिनो टैण्टेलम का विज्ञान तथा तकनीक की दुनिया के लोगो से बहुत थोड़ा परिचय था, अतः मजबूर होकर उसे चुप बैठा रहना पड़ा। परंतु एक दिन उसकी भी किस्मत जाग उठी · 1922 मे वैज्ञानिको ने इसका प्रयोग विद्युतधारा के संशोधको मे करके देखा जो सफल रहा। इसके एक साल बाद रेडियो वाल्वों में इसका इस्तेमाल करके देखा गया। यहां भी इसने बड़ी निष्ठा से फर्ज निभाया। बस फिर क्या था, वैज्ञानिक इस धातु की कीमत जान गए थे। उन्होने इसके औद्योगिक उत्पादन की विधिया ढूढनी शुरू कर दी।

आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि 1922 में औद्योगिक स्तर पर प्राप्त टैण्टेलम की प्रथम शलाका माचिस की तीली के सिरे से बड़ी नहीं थी। आज टैण्टेलम की फैक्टरियो से जो शलाके निकलती है उनका आकार कई बार प्रथम शलाका से 1000 गुना बडा होता है।

भू-पर्पटी मे टैण्टेलम की मात्रा केवल 0 0002% है, परंतु इसके खनिज

प्रकृति मे काफी विस्तृत है। इनकी सख्या 130 के लगभग है (इन खनिजो के अदर टैण्टेलम हमेशा नियोबियम के साथ मिलता है)। टैण्टलाइट तथा कोलंबाइट टैण्टेलम के मुख्य खनिज हैं जिनके विशाल निक्षेप अफ्रीका तथा दक्षिण अमरीका मे है।

अगर द्वितीय विश्व युद्ध से पूर्व टैण्टेलम-नियोबियम अयस्को का वार्षिक उत्पादन 600 से 900 टन के बीच था, तो 1944 मे आकर इनका उत्पादन कई गुना बढ गया। अकेले सयुक्त राज्य अमरीका में 1940 से 1944 के बीच टैण्टेलम का उत्पादन 12 गुना बढ गया था। टैण्टलम मे इतनी अधिक रुचि का कारण स्पष्ट था। विज्ञान जगत् को इस धातु के कई महत्त्वपूर्ण गुण पता चल गए थे जिनकी वजह से तकनीक के विभिन्न क्षेत्रो के विशेषज्ञों का ध्यान इसकी ओर आकर्षित हो गया।

टैण्टेलम हल्के भूरे रंग का होता है तथा इसमें थोडा-सा नीलापन होता है। इसका गलनाक (3000°C के लगभग) केवल टग्स्टन तथा रेनियम मे निम्न है। अत्यधिक मजबूत तथा सख्त होने के साथ-साथ यह अति नम्य भी होता है। शुद्ध टैण्टेलम को तोडना-मोडना काफी सरल होता है जिसकी वजह से विभिन्न मैकेनिकल कामो (स्टैम्पिग, रौलिग आदि) मे सरलता से प्रयुक्त हो जाता है। टैण्टेलम के पत्ते 0.04 मिलीमीटर तक पतले हो सकते है तथा इनके तार खीचे जा सकते है।

इस बात मे कोई शक नहीं कि उच्च रासायनिक प्रतिरोध टैण्टेलम का सबसे महत्त्वपूर्ण गुण है तथा इस बात में यह केवल कुछ धातुओं से निम्न है और वह भी हमेशा नहीं। टैण्टेलम पर सान्द्रित अम्ल तो क्या, अम्लराज का भी कोई असर नही होता। 200°C नाप पर 70% नाइट्रिक अम्ल मे टैण्टेलम मे तनिक भी सक्षारण नही उत्पन्न होता। सल्फ्यूरिक अम्ल मे भी 150°C ताप पर इस धातु का कुछ नहीं बिगड़ता। 200°C पर साल-भर मे इस अम्ल में सक्षारण के कारण टैण्टेलम की कुछ हानि 0.006 मिलीमीटर से ऊपर नहीं बढती। इस अद्वितीय गुण के कारण रासायनिक उपकरणो के निर्माण के लिए टैण्टेलम एक बहुत कीमती पदार्थ माना जाता है।

बहुत सारे अम्लों (हाइड्रोक्लोरिक, सल्फ्यूरिक, नाइट्रिक, फास्फोरस तथा ऐसीटिक) हाइड्रोजन परऑक्साइड, ब्रोमीन तथा क्लोरीन के उत्पादन मे टैण्टेलम के बने उपकरण प्रयुक्त किए जाते है। हाइड्रोजन क्लोराइड गैस का उत्पादन करने वाले एक कारखाने में जंगरोधी स्टील के पुर्जे 2 महीने बाद ही खराब हो गए। लेकिन जैसे ही जंगरोधी स्टील की जगह टैण्टेलम इस्तेमाल किया गया तो सबसे पतले पुर्जो (0 3-0.5 मिलीमीटर) की कार्य-अवधि भी 20 साल बढ गयी। केवल

हाइड्रोफ्लुओरिक अम्ल एक ऐसी चीज हे जिससे टैण्टेलम घबराता है।

स्वर्ण तथा रजत के विद्युत अपघटनी निष्कर्षण में टैण्टेलम कैथोड प्रयुक्त किए जाते है। इन कैथोडों की खासियत यह होती है कि स्वर्ण तथा रजत तो अम्लराज में विलयित हो जाते हैं, परंतु टेण्टेलम पूर्णतया सुरक्षित रहता है।

टेण्टेलम मे एक और अद्वितीय गुण होता है—यह जीवित ऊतकों के साथ बडी आसानी से घुल-मिल जाता है और उन्हें तनिक-सा भी उत्तेजित नही करता। इस गुण के आधार पर चिकित्सा में इसका प्रयोग बहुत विस्तृत है। उदाहरण के लिए, खोपड़ी मे फ्रैक्चर होने पर इस धातु की प्लेटें लगाई जाती हैं। चिकित्सा के इतिहास में एक ऐसी घटना पढ़ने को मिलती है जब एक रोगी के शरीर मे टेण्टेलम का कृत्रिम कान फिट किया गया। इस कान के लिए मांस उस मनुष्य की जांघ से लिया गया था। यह कान इतनी सफाई से बनाया गया था कि यह बताना मुश्किल था कि कौन-सा कान असली है और कौन-सा नकली? मनुष्य की पेशियों के विकृत तंतु टेण्टेलम तंतुओ से बदले जाते है। सर्जन लोग रोगी का ऑपरेशन करने के बाद उसकी उदरीय दीवारे टैण्टेलम से मजबूत करते हे टेण्टेलम के क्लैम्प किताब के टाकों की तरह रुधिरवाहिकाओं को बड़ी मजबूती से जोड़ देते हं। टेण्टेलम की जालिकाएं कृत्रिम आंखों में इस्तेमाल की जाती हे। इस धातु के अति बारीक धागे कडराओं तथा तंत्रिकाओं के ऊतकों की जगह इस्तेमाल किए जाते हे। अगर 'फौलादी नसें' शब्दों का प्रयोग एक मुहावरे के रूप में किया जाता है तो 'टेण्टेलम नसें' एक वास्तविक बात है।

स्वीटजरलैंड के डॉक्टरों का विश्वास है कि मनुष्य की श्वसन-नली तथा फेफड़ों के एक्स-रे के विश्लेषण में टैण्टेलम एक विशेष सूचक का काम कर सकता है। शरीर के लिए पूर्णतया अहानिकारक टैण्टेलम पाउडर के कण श्वसन-क्रिया के दौरान सांस के साथ श्वसन अंगों के छोटे-से-छोटे हिस्सों में पहुच जाते हैं, परंतु ये कण वहां ठहर नहीं पाते। स्वस्थ ऊतक इन्हें अपने ऊपर टिकने नहीं देते, परंतु रोगी ऊतको मे इतनी शक्ति नहीं होती कि वे इन्हें भगा दें, वहां ये बड़ी आसानी से डेरा डाल लेते हैं। एक्स-रे लेते ही ये कण
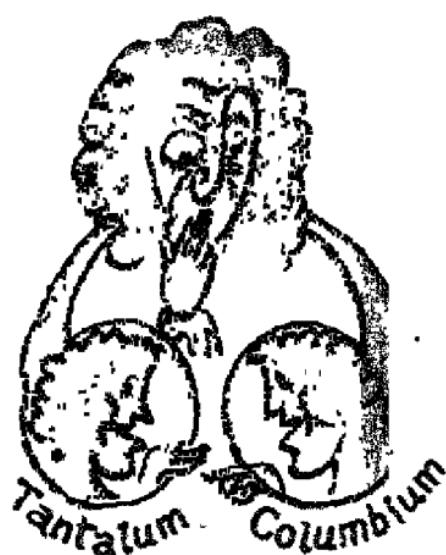
दिखाई दे जाते है जिससे ठीक-ठीक पता चल जाता है कि व
है।

चिकित्सा टैण्टेलम का असली धंधा जरूर नहीं है पर
नेक धधा है। वास्तव में कितनी अजीब बात है कि जिस
कथा के एक सजायाफ्ता पात्र का नाम दिया गया, वही आज
कष्टों से मुक्ति दिला रही है।

विश्व में टैण्टेलम के कुल उत्पादन का केवल 5% भाग
में इस्तेमाल होता है, 20% के लगभग रासायनिक उद्योगों में
धातु तथा इसके ऐलॉयों का असली उपभोक्ता यान्त्रिकी है (1
पिछले कुछ सालों से एक ऐलॉय घटक के रूप में टैण्टेलम
बढ़ता जा रहा है। अत्यधिक मजबूत, संक्षारण-प्रतिरोधी तथा
विशेष स्टीलों में यह धातु इस्तेमाल की जा रही है। टैण्टेलम
असर होता है जो नियोबियम का। ये धातुएं साधारण संक्षारण-
स्टील की मजबूती बढ़ा देती हैं तथा कठोरीकरण व तापानुशीलन
भंगुरता कम कर देती हैं।

ताप-प्रतिरोधी ऐलॉयों के उत्पादन मे टैण्टेलम का उपयोग बहुत ही महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो रहा है क्योंकि राकेट तथा अंतरिक्ष तकनीक मे इन ऐलॉयों की बडी सख्त जरूरत है। 90% टैण्टेलम तथा 10% टंग्स्टन के मिश्रण से बने ऐलॉय मे अद्वितीय गुण होने है। इस ऐलॉय के पत्ते 2500°C ताप तक इस्तेमाल किए जा सकते हैं। इस ऐलॉय के भारी पुर्जे 3300°C से भी ज्यादा ताप सह सकते है। कई देशों के विशेषज्ञ अंतरिक्ष यानो के निकास पाइपों, गैस कट्रोल तथा नियत्रण व्यवस्था के पुर्जो, अन्य महत्त्वपूर्ण पुर्जों के निर्माण के लिए इस ऐलॉय को पूर्णतया विश्वसनीय मानते हैं। कई बार जो द्रव धातु (लीथियम या सोडियम) राकेट के तुंडों को ठडा करने मे इस्तेमाल की जाती है, वे राकेट में जग लगने का कारण बन सकती हैं। इस परेशानी से बचने का एकमात्र उपाय यही है कि टैण्टेलम तथा टंग्स्टन के ऐलॉय से बना तुंड फिट किया जाए।

अगर टैण्टेलम-टंग्स्टन के ऐलॉय से बने पुर्जो पर टैण्टेलम कार्बाइड (गलनाक 4000°C) का लेप चढा दिया जाए, तो उनकी ताप-प्रतिरोधता बहुत ही उच्च हो जाती है। परीक्षणों के दौरान जो राकेट अंतरिक्ष मे भेजे गए, उनके तुंड अतिविशाल ताप सह गए। जब इन तुंडो पर टैण्टेलम कार्बाइड नही लगाया गया तब उन्हें शीघ्र ही जग लग गया और वे टूट गए।

टैण्टेलम कार्बाइड म एक और विशेषता यह है कि वह बहुत ज्यादा मजबूत होता है। यह लगभग हीरे की तरह सख्त होता है। इस गुण के कारण सख्त ऐलॉयो के उत्पादन म इसका प्रयोग बहुत विस्तृत है। धातु को काटते समय तीव्र गति के कारण काटने वाला औजार इतना ज्यादा गरम हो जाते हैं कि इसकी धार खुडी हो जाती है तथा मुड़ जाती है। परंतु सख्त ऐलॉय से बने औजार को इस बात का डर नहीं होता। उसकी कार्य-अवधि भी बहुत लबी होती है।

टैण्टेलम की 'सर्विस बुक' में दर्ज बातें यह बताती हैं कि इस धातु की विद्युत के साथ काफी घनिष्ठता रही है। विश्व में इस धातु के कुल उत्पादन का 1/4 भाग विद्युत इंजीनियरी तथा इलेक्ट्रान उद्योग मे काम आ रही है। इस धातु के बने रैक्टीफायर रेलवे सिग्नलों, टेलीफोन कम्प्यूटरों तथा आग की चेतावनी देने वाले अलार्मो में प्रयुक्त किए जाते हैं। टैण्टेलम के बने सूक्ष्म सधारित्र रेडियो ट्रासमीटरो, रडारो तथा अन्य इलेक्ट्रानी प्रारूपों में इस्तेमाल किए जाते है।

इलेक्ट्रान मशीनरी के विभिन्न पुर्जे भी टैण्टेलम से बनाए जाते है। नियोबियम की तरह टैण्टेलम भी अति उत्तम गैस अवशोषक होता है : 800°C ताप पर यह 740 आयतन अवशोषित कर सकता है। इलेक्ट्रानिक ट्यूबों के अंदर जो गैस रह जाती है, उसे अवशोषित करते समय टैण्टेलम विरलता की कोटि उत्तम

कर देता है टैण्टेलम से ट्यूबों के गरम पुर्जे बनाए जाते है ऐनाड जालियां अप्रत्यक्ष रूप से तापित कथोड आदि। उच्च ताप तथा उच्च वोल्टेज पर जिन ट्यूबों की परिशुद्धता लवे अर्से तक कायम रखनी होती है, उनमें टैण्टेलम की वहुत सख्त जरूरत पडती है। कुछ निर्वात ट्यूबों में एक निश्चित स्तर पर गैसों का दाब स्थिर रखने के लिए टैण्टेलम इस्तेमाल किया जाता है। टैण्टेलम के तारों से क्रायाटोन (अतिचालक तत्त्व) बनाए जाते हैं जो कंप्यूटरो में काम आते है।

यहां हम टैण्टेलम के एक और महत्त्वपूर्ण गुण की चर्चा स्पार्क गैसट्यूबो के निर्माण के लिए बहुत उत्तम पदार्थ है। गैस यह धातु अपने हमनामी भाई टैण्टेलस से हमदर्दी जताते हुए चुनौती दे रही है और इसी वजह से उसकी भेजी तड़ित को बेव

कृत्रिम रेशम के उत्पादन में धागे को खींचने वाली डाई सूराख बने होते हैं जिनका व्यास 0.01 मिलीमीटर होता है। बद हो जाते है, अतः हर समय इनकी सफाई की जरूरत ब इनका व्यास एक समान बना रहे। स्वाभाविक है कि इन ड सख्त, मजबूत तथा जंगरोधी पदार्थ चाहिए। टैण्टेलम वह धात् गुण विद्यमान होते हैं। इसी वजह से इस तरह की चीजों के प्रयुक्त किया जाता है।

पिछले कुछ समय से टैण्टेलम आभूषणों में भी प्रयुक्त बार यह प्लेटिनम की जगह इस्तेमाल किया गया है। इस प्रयोग मिली है जिसके परिणामस्वरूप बहुत बचत हो रही है क्योंकि से 15 गुना महंगा है। टैण्टेलम ऑक्साइड का लेप अतिसुदर त के कारण ही यह आभूषणो की सजावट मे इस्तेमाल किया ज से घड़ियां, कगन तथा अन्य गहनें बनाए जा रहे हैं।

फ्रांस में स्थित अंतर्राष्ट्रीय माप व तौल समिति तथा स

की मापदंड समिति के विशेषज्ञ अतिपरिशुद्ध तुलाओं के निर्माण में प्लेटिनम की जगह टण्टेलम प्रयोग कर रहे है। पेनों की निबे इरीडियम की जगह टैण्टेलम से बनाई जा रही हैं क्योंकि इरीडियम बहुत ज्यादा महंगा पड़ता है।

हालांकि टण्टलम प्लेटिनम या इरीडियम जितना महगा नही है, परंतु फिर भी इसकी कीमत काफी ऊंची है। इसका मुख्य कारण यह है कि इस धातु के उत्पादन में जो माल इस्तेमाल होता है, वह बहुत महंगा पडता है। इसके अलावा टैण्टेलम का निष्कर्षण एक बहुत ही जटिल प्रक्रम है। एक टन सांद्रित टैण्टेलम उत्पादन में 3000 टन अयस्क लग जाता है। यह बात जरूर है कि बाद में यह खर्चा ब्याज के साथ वसूल हो जाता है।

वह जमाना गया जब टैण्टेलम एक 'जवान' तत्त्व था। काम की तलाश में दर-दर भटक रहा था। आपने देख ही लिया है कि आज इस धातु के पास हजारों काम है। भविष्य में इसको और भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण, आवश्यक और रोचक काम करने है।

प्रकाश देने वाला

व्याख्या क्या जरूरी है?—भेड़िए का झाग—एक दवा-विक्रेता की खोज—एक अंग्रेज वैज्ञानिक मूशेट का बनाया स्टील—हार मानने को तैयार नहीं है—आडू के रंग का—पुतीलोव प्लांट में परीक्षण किए जाते हैं—जर्मन इंजीनियरों को सफलता मिल जाती है—आवश्यकता आविष्कार की जननी है—स्वादिष्ट निवाला—तोलमाचोव की बातों पर विश्वास नहीं किया जाता—दीर्घकालीन मौन—राजकुमारों व्लादीमीरोविचों की 'जमीन'—पूरा खानदान तबाह हो जाएगा—'बाहर से' सहायता आती है—ठंड तथा गर्मी में—भगोड़ों की वापसी—सूरज की सतह पर—हर साल करोड़ों बल्ब बनाए जाते हैं—मिनट तथा शताब्दियां—'यूरान-1' मांट्रियल की प्रदर्शनी में—जौहरी जैसी बारीकी—'मूछों' का फैशन—टंग्स्टन का बचतखाता।

बहुत सारे तत्त्वों के नाम ही उनकी खूबी बता देते है : हाइड्रोजन—'जल पैदा करने वाला', कार्बन—'कोयला पैदा करने वाला', मैंडेलियम, आइस्टाइनियम, फर्मियम, क्यूरियम, कुरचातोवियम आदि नाम विख्यात वैज्ञानिको के सम्मान मे रखे गए हैं; यूरोपियम, ऐमेरिशियम, फ्रासियम, जर्मेनियम तथा कैलिफोर्नियम—भौगोलिक नामो से लिये गए है। परतु कुछ तत्त्व ऐसे हैं जिन्हे व्याख्या की जरूरत पडती है। इन तत्त्वो मे से एक का नाम टग्स्टन है। इसे 'वुलफ्रैम' भी कहते है, जिसका अर्थ है—'भेड़िया का झाग।' मेडेलीफ की आवर्त सारणी के छठं ग्रुप के इस तत्त्व का एक जंगली जानवर के साथ क्या संबध हो सकता है?

बहुत समय पहले धातुकर्मियों ने इस बात पर ध्यान दिया कि अयस्क से टिन प्रगलित करते समय कई बार टिन की मात्रा बहुत कम हो जाती थी। चूकि हमारे पूर्वजों की भी प्रगलन की तकनीकी व आर्थिक आकड़ो मे पूरी-पूरी रुचि

थी, अतः उन्होंने प्रगलन के लिए रखे अयस्क का ध्यानपूर्वक अध्ययन किर
शीघ्र ही उन्हें यह पता चला कि जिस अयस्क में भूरे या पीले-भूरे रंग के पत
होते थे उनसे टिन की मात्रा बहुत कम मिलती थी। बाकी अयस्कों से टिन
मिलता था। वे समझ गए कि यह सब शरारत इस पत्थर की है। वह टिन
ऐसे सटक जाता था जैसे भेड़िया बकरी को। उन्होंने इस पत्थर का नाम 'वुलफ्रे
रख दिया। कुछ देशों में इसे 'टंग्स्टन' या 'भारी पत्थर' भी कहते हैं।

टंग्स्टन की खोज सुप्रसिद्ध स्वीडिश रसायनज्ञ कार्ल शील ने की जो
से एक दवा-विक्रेता थे। अपनी छोटी-सी प्रयोगशाला में उन्होंने बहुत सारे उपयो
अनुसंधान कार्य किए। ऑक्सीजन, क्लोरीन, बेरियम तथा मैंगनीज की खोज का श्रेय उन्हीं को जाता है। मृत्यु से कुछ पहले 1781 में शील ने, जो उस वक्त तक स्वीडिश विज्ञान अकादमी के सदस्य बन चुके थे, यह कहा कि खनिज टंग्स्टन (बाद में इसका नाम शीलाइट पड़ गया) एक अज्ञात अम्ल का लवण है। इसके दो साल बाद उनके सहायकों स्पेनिश भाइयों देलहुयार को इस खनिज से एक नया तत्त्व अलग करने में सफलता मिल गई। यह तत्त्व वुलफ्रेम था जिसने उद्योग जगत् में एक क्रांति लाई थी। परंतु यह घटना 100 साल बाद घटी।

सन् 1864 में एक अंग्रेज वैज्ञानिक रोबर्ट मूशेट ने पहली बार स्टील
टंग्स्टन मिलाकर देखा (लगभग 5%)। यह स्टील धात्विकी के इतिहास में 'अ
आप' सख्त होने वाला स्टील के नाम से प्रसिद्ध है। मूशेट का यह स्टील
आग सह गया और इसकी सख्ती कम होने की जगह बढ़ती गई अर्थात्
स्टील में खुद-ब-खुद सख्त होने की क्षमता थी। इस स्टील के बने कटरों से क
की गति डेढ़ गुना बढ़ गई (एक मिनट में 5 की जगह 7.5 मीटर हो गई

इस घटना के लगभग 40 वर्ष बाद ऐसे स्टील का निर्माण शुरू हुआ जिस
कर्तन क्षमता उत्तम थी। इसमें टंग्स्टन की मात्रा 8% थी। अब धातु के क
की गति 18 मीटर प्रति मिनट थी। कुछ सालों बाद यह गति बढ़कर 35 मी
प्रति मिनट हो गई। इस प्रकार लगभग 50 साल के अर्से में टंग्स्टन ने क

औजारों की कार्य-क्षमता मान ली गई थी।

क्या यह गति और भी उच्च की जा सकती थी? यह काम स्टील के वश का नहीं था तथा टंग्स्टन भी उसकी कोई मदद नहीं कर सकता था। तो क्या इसका मतलब यह हुआ कि धातुओं के कर्तन की गति की सीमा 35 मीटर प्रति मिनट से ऊपर नहीं जा सकती थी?

इस प्रश्न का उत्तर उसी टंग्स्टन ने दिया। नहीं, उसके पास अभी भी इतनी शक्ति है कि वह और ऊंचे ताप का मुकाबला कर सकता है तथा कर्तन की गति बढ़ा सकता है। 1907 में टंग्स्टन, क्रोमियम तथा कोबाल्ट से एक ऐलॉय स्टेलाइट बनाया गया जो आधुनिक कठोर ऐलॉयों की श्रेणी का प्रथम सदस्य था। इन ऐलॉयों ने कर्तन की गति बहुत उच्च कर दी और आज यह 2000 मीटर प्रति मिनट तक पहुंच गई है।

कहां 5 और कहां 2000! धातु कर्तन की इतनी उच्च गति का श्रेय टंग्स्टन के नए-नए यौगिकों को जाता है।

आधुनिक अतिदृढ़ ऐलॉय टंग्स्टन कार्बाइडों तथा कुछ अन्य तत्त्वों (टाइटेनियम, नियोबियम, टैण्टेलम) के मिश्रण से बने होते हैं। यहां यह बताना जरूरी है कि कार्बाइडों के कण कोबाल्ट द्वारा टंग्स्टन के साथ जोड़े जाते हैं। इस प्रकार के ऐलॉयों को सर्मेट कहते हैं। ये 1000°C ताप पर भी अपनी सख्ती नहीं खोते हैं जिसके कारण धातु के कर्तन की गति अति विशाल रखी जाती है। टंग्स्टन कार्बाइड के आधार पर बने एक ऐलॉय--रेलाइट की दृढ़ता इतनी ज्यादा होती है कि अगर इस ऐलॉय पर एक आरी चलाई जाए तो ऐलॉय की जगह आरी कट जाएगी।

धातु कर्तन टंग्स्टन का मुख्य गुण था जिसके कारण इसे तकनीक की दुनिया में घुसने का मौका मिल गया परंतु यह इसका एकमात्र पेशा नहीं था। पिछले शताब्दी के मध्य मे यह पता चल चुका था कि सोडियम टंग्स्टेट मे भिगोने से कपड़े के तंतुओ में अग्निसह की क्षमता आ जाती है। टंग्स्टनयुक्त रंगों का प्रचलन शुरू हो गया--पीले, नीले, सफेद, जामनी, हरे, आसमानी आदि रंगों का। इनको चित्रकारी मे तथा मृत्तिका व पोर्सिलेन बर्तनो के उत्पादन में प्रयुक्त किया जाने लगा। सतरहवी शताब्दी में चीन में जो पोर्सिलेन के बर्तन बनाए जाते थे वे आज तक सुरक्षित हैं। इन बर्तनों का आडू जैसा रंग अपनी खूबसूरती के कारण सारी दुनिया में प्रसिद्ध था। हमारे दिनों में इन बर्तनों का रासायनिक विश्लेषण करके देखा गया है जिससे पता चला है कि इस खूबसूरत रंग का कारण टंग्स्टन था।

1860 में ढलवां लोहे को टंग्स्टन अम्ल के साथ गरम करके एक

टंग्स्टन प्राप्त किया गया। इस ऐलॉय की मजबूती देखकर कई
था धातुकर्मियों को इसमें बहुत रुचि हो गई। शीघ्र ही फेरोटंग्स्टन
ऽ उत्पादन की विधि ढूंढ ली गई जिसके परिणामस्वरूप धात्विकी में
उपयोग बहुत ज्यादा बढ़ गया।

882 में पहली बार टंग्स्टन तोपों के निर्माण में इस्तेमाल करके देखा
में पीटर्सबर्ग के पुतिलेव प्लांट में प्रोफेसर व. लीपिन ने टंग्स्टन स्टील
लिया। उन दिनों बारूद के धुए से तोपों को बड़ी जल्दी जंग लग
स्टील में थोड़ा-सा टंग्स्टन मिलाने से इन तोपों का संक्षारण-प्रतिरोध
जाता था। सबसे पहले यह बात जर्मन इंजीनियरों के दिमाग में आई।
युद्ध के दौरान हल्की जर्मन तोपें 15,000 बार गोलें फेंक सकती थी
। तथा फ्रेंच तोपें 6000 से 8000 विस्फोटों के बाद बेकार हो जाती

ाविक था कि युद्ध के दिनों टंग्स्टन अयस्कों का उत्पादन बहुत बढ़
ागर पिछली शताब्दी के नौवें दशक में विश्व में प्रतिवर्ष टंग्स्टन अयस्कों
त्पादन 200-300 टन था तो 1910 में यह 8000 टन हो गया था
में 35 हजार टन तक पहुंच गया था।

फिर भी टंग्स्टन की कमी थी। जर्मनी के पास इस धातु का एक
हीं था, अतः उसे और भी ज्यादा परेशानी हो रही थी। हां, युद्ध की
े समय चतुर जर्मन लोगों ने टंग्स्टन अयस्को के काफी भंडार जमा

कर लिये थे परंतु शीघ्र ही वे काम में आ गए और माल बिल्कुल खत्म हो गया।

जर्मन धातुकर्मी इस धातु की खोज में जुट गए। ठीक ही कहते हैं कि 'आवश्यकता आविष्कार की जननी है। शीघ्र ही उन्होंने इस समस्या का हल ढूंढ लिया। उन्हें याद आ गया कि 'भाड़ का आग' टिन खाने के बाद उसे कूड़े में फेंका जाता था और जर्मनी में जिस जगह पर बारहवीं शताब्दी से टिन का उत्पादन हो रहा था ऐसे कूड़ों के ढेर लगे हुए थे। बस फिर क्या था! शीघ्र ही जर्मन धातुकर्मी इन कूड़ों से टंग्स्टन निकालने लगे। यह बात जरूर थी कि उनको इतना टंग्स्टन नहीं मिल रहा था जितने की जरूरत थी। पर फिर भी इससे कुछ तो काम चल ही रहा था।

जिस वक्त सारी दुनिया में इस धातु के उत्पादन में बहुत वृद्धि हो रही थी, जार के रूस में तब भी इस कीमती धातु का उत्पादन न के बराबर हो रहा था। 1915 में ट्रांसबैकाल के निक्षेप से एक स्थानीय कारखाने को केवल 1.4 टन टंग्स्टन अयस्क मिले तथा 1916 में दूसरे कारखाने को केवल 8.7 टन। उन दिनों पीटरग्राद के एक कारखाने से साल-भर में कुल 60 पूड* फेरोटंग्स्टन मिल रहा था।

ट्रांसबैकाल निक्षेप पर विदेशियों की नजर लगी हुई थी, खासतौर पर स्वीडिश तथा जापानी फर्मों की। 1916 की ग्रीष्म में एक जापानी फर्म के भूविज्ञानियों ने इस इलाके के खोज का काम किया। जापानियों के इस अभियान के परिणाम आशाजनक होने चाहिए थे क्योंकि इस फर्म के डायरेक्टरों ने कई बार इस निक्षेप का ठेका मांगा, परंतु रूसी सरकार ने उनका प्रस्ताव ठुकरा दिया।

उन दिनों बूकूकिन तथा ओल्डाण्डू टंग्स्टन निक्षेप काफी प्रसिद्ध थे। इनका ठेका दो लोगों ने मिलकर ले रखा था—उद्योगपति तोल्माचोव तथा खनन इंजीनियर जिक्स ने। एक मौके पर दोनों ने यह फैसला किया कि ये निक्षेप स्वीडिश फर्म 'मोर्टिमर एंड बोगाजू' को ऊंची कीमत पर बेच देंगे क्योंकि इस फर्म के प्रतिनिधियों ने इन निक्षेपों में काफी दिलचस्पी दिखाई थी। तोल्माचोव को इस सौदे से 30,000 रूबल पेशगी के रूप में मिलने थे परंतु उसकी किस्मत खराब निकली। रूसी भूविज्ञानी समिति को यह शक हो गया कि तोल्माचोव ने अपनी खानों में टंग्स्टन की मात्रा जान-बूझकर कम बताई है। समिति ने यह सुझाव दिया कि तोल्माचोव की खानों का भार जार की समिति को सौंप दिया जाए। इस प्रस्ताव को शीघ्र ही जार की सहमति मिल गई।

---

* पूड—16.38 किलोग्राम, जारशाही रूस का एक वजन-मापक।—अनु

था अत इस इलाके मे निक्षपो की खोज का सवाल कतई [illegible] कम से कम नहीं था।

अ. क्रिलोव ने इस लंबी खामोशी को तोड़ा 'जहां तक तुर्किस्तान के निक्षेपो का सवाल है तो 500 रूबल मैं अपनी जेब से देता हूं।' इतना कहकर उन्होंने 500 रूबल का एक नोट सभा के अध्यक्ष अकादमीशियन फर्समान को पकड़ा दिया। 'मेरे से पहले जो सज्जन बोल रहे थे, उन्होंने यह नहीं बताया कि जार के रिश्तेदारो की अल्ताई मे जो जमीन है, वहां भी टंग्स्टन के निक्षेप हैं। टंग्स्टन का मतलब है उत्तम कर्तन-क्षमता वाला स्टील। टंग्स्टन वह चीज है जो शार्पनलो की गति दुगुना तेज कर देती है। देश के हित में अगर सरकारी कब्जे की जरूरत है तो वह अल्ताई मे है। शार्पनलो के बिना रूस हार जाएगा जिसके फलस्वरूप जार के रिश्तेदारों का तो क्या, जार का भी सत्यानाश हो जाएगा।'

इस निडर वैज्ञानिक की भविष्यवाणी सच निकली। एक महीने बाद जार रोमानोव के खानदान का नामोनिशान भी न रहा।

विदेशी विशेषज्ञो की 'सहायता' भी रूस के टंग्स्टन उद्योग के विकास मे बाधा का कारण बनी हुई थी। 1931 में मास्को विश्वविद्यालय के खनिज संग्रहालय मे प्राचीन खनिजो की छटाई करते समय वैज्ञानिकों को शेलाइट के कुछ नमूने दिखाई दिए जो ताजिकिस्तान मे मोगोल-टाऊ पहाड़ों में मिले थे। छानबीन करने पर यह पता चला कि ये नमूने 1912 मे मिले थे और परीक्षण के लिए मास्को लाए गए थे। परंतु जब ये पत्थर विख्यात जर्मन भूविज्ञानियों को दिखाए गए तो उन्होंने इन्हे बेकार बताया जिसका फल यह हुआ कि जार की सरकार ने इन निक्षेपों को हमेशा के लिए भुला दिया। मास्को विश्वविद्यालय में इन नमूनो के मिलने के कुछ महीने बाद एक कमिटी ताजिकिस्तान भेजी गई जिसने इन निक्षेपों का अध्ययन करके यह रिपोर्ट भेजी कि मोगोल-टाऊ में टंग्स्टन के विशाल निक्षेप है तथा इनकी गिनती देश के मुख्य टंग्स्टन निक्षेपों में की जानी चाहिए।

लगभग इन्हीं दिनों विख्यात रूसी भूविज्ञानी अकादमीशियन स्मीरनोव ने अपने विद्यार्थियों के साथ सारे देश के टंग्स्टन निक्षेपो की खोज शुरू कर दी। इन लोगों ने भयंकर ठंड तथा गर्मी मे हजारों किलोमीटर सफर तय किया—कभी पैदल तो कभी स्लेज पर। जहां-जहां ये साहसी भूविज्ञानी पहुंचे, वहां नए-नए टंग्स्टन प्लांट लगाए गए। यह सोवियत संघ के टंग्स्टन उद्योग की शुरूआत थी।

आज विश्व मे टंग्स्टन के कुल उत्पादन का 80% भाग उच्च-कोटि के स्टीलों की धात्विकी मे तथा 15% के लगभग दृढ़ ऐलॉयों के निर्माण में व्यय हो जाता है। बाकी 5% का इस्तेमाल उद्योग-जगत् अद्वितीय गुणों वाली शुद्ध धातु के रूप

म करता है

टग्स्टन को पिघलाने के लिए इतने ताप की जरूरत पडती है जिस पर अधिकाश धातुए वाष्पित हो जाती है—3410°C के लगभग यह धातु सूरज की सतह पर भी द्रव अवस्था मे रह सकती है : इसका गलनाक 6000°C से ऊपर है। इस महत्त्वपूर्ण और अद्वितीय गुण के कारण उद्योग के एक अतिमहत्त्वपूर्ण क्षेत्र—विद्युत इजीनियरी मे इसका प्रयोग अति विस्तृत है।
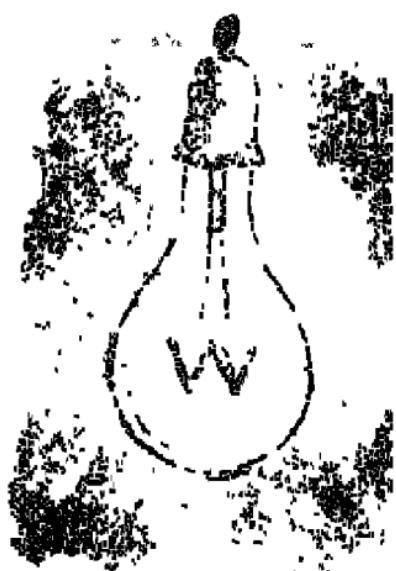
जब से 1906 मे बिजली के बल्बों मे कार्बन, आस्मियम तथा टैटेलम के ततुओ की जगह टंग्स्टन ततु का इस्तेमाल शुरू हुआ तब से हर रोज शाम को नन्ही-नन्ही टंग्स्टन बिजलिया हमारे घरों को उजाला देती चली आ रही है। प्रतिवर्ष विश्व में अरबों बिजली बल्बो का उत्पादन होता है। कई अरब बल्ब. .इनकी सख्या क्या बहुत ज्यादा है? आप खुद ही फैसला कीजिए : कालानुक्रम के आरभ से मानवजाति अरब मिनट से थोड़ा ज्यादा जी चुकी है (29 अप्रैल 1902 को 10 बजकर 40 मिनट पर नए कालानुक्रम का दूसरा अरबवां मिनट शुरू हो गया था)।

वैज्ञानिक तथा इजीनियर दिन-रात बल्बों की कोटि उच्च करने के प्रयास मे जुटे हुए हैं। वे उनकी कार्य-अवधि ज्यादा-से-ज्यादा करना चाहते हैं। जैसे एक मोमबत्ती के जलते ही उसका मोम पिघलना शुरू हो जाता है, उसी तरह एक बल्ब के जलते ही ततुओं की सतह से टग्स्टन वाष्पित होने लगता है। इस वाष्पीकरण को कम करने के लिए उसके अदर दाब पर विभिन्न निष्क्रिय गैसें भर दी जाती हैं। हाल ही मे कुछ वैज्ञानिकों ने इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए बल्ब में आयोडीन वाष्प भरने का प्रस्ताव पेश किया है। पता चला है कि आयोडीन यहा एक विशिष्ट भूमिका निभाता है। वह टंग्स्टन के वाष्पित अणुओं को पकड कर उनके साथ रासायनिक प्रतिक्रिया करके ततु पर बैठ जाता है। इस प्रकार आयोडीन 'भगोड़ों' को वापस लौटा लाता है जिसके परिणामस्वरूप बल्ब की उम्र काफी बढ़ जाती है।

विद्युत बल्बों की किस्में बहुत विविध होती है—चिकित्सा में काम आने वाले

नन्हे-नन्हे मनको स लेकर शक्तिशाली सर्चलाइटों तक।

माट्रियल में आयोजित अतर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी मे सोवियत मडप मे एक विकिरण-हीटर 'यूरान-1' दिखाया गया। इस हीटर का एक मुख्य अंग एक विशेष बल्व था जो जल तथा वायु द्वारा शीतित किया जा रहा था। दुर्गलनीय क्वार्ट्ज के बने इस छोटे से बल्ब मे टंग्स्टन के दो इलेक्ट्रोड लगे हुए थे तथा इसके अदर निष्क्रिय गैस जीनान भरी हुई थी। बल्व के जलते ही इलेक्ट्रोडो के बीच गैस प्लैज्मा ज्वलित होने लगता था जिसका तापमान 8000°C तक पहुंच जाता था। विशेष दर्पण, जिसके सामने साधारण दर्पण एक धुधली टिनप्लेट लगते थे, कृत्रिम सूरज की (यह बल्ब सौर स्पेक्ट्रम उत्पन्न करता था) इंफ्रारेड किरणों को एक प्रकाशिकीय उपकरण की ओर सकेंद्रित कर देता था जो इन किरणों को एक पुज मे परिवर्तित कर देता था। इस पुंज का व्यास 1 सेंटीमीटर से कुछ ज्यादा था तथा इन किरणों के फोकस का ताप 3000°C तक पहुच जाता था। इतनी 'अधिक गरम परिस्थितियों' मे 'यूरान-1' सैकडों घटो तक बिना रुके काम कर सकता था। निर्वात मे धात्विक कैथोड की सतह से निकल रहे इलेक्ट्रान पुज (इलेक्ट्रान उत्सर्जन) की किरणों को कैथोड किरणे कहते हैं। तकनीक में इन किरणों का उपयोग विस्तृत है। प्रयोगों ने यह बताया है कि इन कथोडों क निर्माण के लिए टग्स्टन एक अति उत्तम पदार्थ है।

टग्स्टन केवल सर्वाधिक उत्तम दुर्गलनीय धातु ही नहीं है। शुद्ध टंग्स्टन की मजबूती अतिविशाल होती है। इसकी भग प्रतिरोध की क्षमता 40 टन प्रति वर्ग सेटीमीटर होती है अर्थात् सबसे बढिया किस्म के स्टील से भी श्रेष्ठ है। 800°C ताप पर भी इस धातु की ये खूबिया सही-सलामत रहती है।

विशाल मजबूती तथा उच्च्य तन्यता मिलकर टंग्स्टन को बहुत काम का बना देती हैं : इससे बहुत ही महीन तार ताने जा सकते हैं। 100 किलोमीटर लबे इस किस्म के तारो का वजन केवल 250 ग्राम होता है।

बिजली के बल्बों मे विस्तृत उपयोग के अलावा टग्स्टन को कुछ दिनो पहले एक नया प्रस्ताव मिला है। वैज्ञानिकों ने पदार्थो के कर्तन औजारो के निर्माण मे टंग्स्टन इस्तेमाल करने का निश्चय किया है। पराश्रव्य ध्वनि जनित्र निर्मित किया जो परिवर्तक की सहायता से टग्स्टन ततु में तरंगो का दोलन उत्पन्न करता है। परिणाम यह हुआ कि तंतु धातु में घुसते-घुसते उसे धीरे-धीरे काटता रहा। इस नए औजार से क्वार्ट्ज, मणि, सिटाल, कांच तथा मृत्तिका जैसे कठोर पदार्थ को बड़ी सफाई से काटा जा सकता है या इन पदार्थो के अंदर हर आकार तथा हर किस्म के सूराख और खाचे बनाए जा सकते है।

टंग्स्टन तंतु कितना भी मजबूत क्यो न होता हो, इस धातु की 'मूछों' का यह फिर भी मुकाबला नहीं कर सकता, जो अतिसूक्ष्म क्रिस्टलो से बनी होती है। ये मनुष्य के बाल से भी कई सौ गुना बारीक होती है। इनकी दृढ़ता 230 टन प्रति वर्ग सेंटीमीटर होती है जो दृढता की लगभग उच्चतम सीमा है अर्थात् विज्ञान द्वारा पार्थिव पदार्थो के लिए निश्चित सैद्धातिक सीमा के बराबर है। परतु फिलहाल इस करामाती धातु का कार्यक्षेत्र प्रयोगशाला तक सीमित है।

तकनीकी कार्यो मे जो शुद्ध टग्स्टन इस्तेमाल किया जाता है उसे प्राप्त करने के लिए टग्स्टन ट्राइऑक्साइड का हाइड्रोजन द्वारा अपचयन किया जाता है। इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप प्राप्त बारीक टग्स्टन पाउडर को संपीडित करके विद्युत-धारा से 3000°C तक तापते है। अब जो टग्स्टन मिलता है उसके ततु बिजली के बल्बो, रेडियो-वाल्वो तथा एक्स-रे ट्यूबों और अन्य उपकरणो में लगाए जाते हैं।

वैज्ञानिको ने एक योजना बनाई है जिसके अनुसार आर्क-प्लाज्मा विधि द्वारा टंग्स्टन, मालिब्डेनम तथा अन्य उच्चतापसह धातुओ के विशाल मोनोक्रिस्टल विकसित किए जा सकते है। सोवियत विज्ञान अकादमी के धात्विकी संस्थान मे इस विधि द्वारा टग्स्टन का एक मोनोक्रिस्टल प्राप्त किया गया है जिसका वजन 10 किलोग्राम है। अतिशुद्ध होने के कारण इस धातु मे अद्वितीय यात्रिक गुणधर्म विद्यमान होते हैं--अति निम्न तापमानों पर भी इसकी तन्यता कायम रहती है तथा काफी ज्यादा गरम होने पर भी इसकी मजबूती में कोई खास फर्क नही आता। ये मोनोक्रिस्टल बहुत सारे विद्युत-निर्वात उपकरणो में काम के सिद्ध हो रहे है।

'सोयुज-अपोलो' प्रोग्राम के अतर्गत सोवियत तथा अमरीकी अतरिक्ष यात्रियों ने संयुक्त अतरिक्ष उडान के दौरान एक रोचक प्रयोग किया जिसमे टग्स्टन ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। सर्वविदित है कि पार्थिव परिस्थितियो में अलग-अलग घनत्व वाली धातुओं से ऐलॉय प्राप्त करना कठिन तथा अक्सर असभव कार्य होता है . इसका कारण यह है कि प्रगलन तथा क्रिस्टलीकरण के दौरान भारी धातु के कण ढाले हुए पिड की निचली सतह पर जम जाते हैं जबकि हल्की धातु के कण ऊपरी सतह पर। यह स्वाभाविक है कि ऐसा विषमस्तरीय ऐलॉय किसी भी काम का नहीं होगा।

अंतरिक्ष प्रगलन की बात दूसरी है। अतरिक्ष में भारहीनता की परिस्थितियो मे सब धातु एक समान होती है--चाहे वे हल्की हों या भारी, जिसकी वजह से अंतरिक्ष में प्रगलित ऐलॉय संघटन तथा संरचना मे एकरूपी होते हैं। उक्त अतरिक्ष

उडान के दौरान इस 'सार्विक भट्ठी' मे एक हल्की व निम्न गलनांक वाली धातु ऐलुमिनियम तथा एक भारी व परम दुर्गलनीय धातु टंगस्टन के प्रगलन से एक ऐलॉय बनाकर देखा गया।

यह प्रयोग अंतरिक्ष तकनीक के क्षेत्र में पहला कदम है। इस ऐतिहासिक उड़ान के एक भागी सोवियत अंतरिक्षयात्री वालेरी कुबासोव ने इस उपलब्धि पर निम्न टिप्पणी की : 'कुछ अर्से बाद हम लोग मिलकर अंतरिक्ष में ऐसे प्लांट चालू कर सकते है जहां एक नई धात्विकी पर काम शुरू होगा--ये प्लांट ऐसे ऐलॉय तथा पदार्थ बनाएंगे जिनका पृथ्वी पर उत्पादन असंभव होता है।'

1929 मे अमरीकी इंजीनियरों ने टंगस्टन के प्रयोग से हो रही बचत की गणना की। परिणाम बड़े रोचक तथा आशाजनक निकले। पता चला कि बिजली के बल्बों में टंगस्टन के इस्तेमाल से 40 करोड रूबल की बचत हुई। टंगस्टन स्टील के औजारो से जो कार बनाई जा रही थी, उसकी लागत कार्बन स्टील के औजारों की मदद से बनाई जा रही कार की लागत से 10 रूबल कम पड़ रही थी। मशीनरी में टंगस्टन के प्रयोग से साल-भर में 50-60 करोड़ रूबल की बचत हो रही थी।

सदियो से धातुएं मनुष्य की बडी वफादारी के साथ सेवा करती आ रही हैं। इनकी मदद से मनुष्य तकनीक की अद्वितीय दुनिया की रचना कर रहा है। इन धातुओ में टंगस्टन का विशेष महत्त्व है क्योंकि इसने अन्य धातुओं को काफी पीछे छोड़ दिया है।

तीन तालों के अंदर बंद

स्पेनिश हमलावरों की खोज–स्पेन के बादशाह का आदेश–प्लेटिनम एक बार फिर यूरोप में–नजदीकी रिश्तेदार–रूस का पहला प्लेटिनम–हीरक स्टील–किले पर धावा–वित्तमंत्री की गलती–याद के तौर पर–कूड़े में खजाना–देमीदोव पुरस्कार विजेता–एक ग्राम प्लेटिनम के लिए कितने बखेड़े?–हार्दिक अभिनंदन–क्या चिंगारियां हवा से बुझ जाती हैं?–तीव्र गति से–यह दोनवास की बात है–मनहूस साल–पारदर्शी दर्पण–मोंटेजूमा का उपहार–प्लेटिनम का थर्मामीटर–तीन चाबियां–हर युग के लिए, हर राष्ट्र के लिए–नारंगी किरणें–प्लेटिनम रोगनिदान करता है–दर्द महसूस नहीं होता–बड़े आदर की बात है।

सोलहवी तथा सत्रहवीं शताब्दी में स्पेनिश हमलावरों (कोनकिस्टेडोरों) ने अजटेको तथा इकाओं के देश को जी-भर कर लूटा। अमरीका से स्पेन लौट रहे जहाजो पर टनों स्वर्ण, रजत तथा पन्ने लदे होते थे। एक बार स्पेनिश विजेताओं को प्लाटीना डेल पिटो (कोलंबिया) नदी के तट पर स्वर्ण तथा रजत जैसी एक अज्ञात धातु के कण मिले। इस नई धातु का गलनाक अति उच्च होने के कारण यह किसी काम की नहीं सिद्ध हुई। इसकी उपस्थिति से स्वर्ण के परिष्करण में परेशानी हुई। स्पेनिश लोगों को इस धातु से चिढ हो गई जिसकी वजह से उन्होंने इसका नाम 'प्लेटिनो' रख दिया जिसका अर्थ है–'घटिया किस्म का रजत।'

इतना सब कुछ होते हुए भी प्लेटिनम की बहुत बड़ी मात्रा यूरोप पहुच गई जहा इसे रजत से भी सस्ते भावो पर बेचा गया। शीघ्र ही स्पेनिश जौहरियो को यह पता चल गया कि प्लेटिनम को स्वर्ण के साथ बडी आसानी से प्रगलित किया जा सकता है। फिर क्या हुआ! बेईमान जौहरियो ने सोने में इसकी मिलावट शुरू कर दी। और तो और, सिक्कों के निर्माण मे भी यह जालसाजी शुरू हे

गई। बादशाह को जैसे ही इस मिलावट की सूचना मिली उस
के आघात पर पाबंदी लगा दी और इसके सारे भंडार नष्ट क
दिया।

स्पेन तथा इसके उपनिवेशों में जितना भी प्लेटिनम था वह सारा इकट्ठा कर लिया गया। अब इस धातु को बड़े गंदे नामों से पुकारा जाता था—'सड़ा स्वर्ण', 'मेढक स्वर्ण' आदि। बादशाह की टकसाल के कर्मचारियों ने सारा प्लेटिनम नदियों तथा समुद्रों मे गहरी जगहों पर डुबो दिया। आगे भी प्लेटिनम के साथ ऐसा सलूक कई बार किया गया। इस बेचारी के जीवन के प्रथम चरण का अंत बहुत ही दुखदाई था।

सतरहवी शताब्दी के मध्य में स्पेन में दो खंडो वाली एक पुस्तक प्रकाशित हुई जिसका शीर्षक था 'मेरी दक्षिणी अमरीका यात्रा।' इस पुस्तक के लेखक प्रसिद्ध समुद्री-यात्री, खगोलज्ञ तथा गणितज्ञ आतोंनीयो डि युल्ओआ थे। वे अभिय
दक्षिणी अमरीका गए थे जहां उन्हे प्राकृतिक प्लेटिनम में रुचि
यूरोप ले आए और अपनी पुस्तक मे उन्होंने इस धातु का सविस्त
परिणाम यह हुआ कि यूरोप के बहुत सारे वैज्ञानिक प्लेटिनम मे
लगे।

कुछ वैज्ञानिक प्लेटिनम को ज्ञात धातुओ (उदाहरणतया
का मिश्रण बता रहे थे परंतु स्वीडिश रसायनज्ञ हेनरी शेफर ने अ
उनकी धारणा को गलत सिद्ध कर दिया। उन्होंने प्लेटिनम को एक
तत्त्व बताया।

प्लेटिनम के अध्ययन से दूसरी कई धातुओं की खोज हो
प्रकृति में प्लेटिनम के साथ मिलती हैं और इन सबको एक ही

जाता है—प्लेटिनम ग्रुप। 1803 में पैलेडियम तथा रोडियम की खोज हुई और 1804 मे ऑस्मियम व इरीडियम की। 40 साल बाद रसायनज्ञो को इस ग्रुप के अंतिम तत्त्व-रूथीनियम का भी पता चल गया।

इस क्षेत्र में इतनी उन्नति का एक मुख्य कारण और भी था—1819 मे यूराल मे कैथरीनबर्ग (आज इस शहर का नाम स्वेर्दलोव्स्क है) के पास भूविज्ञानियो को प्लेटिनम के [illegible] निक्षेप मिले। 5 साल बाद इन इलाको मे रूस की प्रथम प्लेटिनम खान चालू हो गई। यूराल के निक्षेपों की विपुलता की पुष्टि इस बात से हो जाती है कि उन दिनों वहा के शिकारी प्लेटिनम के छर्रों से चिडिया मारा करते थे।

लगभग इन्हीं दिनों स्टील में प्लेटिनम मिलाया जाने लगा। 1825 में 'खनन पत्रिका' मे निम्न खबर छपी : उच्चतापसह मिट्टी के बरतन मे 6 पाउंड स्टील के साथ 8 जोलोत्नीक* प्रगलित किए गए। इस बात का ख्याल रखा गया कि बर्तन के अंदर हवा न घुस पाए। प्राप्त पदार्थ को ढलवे लोहे के बने एक साचे मे डालकर ठंडे पानी द्वारा तेजी से शीतित किया गया। जब इस स्टील की शलाको को तोड़कर देखा गया तो इसे समजातीय पाया गया। यह स्टील इतना सूक्ष्मकणीय था कि नंगी आंखों से इसके कण देखना असंभव था। तेज तथा मजबूत होकर यह स्टील कागज को एक छुरे की तरह काटने लगा। यह कुंठित हुए बिना लोहे को भी काटने लगा। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि प्लेटिनम स्टील अन्य सभी स्टीलों से ज्यादा मजबूत होता है। यह भारी-से-भारी आघात सह सकता है। अद्वितीय मजबूती के कारण इसे 'हीरक स्टील' कहा जाने लगा। बहुत लबे अर्से तक प्लेटिनम स्टील सबसे ज्यादा मजबूत माना जाता था। बाद में स्टील मे प्लेटिनम की जगह टंग्स्टन मिलाया जाने लगा, क्योंकि वह सस्ता पड़ता था तथा प्लेटिनम से भी ज्यादा मजबूत था।

प्रसिद्ध रूसी वैज्ञानिक तथा इंजीनियर सोबोलेवस्की ने प्लेटिनम के इतिहास मे एक महत्त्वपूर्ण पृष्ठ जोड़ दिया। वे पीटर्सबर्ग मे खनन तथा लवण प्रयोगशाला, खनन कैडेट कोर तथा मुख्य खनन फार्मेसी के अध्यक्ष थे। उन्होंने अपने एक सहायक धातु-विज्ञानी के सहयोग से कच्चे प्लेटिनम का अध्ययन तथा इसे तन्य धातु में परिवर्तित करने की विधि ढूंढ़नी शुरू कर दी। मुश्किल यह थी कि उन दिनों जितनी भी भट्ठियां उपलब्ध थीं, उनमे से एक भी प्लेटिनम को इसके गलनांक

* जोलोत्नीक—जारशाही रूस का एक वजन मापक जो 4.25 ग्राम के बराबर था—अनु

(1769°C) तक या इसके लगभग तापमान तक नर्म नही कर पा रही थी जबकि यह तन्यता की आवश्यक शर्त थी। इसके बिना प्लेटिनम किसी भी दूसरे रूप मे परिवर्तित होने को तैयार नहीं था। वैज्ञानिक इस समस्या का हल ढूढ़ने मे व्यस्त थे।

जब किले पर छापे से कब्जा नही हो पाता तब दूसरे रास्ते ढूढने पड़ते है। रूसी वैज्ञानिको ने भी ऐसा ही किया। उन्होने लोहे के बने विशेष सांचो मे स्पज प्लेटिनम (ऐसी धातु अयस्को की रासायनिक प्रोसेसिंग से प्राप्त होनी थी) भरकर पेंचदार प्रेस में संपीडित किया ओर फिर इस धातु को श्वेत ताप तक गरम किया। इसके बाद उन्होने एक बार फिर इस प्लेटिनम को उच्च दाब पर सपीडित किया। अब धातु अपनी हार मान गई। स्पज प्लेटिनम प्रगलित हुए बिना ही ऐसे पदार्थ मे परिवर्तित हो गया जिसमे और ढलवे पदार्थ मे कोई फर्क नजर नही आ रहा था। इस प्रकार 1826 मे तकनीक के इतिहास में पहली बार एक नवीन तकनीकी विधि खोजी और अपनायी गई जिसका महत्व आज तक कायम है। आधुनिक चूर्ण धात्विकी इसी के आधार पर विकसित हुई है।

रूस के वित्तमंत्री यू. कान्क्रीन ने सोबोलेवस्की की इस महत्वपूर्ण खोज पर ध्यान दिया। उसने जार से सिफारिश की कि सेवानिवृत्त होने तक सोबोलेवस्की को तनख्वाह के अलावा हर साल 2500 रूबल अलग से दिए जाए। जार ने अपने मंत्री की सलाह मानकर आवश्यक आदेश जारी कर दिए।

तभी सोबोलेवस्की को 3.6 और 12 रूबल कीमत के प्लेटिनम सिक्के ढालने का काम सौपा गया। शीघ्र ही पीटर्सबर्ग की टकसाल में बडे जोर-शोर से इन सिक्कों की ढलाई शुरू हो गई। थोड़े-से अर्से में ही करीब लाख से भी ज्यादा सिक्के ढाल दिए गए जिनके निर्माण में 15 टन प्लेटिनम लग गया। परंतु इस धातु की कीमत बड़ी तेजी से बढ़ रही थी। सरकार समझ गई कि प्लेटिनम के सिक्के बनवाना एक गलत कदम था। प्लेटिनम सिक्कों की कीमत लगातार बढ़ती जा रही थी जिसका परिणाम यह हुआ कि उनकी असली कीमत उन पर अंकित कीमत से बहुत ज्यादा हो गई थी। शीघ्र ही इन सिक्को का प्रचलन बंद हो गया क्योंकि वित्तमंत्री ने सरकारी खजाने में प्लेटिनम लौटाने के लिए उचित कदम उठाए। इसके अलावा कई लोग प्लेटिनम की जगह अन्य सिक्कों से अदायगी करना बेहतर समझ रहे थे; उन्होंने प्लेटिनम सिक्कों को याद के तौर पर संभाल कर रख दिया। आज ये सिक्के बहुत दुष्प्राप्य हैं। इन्हें केवल कुछ गिने-चुने मुद्रातत्त्व सग्रहणों में देखा जा सकता है।

प्लेटिनम सिक्कों की ढलाई से विज्ञान को अप्रत्याशित लाभ हो गया।

टकसाल की प्रयोगशाला में काफी प्लेटिनम अयस्क इकट्ठे हो गए थे—ये सिक्कों के उत्पादन के अपशेष थे। 1841 में कजान विश्वविद्यालय में रसायन शास्त्र के प्रोफेसर कार्ल क्लाउस ने पीटर्सबर्ग की टकसाल से कुछ पाउंड अपशेष मांगे। वैज्ञानिक का अनुरोध स्वीकार कर लिया गया। माल मिलते ही क्लाउस ने उसका विश्लेषण शुरू कर दिया। उन्हें यह देखकर बहुत आश्चर्य हुआ कि उस कूड़े में 10% तक प्लेटिनम उपस्थित था तथा आस्मियम, इरीडियम, पैलेडियम व रेडियम भी थोड़ी-थोड़ी मात्रा में थे।

जिस कूड़े की कभी किसी ने कोई परवाह न की थी, वह तुरंत एक खजाना बन गया।

क्लाउस ने इस बात की सूचना खनन-मंत्रालय को दी। कुछ समय बाद वे पीटर्सबर्ग आए और वित्तमंत्री काउंट कान्क्रीन से मिले। काउंट ने वैज्ञानिक की खोज की बहुत सराहना की और अनुसंधान कार्य जारी रखने के लिए उन्हें और प्लेटिनम अपशेष दिला दिए।

क्लाउस की इतनी मेहनत बेकार नहीं गई। उन्होंने यह सिद्ध कर दिखाया कि प्लेटिनम अपशेषों में ज्ञात तत्वों के अलावा एक नई धातु उपस्थित है जिसका नाम वैज्ञानिक ने 'रुथेनियम' रखा (लातीनी भाषा में रूस को 'रुथ' कहते हैं)। इस खोज के उपलक्ष्य में रूसी विज्ञान अकादमी ने क्लाउस को देमीदोव पुरस्कार प्रदान किया।

यूराल में प्लेटिनम का उत्पादन बड़ी तेजी से बढ़ने लगा। यह बात ध्यान देने योग्य है कि बीसवीं शताब्दी के आरंभ में विश्व में प्लेटिनम के कुल उत्पादन का 95% भाग रूस के हिस्से में आता था (शेष 5% कोलंबिया में)। बाद में दक्षिणी अफ्रीका, कनाडा आदि देश भी विश्व मार्केट में प्लेटिनम भेजने लगे।

विशेष बात यह है कि अगर विश्व में स्वर्ण का वार्षिक उत्पादन 1000 टन से बढ़ चुका है, तो प्लेटिनम का वार्षिक उत्पादन अभी भी कुछ दर्जन टनों तक सीमित है। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

सोवियत कवि मायाकोव्स्की के निम्न शब्द प्लेटिनम पर सही निकलते हैं : 'एक ग्राम माल निकालने के लिए कई साल मेहनत करनी पड़ती है।' और यह बात ठीक भी तो है—एक ग्राम प्लेटिनम प्राप्त करने के लिए सैकड़ों घनमीटर अयस्क की जरूरत पड़ती है—मालगाड़ी के एक डिब्बे अयस्क की। इसका कारण यह है कि अयस्कों में प्लेटिनम की मात्रा बहुत ही कम आती है। इसके अलावा एक वजह यह भी है कि अभी तक प्लेटिनम के विशाल निक्षेप कहीं नहीं मिले हैं। प्राकृतिक रूप मे यह धातु बहुत कम मिलती है। आजतक जितने भी प्राकृतिक प्लेटिनम के डले मिले है उनमे से सबसे बड़े का वजन 10 किलोग्राम से कम है।

इस धातु का व्यावहारिक उपयोग पिछली शताब्दी के आरंभ मे शुरू हो गया जब किसी ने सांद्रित सल्फ्यूरिक अम्ल के संचयन के लिए प्लेटिनम के रिटार्ट बनाने की बात सोची। तब से अम्लों के प्रति उच्च प्रतिरोधक्षमता के गुण के कारण रासायनिक प्रयोगशालाओ मे प्लेटिनम बड़े शौक से इस्तेमाल होता आ रहा है। इस धातु से क्रूसिबल, नाउल, छन्नी तथा पात्र जैसी काम की चीजें बनाई जाती हैं। रासायनिक प्लांटों में अम्लरोधी तथा उच्चतापसह उपकरणों के निर्माण मे भी प्लेटिनम की बहुत बड़ी मात्रा व्यय हो जाती है।

चेकोस्लोवाकिया की प्रसिद्ध ग्लास फैक्टरियों में प्रगलित काच को हिलाने के लिए जिस प्लेटिनम विलोडक का इस्तेमाल हो रहा है उसकी कीमत 7,50,000 क्राउन है तथा जिस प्लेटिनम क्रूसिबल में यह कार्य हो रहा है उसकी कीमत इससे भी दुगुनी है, परतु इतना धन बेकार ही व्यय नहीं किया गया है। यह कारखाना सबसे आधुनिक माना जाता है तथा इसमें सूक्ष्मदर्शियो, टेलीस्कोपो तथा अन्य प्रकाशिकीय उपकरणों के लिए उच्चकोटि के शीशों का उत्पादन होता है।

रसायनज्ञों ने प्लेटिनम का एक और महत्त्वपूर्ण उपयोग ढूंढ लिया है। यह धातु बहुत सारी रासायनिक प्रतिक्रियाओ मे सक्रिय उत्प्रेरक का कार्य करती है। इस गुण के आधार पर हंगरी के वैज्ञानिको ने हाल में एक नए किस्म का लाइटर बनाया है : इसमें न तो दातेदार चकरी है और न ही चकमक पत्थर। ढक्कन खोलते ही ज्वाला निकलने लगती है। इसका कारण यह है कि लाइटर मे निकल रही गैस वायु के संपर्क में आते ही भभकने लगती है। परतु यह प्रतिक्रिया केवल उत्प्रेरक की उपस्थिति में घटती है। इस लाइटर मे प्लेटिनम का एक छल्ला उत्प्रेरक का काम करता है जिसमे से गैस बाहर निकलती है। इस लाइटर पर हवा का कोई असर नही पड़ता। उल्टे, हवा जितनी तेज होती है, प्रतिक्रिया की गति उतनी ही तेज होती है तथा उसी हिसाब से लपटें बढती जाती हैं। जैसे ही छल्ले को

ढक्कन में ठूंस देते हैं, लपटें निकलना बंद हो जाती हैं।

नाइट्रिक अम्ल के उत्पादन में अमोनिया के ऑक्सीकरण के लिए प्लेटिनम तथा वायु के मिश्रण को तीव्र गति के साथ प्लेटिनम की एक बहुत पतली जाली (इसके एक वर्ग सेंटीमीटर में छेदों की संख्या 5,000 तक होती है) में से गुजारा जाता है। इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप जलवाष्प तथा नाइट्रोजन के ऑक्साइड प्राप्त होते हैं। इन ऑक्साइडों को जल में घोलने से नाइट्रिक अम्ल प्राप्त हो जाता है।

नाइट्रिक अम्ल के औद्योगिक उत्पादन में प्लेटिनम के प्रयोग का श्रेय रूसी रसायनज्ञ इ. आन्द्रेयेव को जाता है जो रूस में नाइट्रिक अम्ल उद्योग के पायोनियर थे। उन्होंने अमोनिया के ऑक्सीकरण पर विभिन्न उत्प्रेरकों की प्रक्रिया का गहन [illegible] तक अध्ययन किया। यह प्रथम विश्वयुद्ध के दिनों की बात है जब बारूद बनाने के लिए नाइट्रिक अम्ल की जरूरत बढ़ती जा रही थी। यह बात स्वाभाविक थी क्योंकि एक किलोग्राम बारूद के निर्माण में 2 किलोग्राम से भी ज्यादा नाइट्रिक अम्ल लग रहा था। 1916 के अंत में रूसी सेना को हर माह 6,100 टन बारूद की जरूरत पड़ रही थी। नाइट्रिक अम्ल प्राप्त करने का प्राकृतिक माल केवल चिली में उपलब्ध था, अतः युद्ध में भाग ले रहे सभी देशों को इस अम्ल की बहुत कमी महसूस हो रही थी। वे सब बड़ी विकलता से इस समस्या का हल ढूंढ रहे थे।

उन्हीं दिनों आंद्रेयेव ने कच्चे माल के रूप में अमोनिया इस्तेमाल करने का सुझाव दिया जो कोक के

उत्पादन मे अपशेष के रूप में मिलती थी। अपने अनुसंधान कार्यों मे उन्हें प्लेटिनम की उत्प्रेरक क्षमता मे जरा भी शक नहीं रह गया इस बात मे भी विश्वास हो गया कि प्लेटिनम की उपस्थिति में अमोनिया के आक्सीकरण की गति तीव्र हो जाती है। आंद्रेयेव के प्रस्ताव पर दोनबास मे, जहां बहुत सारे कोक रसायनिक कारखाने थे (अर्थात् अमोनिया की पर्याप्त मात्रा उपलब्ध थी), रूस मे नाइट्रिक अम्ल का पहला प्लांट लगाया गया। 1917 में इस प्लांट से पहला माल भी प्राप्त हो गया। इस प्रकार आंद्रेयेव ने नाइट्रिक अम्ल की समस्या हल कर दी।

इस वक्त तक प्लेटिनम को कितना ज्यादा महत्त्वपूर्ण समझा जाने लगा था इस बात का अनुमान आप इस तथ्य से लगा सकते हैं : 1918 में रूस मे इस धातु के अध्ययन के उद्देश्य से एक विशेष संस्थान खोला गया जो बाद मे सोवियत विज्ञान अकादमी के सामान्य तथा अकार्बनिक रसायन संस्थान का एक अंग बन गया। आज भी इस संस्थान मे प्लेटिनम ग्रुप के तत्त्वों के रसायनिक तथा तकनीकी गुणो पर लंबा-चौडा अनुसंधान कार्य हो रहा है।

आज प्लेटिनम की जरूरत केवल रसायनज्ञों को ही नहीं है। कांच के साथ अच्छी तरह मुद्रित होने की क्षमता के कारण यह धातु बहुत सारे कांच उपकरणो के निर्माण में भी प्रयुक्त होती है।

कांच के ऊपर इस धातु का बहुत पतला लेप चढ़ाने से प्लेटिनम दर्पण बन जाते हैं जिनमे एक अद्वितीय विशेषता होती है। ये केवल एक तरफ से पारदर्शी होते हैं। जिस तरह प्रकाश का स्रोत स्थित होता है उधर से ये दर्पण अपारदर्शी होते हैं। उस तरफ से यह एक साधारण दर्पण है जिसमे चीजो का प्रतिबिंब दिखाई देता है, परंतु छाया वाली तरफ से वह एक कांच की तरह पारदर्शी होता है अर्थात् उधर से दूसरी तरफ का सारा नजारा दिखाई देता है। एक जमाने में संयुक्त राज्य अमरीका मे प्लेटिनम दर्पणों का बहुत फैशन था। विभिन्न दफ्तरो की बिल्डिगो की निचली मंजिलों की खिडकियों में ऐसे दर्पण लगाए जाते थे तथा घरो में इन्हें पर्दो की तरह इस्तेमाल किया जाता था।

यहां यह बताना जरूरी है कि प्रथम प्लेटिनम दर्पण (कांच के नहीं बल्कि धातु के) प्राचीन अजटेक लोगों ने बनाए थे। ये दर्पण धातु के पतले, चिकने तथा पालिशदार चमकीले पत्तर के बने होते थे। उस पुराने जमाने में वे लोग कैसे यह काम कर सके, यह बात आज तक रहस्य बनी हुई है। सर्वविदित है कि प्लेटिनम केवल श्वेत ताप पर फोर्जन योग्य हो पाता है अर्थात् बहुत ही उच्च ताप पर। और उस जमाने के धातुकर्मियों के लिए यह एक असंभव कार्य था। कुछ भी हो, अजटेको के सरदार मोंटेजूमा ने स्पेन के बादशाह को ऐसे कुछ दर्पण

भेंट के रूप में भेजे। बादशाह ने इस 'वफादारी के बदले' में 1520 में मोटेजूमा को कैद में नष्ट करवा दिया और बाद में जान से मरवा दिया।

स्पंज प्लेटिनम में बड़ी मात्रा में गैस निगलने की क्षमता एक अद्वितीय परिघटना का आधारभूत है। अगर एक प्लेटिनम बर्तन में हाइड्रोजन या ऑक्सीजन भरकर उसे पूरी तरह बंद किया जाए तथा गरम किया जाए तो गैस बर्तन से बाहर निकलने लगती है। इसका कारण यह है कि गैस के अणु प्लेटिनम की दीवार में से इतनी आसानी से बाहर निकल जाते है जितनी आसानी से पानी छलनी में से होकर बहता है।

उच्च तापमान मापन में प्लेटिनम महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। प्लेटिनम के बने प्रतिरोधी थर्मामीटरों का प्रयोग बहुत विस्तृत है। इन थर्मामीटरो के काम करने का सिद्धांत इस बात पर आधारित है कि गरम करने पर प्लेटिनम का विद्युत प्रतिरोध तापमान के हिसाब से एक निश्चितक्रमानुसार बढता जाता है। उपकरण से जुड़ी एक प्लेटिनम तार प्रतिरोध के इस परिवर्तन को नापकर तुरत उपकरण को तापमान के छोटे-से-छोटे अंतर की सूचना दे देता है।

तापवैद्युत युग्मों का प्रयोग और भी ज्यादा विस्तृत है। इनकी संरचना बिल्कुल भी जटिल नहीं होती परंतु तापमान वे अत्यधिक शुद्धता से नापते हैं।

अगर विभिन्न धातुओं के दो तारों को वेल्डिंग द्वारा जोड़ दिया जाए और फिर जोड़ वाली जगह को गरम किया जाए तो तारो मे विद्युत धारा उत्पन्न हो जाएगी। जोड़ को जितने उच्च तापमान तक गरम करेंगे परिपथ का विद्युतवाहक बल उतना ही उच्च होगा। तापवैद्युत युग्मों के निर्माण में प्रायः प्लेटिनम या इसके ऐलॉय (रोडियम या इरीडियम) प्रयुक्त किए जाते हैं।

प्लेटिनम और इरीडियम मिलकर बहुत लंबे अर्से से समाज की काफी सेवा करते आ रहे हैं। लेनिनग्राद में मास्को प्रोस्पेक्ट पर एक साधारण इमारत खडी है जिसके प्रवेश-द्वार पर एक काली पटिया पर रूसी और फ्रेंच में निम्न शब्द अंकित हैं : 'सोवियत संघ के राजकीय मानदंड'। आज यह इमारत मेंदेलीव माप-पद्धति अनुसंधान संस्थान का एक हिस्सा है। यहां एक सेफ में बडी सुरक्षा के साथ 1883 में ही बनाया गया। किलोग्राम का मानदड रखा हुआ है जिसे प्लेटिनम (90%) तथा इरीडियम (10%) के मिश्रण से बनाया गया था।

इस सेफ में हर वक्त एकसमान तापमान तथा आर्द्रता रखी जाती है। इसे खोलने के लिए तीन व्यक्तियों की उपस्थिति आवश्यक है—संस्थान के निर्देशक, राष्ट्रीय मानकों के रक्षक तथा इस विशिष्ट मानक के रक्षक की। इस सेफ में तीन ताले लगे हुए हैं, तीनों लोगों के पास अलग-अलग ताले की चाबी है। सेफ

का भारी दरवाजा केवल तभी खुल सकता है जब तीनों चाबिय
जाती है। यह मानक बेलन के रूप में बनाया गया है जिसकी
39 मिलीमीटर है। यह शीशे के दो छत्रों के नीचे चट्टानी क्रिस
पर रखा हुआ है।

समय-समय पर यह मानक अनिमवंदी माप-पद्धति तला
की शुद्धता की जांच करता है। यह तुलना इतनी अधिक स
श्वसन-क्रिया के दौरान मुह से निकली हवा से भी प्रतिक्रिया क
पर चलते यातायात या सम्थान के अंदर चालू मशीनों के प्रभाव
रखने के लिए इस तुला को जमीन में 7 मीटर की गहराई
यहा हर वक्त एक-सा तापक्रम तथा आर्द्रता रखने के लिए तुला
नियत्रण द्वारा साथ वाले कमरे से किया जाता है।

इतनी सावधानियां बरतने के बावजूद पिछले लगभग
राजकीय मानक के वजन में 0 017 मिलीग्राम की कमी आ
कमी न के बराबर होने के कारण अप्रेल 1968 मे इसे दोबारा सोवियत सघ के किलोग्राम का मानक स्वीकार कर लिया गया।

इसी सेफ के अंदर एक विशेष पेटी में एक प्लेटिनम-इरीडियम शलाका रखी हुई है जो पिछले दिनो तक मीटर का राजकीय मानक मानी जाती थी। लबाई का यह मानक पेरिस याम्योत्तर रेखा के 0.25×10^{-7} अंश के बराबर है तथा इसे 1791 मे फ्रांस में बनाया गया था। आठ साल बाद मीटर का सर्वप्रथम मानक बनाया गया जो आज पेरिस में अतर्राष्ट्रीय माप तथा तौल ब्यूरो के पास सुरक्षित है। इस
पर निम्न शब्द अकित है · 'हर युग के लिए, हर राष्ट्र के
मीटर लंबाई की इकाइयो में सर्वाधिक प्रचलित है। 1889 से
पहले तक पेरिस के इस मानक की हू-ब-हू नकल सोवियत स
की भूमिका निभाती रही। वैज्ञानिक लोग इन मानकों की क

प्रयास में जुटे रहे [illegible] में प्लेटिनम इरीडियम शलाका को इस्तीफा देना पडा और उसकी जगह क्रिप्टन लैम्प की किरण ने ले ली। 20 साल से भी ज्यादा अर्से तक एक समस्थानिक क्रिप्टन-86 द्वारा उत्सर्जित नारगी रग के प्रकाश की 1650763.73 तरंग-दैर्घ्य ही एक मीटर का मानक बना रहा। लेकिन इस मानक का व्यावहारिक प्रयोग कम किया जाए। एक विशेष यत्र ने इस समस्या का समाधान कर दिया जो यह बताता है कि तरंग-दैर्घ्य की आवश्यक लबाई तुलना वाले मीटर के समानांतर है या नहीं। लेकिन यह मानक भी बहुत दिनो तक नहीं चला। 1983 मे माप-विशेषज्ञों की अन्तर्राष्ट्रीय कांग्रेस ने मीटर की एक नई नाप निश्चित कर दी। अब मीटर उस दूरी को माना जाता है जो लेसर किरण एक सेकेंड के 1/299792458 भाग में तय करती है।

प्लेटिनम के साथ एक और भी मानक सबंधित है—प्रकाशीय मानक। इसके लिए पिघले हुए प्लेटिनम में डूबी एक ट्यूब से सदीप्ति का इस्तेमाल करते हैं। यह ट्यूब दाने हुए थोरियम ऑक्साइड से बनाई जाती है। मापने का काम प्लेटिनम के ठोसीकृत होने पर किया जाता है। चूंकि इस वक्त तापमान स्थिर रहता है, अतः ज्योति-तीव्रता की इकाई काफी बड़ी परिशुद्धता के साथ निर्धारित की जाती है।

चिकित्सा के क्षेत्र में प्लेटिनम का उपयोग बहुत विस्तृत होता जा रहा है। बहुत सारे देशों के डॉक्टर इस धातु के बने विशेष इलेक्ट्रोड रोगी की रुधिर वाहिकाओं में घुसाकर विभिन्न रोगों का, विशेषतया हृदरोगो का निदान करते हैं। इस विधि को प्लेटिनम-हाइड्रोजन निदान कहते हैं क्योंकि यह इन दोनो तत्त्वों की विद्युतरासायनिक प्रतिक्रिया पर आधारित है।

संयुक्त राज्य अमरीका की ओहियो स्टेट के डॉक्टरो ने प्लेटिनम का एक और महत्त्वपूर्ण उपयोग ढूंढ लिया है। उन्होंने संवेदनाहरण की एक बिल्कुल नई विधि खोजी है जो निम्न सिद्धांत पर आधारित है : रोगी की सुषुम्ना कुछ से. मी. लबी प्लेटिनम की एक प्लेट द्वारा एक विद्युत उद्दीपक के साथ जोड़ देते है। मरीज के शरीर मे जरा-सी भी हरकत होते ही उपकरण मस्तिष्क को विद्युत सिग्नल भेजने लगता है जिनके कारण उसे पीड़ा की अनुभूति नहीं होती।

दांतों के डाक्टर भी प्लेटिनम की बहुत इज्जत करते हैं। वे इसके ऑक्सीकृत न होने के गुण की ओर आकर्षित हैं। और हो भी क्यो न? नकली दातों के लिए यह गुण कितना महत्त्वपूर्ण भी तो है? शुद्ध प्लेटिनम बहुत नर्म होने के कारण इस काम के लिए उपयुक्त नहीं है, परतु इसके ऐलॉय, जिनकी मजबूती अद्वितीय होती है, दांतो के खोलों तथा नकली दांतों के निर्माण मे सफलतापूर्वक इस्तेमाल हो रहे हैं। पहले प्लेटिनम को सख्त करने के लिए उसमे रजत तथा

निकिल मिलाए जाते थे, बाद में स्वर्ण और प्लेटिनम धातुएं मिलाई जाने लगीं। इन धातुओं के कारण संक्षारणरोधी प्लेटिनम सख्त हो जाता है—ऐसा दांत सख्त-से-सख्त गिरी चबा सकता है।

विश्व में उत्पादित प्लेटिनम का एक बड़ा हिस्सा जौहरियों के पास पहुंचता है। इन लोगों ने इस धातु में दिलचस्पी तभी लेनी शुरू कर दी जब इसका भाव स्वर्ण के भाव से कई गुना ऊंचा हो गया। द्वितीय विश्व युद्ध से पहले प्लेटिनम की अगूठियो, जड़ाऊ पिनों, बुंदों, छल्लों तथा अन्य गहनों का फैशन शुरू हो गया था। कुछ अमीर लोगों के नखरे पूरे करने के लिए कई बार इस धातु को छोटे काम भी करने पड़ते हैं—वे लोग इस धातु से अपने कुत्तों की जंजीरें तथा तोतो के पिजडे बनवाते हैं। कुछ साल पहले लंदन में एक नए स्वीमिंग-सूट का प्रदर्शन किया गया। यह एक नई मिनीबिकिनी थी जिसकी कीमत 50 हजार डालर थी। इसकी कीमत इतनी अधिक होने का कारण यह था कि इसमें प्लेटिनम के धागे इस्तेमाल किए गए थे। इसके अलावा फैशन का ख्याल रखते हुए प्लेटिनम से सजावट भी की गई थी। यह बात स्वाभाविक थी कि प्रदर्शन के समय माडल की सुरक्षा के लिए एक हथियारबंद अंगरक्षक उसके पीछे चल रहा था। परंतु हाल मे अगर एक अंगरक्षक काफी था तो समुद्र तट पर दर्जनों अंगरक्षक कम पडते। खैर छोडिए, हमारा क्या मतलब, जो खरीदेगा, वही इस बात को सोचेगा।

शुद्ध प्लेटिनम के साथ-साथ जोहरी लोग इस धातु के एलाय भी इस्तेमाल करते हैं जो या तो मजबूती बढाने के उद्देश्य से मिलाए जाते हैं या उन गाहकों को खुश करने के लिए, जो फैशन की चीजें चाहते हैं परंतु पैसे ज्यादा नही दे सकते।

सोवियत संघ में प्लेटिनम को बहुत मान्यता दी जाती है—देश के सबसे सम्माननीय पदक पर व्लादीमीर लेनिन का चित्र इस धातु का बनाया गया है। मास्को में आयोजित बाइसवे ओलपिक खेलों के वक्त 1980 में सोवियत सघ मे इस अवसर पर सिक्के ढाले गए। इनमें सबसे महगे सिक्के प्लेटिनम के बने थे जिनकी कीमत 150 रूबल थी।

धातुओं का राजा-राजाओं की धातु

बादशाह मिडास अपनी इच्छा बताता है--मिस्र के फिराउनों की घाटी में--महारानी सेमीरामिदा का भेद--सिक्कों की शल्य-चिकित्सा--दिन-रात--'नीली दाढ़ी वाले' की क्रूरता--भोर होने से पहले--अताहुअल्पा की रिहाई की कीमत--सूरज देवता का मंदिर--सागर बदला लेता है--'गोल्ड-फीवर'--सम्राज्ञी का संग्रहण--प्रिंस गागारिन की बग्घी--निकीफोर स्यूत्किन को इनाम के बदले सजा मिलती है--आस्ट्रेलिया में स्वर्ण के सबसे बड़े डले मिले--बुद्ध की मूर्ति का भेद--बहुत रहस्य की बात--स्वर्णभक्षी जीवाणु--बीसवीं शताब्दी के 'कीमियागर--' आर्कीमिडिस बेईमानों का भंडाफोड़ देता है--चर्च के लोग बेवकूफ बन जाते है--खजांची की चालाकी--नील्स बोहर स्वर्ण-तमगों को अम्लराज में घोल देता है--आजीवन कैद--पिरामिड में नई चीज मिलती है--स्वर्ण की बनी सीलें--अटलांटिक महासागर के गर्भ में

स्वर्ण।...मानव-जाति के लंबे इतिहास में कोई भी दूसरी धातु स्वर्ण जितनी अशुभ सिद्ध नही हुई है। इस धातु पर कब्जा करने के लिए खूनी लडाइयां लड़ी गई, देशों और जातियों को नष्ट कर दिया गया, घोर-से-घोर अपराध किए गए। पीले रंग की इस सुंदर धातु ने मनुष्य को कितने दुःख और कष्ट पहुचाए हैं।

फ्रीजियाई बादशाह मिडास शायद पहला व्यक्ति था जिसे स्वर्ण के कारण असख्य कष्ट भोगने पडे। एक प्राचीन यूनानी किवदंती मे इस बात का वर्णन इस प्रकार किया गया है।

एक बार जीवस का पुत्र सुरा का देवता डायोनिसस अपने भक्तो के साथ फ्रीजिया की सुंदर भूमि में घूम रहा था। शराब के नशे में आकर डायोनिसस

का प्यारा गुरु सिलेनस धीरे-धीरे अपने साथियों से पीछे छूटता गया। फ्रीजियाई किसानो ने उसे देख लिया। उन्होंने उसे फूलों के हार पहनाए और बादशाह मिडास के पास ले आए। बादशाह ने तुरंत उस वृद्ध दयालु शराबी को पहचान लिया। उसने सिलेनस का हार्दिक स्वागत किया और सम्मानित मेहमान के आने की खुशी मे 10 दिनों तक भोज का आयोजन किया। दसवें दिन मिडास सिलेनस को खुद डायोनिसस के पास पहुंचा आया जिसने खुश होकर मिडास से कोई वरदान मांगने को कहा।

'प्रभु! आप महान हैं!' फ्रीजिया के बादशाह ने खुशी से चिल्लाकर कहा। 'मुझे यह वरदान दीजिए कि जिस चीज को मैं स्पर्श करूं, वह सोने की बन जाए।' मिडास की 'साधारण' इच्छा पूरी कर दी गई। खुशी से पागल बादशाह बड़ी तेजी से अपने महल की ओर भागा। रास्ते मे उसने बंजुन की एक हरी टहनी तोड़ी, वह तुरंत सोने मे बदल गई, उसने खेत में गेहूं की बाली छुई, वह भी सोने की बन गई। उसने पेड से एक सेब तोड़ा, वह तुरन्त सोने के पीले रंग से चमकने लगा। बादशाह ने पानी से हाथ धोने चाहे। हथेली को छूते ही पानी की जगह

सोने की धारा बहने लगी। मिडास की खुशी का ठिकाना न था। परंतु जैसे ही बादशाह खाना खाने बैठा, वह तुरन्त समझ गया कि उसने कितना खतरनाक वरदान माग लिया है। रोटी, शराब तथा अन्य व्यंजनो को हाथ लगाते ही सारी चीजें तुरन्त सोने की बन गई। भयभीत बादशाह को भूख और प्यास से अपनी मौत नजदीक दिखाई दे रही थी। उसने आसपास की ओर हाथ उठाकर चिल्लाकर कहा : 'प्रभु! मेरी रक्षा कीजिए, मुझे माफ कर दीजिए, अपना वरदान वापस ले

लीजिए, डायोनिसस ने मिडास को पाक्टोल्स नदी के उद्गम स्थल पर जाने को कहा। जहा पवित्र पानी में हाथ धोकर बादशाह को इस भयंकर वरदान से मुक्ति मिली।

जापान की एक टूरिस्ट-कंपनी ने अपने एक फैशनबल होटल में शुद्ध स्वर्ण का बना एक हमाम लगवा दिया। काफी महगा होने के बावजूद हजारो लोग इस हमाम मे स्नान के लिए होटल मे आने लगे। कपनी को लाखो का फायदा होने लगा। परतु हर रोज मालिकों के सामने नई-नई समस्याए आ रही थी। कंपनी को दर्जनो जासूस भरती करने पड़े क्योंकि कुछ ग्राहक नहाते समय एकांत का लाभ उठाते हुए तौलियो मे छिपाई आरी से स्वर्ण काटने की कोशिश करने लग पडे थे। चुस्त रक्षको ने हमाम के अंदर जाते समय किसी भी किस्म का औजार ले जाने पर पाबदी लगा दी। अब स्वर्ण के शौकिए केवल अपनी निजी ताकत का फायदा उठा सकते थे। उस महिला ने, जिसकी हमने ऊपर चर्चा की है, नहाने के बाद अपने दांतों से स्वर्ण काटने की कोशिश की। परंतु 'गिरी' बहुत सख्त थी। कुछ दिनों बाद लोगो ने इस महिला को दांतो के डॉक्टर के पास देखा, जहा वह अपने जबडे बदलवाने आई थी।

सुना जाता है कि इस सफलता से कपनी का उत्साह काफी बढ़ गया है और उसके मालिको ने अपने सभी बढिया होटलों के शौचघरों मे स्वर्ण के कमोड लगाने का फैसला किया है।

यह कोई नई बात नही है। 1921 मे लेनिन ने इस पीली धातु का तिरस्कार करते हुए निम्न शब्द लिखे : 'जब विश्व स्तर पर हमारी जीत हो जाएगी, तब मैं सोचता हूं, हम विश्व के कुछ बडे शहरों की सडको पर इस धातु के शौचालय बनवा देगे। परतु फिलहाल हमें रूस का स्वर्ण संभालकर खर्च करना चाहिए। इसे महंगे भावों पर बेचना चाहिए और इसके बदले चीजे सस्ते दामों पर खरीदनी चाहिए।'

स्वर्ण का इतिहास सभ्यता का इतिहास है। इस धातु के पहले दाने मनुष्य के हाथ कई हजार साल पहले लगे। तभी से वह इसे एक कीमती

धातु माना जा रहा है। पुराने जमाने में सबसे ज्यादा स्वर्ण मिस्र के राजवंश के लोगों की कब्रों की खुदाई से मिला। इसके सबूत हैं। 'सूर्य की पहली किरण पड़ते ही हर जगह स्वर्ण फर्श पर, दीवारों पर, कोने में, जहां दरवाजों के पास [illegible] चमकीला तथा ताजा था। ऐसा लगता था कि जैसे अभी रखा हो।' 1907 में ये शब्द पुरातत्त्वज्ञों के एक दल के [illegible] किनारे फिराउनों की घाटी में कब्र के पास एक [illegible] खुदाई के बाद कहे।

इस घटना के 15 साल बाद अंग्रेज पुरातत्त्वज्ञ हावर्ड कार्टर को इसी तरह पर टूटनखामोन की कब्र मिली जो ईसा से चौदह शताब्दी पूर्व मिस्र का फिराउन था। इस कब्र में हजारों साल तक प्राचीन कला के अनमोल नमूने छिपे रहे जिनमें से बहुत सारे शुद्ध स्वर्ण के बने थे। इस फिराउन की ममी स्वर्ण के एक ताबूत मे बंद थी, जिसका वजन 110 किलोग्राम था। टूटनखामोन का नकाब अति सुदर था। यह स्वर्ण से बना था तथा विभिन्न रगो के कीमती पत्थरो से सजा था।

परतु कब्रों तथा ताबूतो में उन अनगिनत खजानो का केवल एक थोड़ा-सा भाग रखा गया था जो पुराने जमाने के बादशाहों के जीवन-काल मे उनके कब्जे में थे। किवदतियों के अनुसार असीरिया की महारानी सेमीरामिदा ने देवताओं को प्रसन्न करने के लिए शुद्ध स्वर्ण से उनकी विशा इनमें से एक मूर्ति लगभग 12 मीटर ऊंची थी जिसका वजन टेलेण्ट (30 टन के आसपास) था। देवी रिहा की मूर्ति इस थी। इसके निर्माण में 8000 टेलेण्ट (लगभग 250 टन) शुद्ध देवी एक सिंहासन पर बैठी थी तथा उसके दोनो ओर अगर के बने दो बड़े शेर।

स्वण के सिक्के पहली बार लगभग ढाई हजार साल पहले दिखाई दिए वे लीडिया मे ढाले गए थे जो पश्चिमी छोटे एशिया में दासप्रथा वाला एक शक्तिशाली देश था। इस देश के यूनान तथा अपने पूर्वी पड़ोसियों के साथ लंबे-चौडे व्यापारिक संबध थे। सुविधा हेतु लीडिया की सरकार ने स्वर्ण के सिक्के चला दिए जो स्टेटर कहलाते थे। इन सिक्को पर एक भागती लोमडी छापी गई थी जो लीडिया लोगो के मुख्य देवता बासारियस का प्रतीक था।

फारस के शाह साइरस के लीडिया पर कब्जा करने के बाद स्वर्ण के सिक्के मध्य पूर्व एशिया के देशों में भी चलने लगे। फारस के बादशाह दारिया प्रथम के सिक्कों—दारिकी—का प्रचलन काफी विस्तृत था। इन सिक्कों पर बादशाह तीर से शिकार करता दिखाया गया था।

कुछ ऐसे सम्राट् हुए हैं जिन्होने अपने खजाने को स्वर्ण से भरने के लिए नए-नए तरीके अपनाए। 1285 मे फ्रास की गद्दी पर फिलिप चतुर्थ बैठा जो 'सुदर' के उपनाम से प्रसिद्ध था। यह बताना मुश्किल है कि वह वास्तव मे सुंदर था या नहीं, परन्तु इस बात के सबूत जरूर मिलते है कि वह चालाक तथा लालची था। फिलिप चतुर्थ ने अपना राज्य बढाने के लिए असंख्य युद्ध लड़े। स्वाभाविक था कि युद्ध के लिए धन काफी चाहिए था। धर्मभीरु न होने के कारण वह चालाकी तथा धोखेबाजी पर उतर आया। उसके गुप्त आदेश पर स्वर्ण के सिक्को की टकसाल मे 'शल्य-चिकित्सा' की गई। उन्हें घिसा गया और प्राप्त चूरे से नए सिक्के बनाये गए। इस तरीके से 100 स्वर्ण सिक्को से 110-115 सिक्के बन जाते थे। ज्यादा मेहनत करने पर यह सख्या इससे भी ऊपर पहुंच जाती थी। सम्राट् नए सिक्को की ढलाई अपने सामने करवाता था और जो कोई भी उसका विरोध करता था, उसे वह जान से मरवा देता था।

मध्य युग मे कीमियागरों का बहुत बोल-बाला था। बूढा हो या जवान, हर किसी को कीमियागरी का शौक चढ़ा हुआ था। इससे पहले भी लोग अन्य धातुओं को स्वर्ण मे बदलने के प्रयास करते आ रहे थे परतु वे इतने व्यापक नहीं थे। दिन-रात किलों के तहखानों में कीमियागरों की भट्ठियां सुलगती रहती थीं, बायलरो में हर रंग के रहस्यमई द्रव उबलते रहते थे, देगों तथा क्रूसिबलो से दमघोटी धुआं निकलता रहता था।

उस जमाने में लोगों को यह विश्वास था कि अगर पारस-मणि मिल जाए, तो उसकी सहायता से हर चीज स्वर्ण की बनाई जा सकती है। पारस-मणि की खोज में कीमियागर तथा उनके संरक्षक अपने प्रतिद्वंद्वियो को पीछे छोड़ने के प्रयास मे जुटे हुए थे। इस आधार पर लोगों के बीच अविश्वास और बैर बढता जा

रहा था, विभिन्न अपराधों के झूठे तथा कपट के इल्जामों में निरपराध लोगों को सजाएं दी जा रही थीं। उदाहरणतया, सन् 1440 में फ्रांस मार्शल गिल दि लावाल बेरन डि राइस, जो इतिहास में 'नीली दाढ़ी वाले बाबा' के नाम से प्रसिद्ध है, पर सैकडो लडकिया मारने का इल्जाम लगाया गया। लोगों का कहना था कि यह क्रूर व्यक्ति अपने साथी कीमियागर फ्रान्सिस्को प्रेलाटी के मश्वरे से लडकियों के रक्त से स्वर्ण बनाया करता था। नान्ट के बिशप के आदेश पर मार्शल गिल डि राइस तथा प्रेलाटी को जिंदा जला दिया गया। 1925 में गिलेस दि लावाल की ध्वस्त हवेली की खुदाई करने पर जमीन के नीचे स्वर्णयुक्त क्वार्ट्ज का एक छोटा-सा निक्षेप मिला, जहा से प्रेलाटी 'नीली दाढ़ी वाले' के लिए स्वर्ण निकालता था।

चौदहवीं शताब्दी के आरंभ मे, जब यूरोप मे कीमियागरों का खूब बोलबाला था, स्पेनिश तथा पुर्तगाली विजेताओं ने स्वर्ण हासिल करने का एक और भी बढिया तरीका ढूंढ निकाला : उन्होंने अमरीका के प्राचीन देशों को बडी बेदर्दी से लूटना शुरू कर दिया, जिनकी 1492 मे कोलम्बस ने खोज की थी। नई दुनिया के वासियों के लोगों ने सदियों से जो स्वर्ण इकट्ठा कर रखा था, वह सारा-का-सारा यूरोप पहुंचने लगा।

इन अत्याचारी विजेताओं को इस बात का सपना भी आया था कि अमरीका मे उन्हें अनमोल बेशुमार खजाने मिलेंगे। 1519 में जब स्पेनवासी कार्टेस वेराक्रूस बदरगाह पर उतरा तो रेड-इंडियनो को यह पता नहीं था कि सफेद चेहरे वाला यह आगतुक उनके लिए कितना अशुभ सिद्ध होगा। इन लोगों ने कोर्टेस को तरह-तरह के उपहारो के अलावा दो विशाल चकलिया भी दी जिनमे से एक स्वर्ण की तथा दूसरी रजत की बनी थी। ये चकलिया सूर्य तथा चद्रमा का प्रतीक थी।

पुराने जमाने में लैटिन अमरीका के लोग स्वर्ण को एक पवित्र धातु मानते थे। वे इसे सूरज देवता की धातु समझते थे। इन लोगो के सरदार तथा पुरोहित कई तरह के अनुष्ठान किया करते थे जो इस दुनिया के ताकतवर लोगों तथा देवताओं द्वारा दी गई समृद्धि अर्थात् स्वर्ण के बीच अखड सबंध का प्रतीक होते थे। इनमे से एक अनुष्ठान इस प्रकार पूरा किया जाता था : भोर होने से पहले अजटेको के सरदार अपने शरीर पर खुशबूदार तेल मलकर खड़े हो जाते थे। जैसे ही उनका मुख्य पुरोहित इशारा करता था, वे अपने शरीर पर स्वर्ण का पाउडर छिडकने लगते थे। इसके बाद स्वर्ण से जगमगाता सरदार अपने अनुयायियो के साथ सरकडे की नाव पर बैठकर झील के रास्ते सूरज से मिलने निकल पडता था। जैसे ही पहाड के पीछे से तप्त सूरज निकलता दिखाई देता था, अनुयायी

सरदार के शरीर का धोने लगते थे इस पवित्र काम के दौरान पुरोहित लोग सरदार को स्वर्ण की अगूठिया, कगन तथा अन्य गहने पहनाना शुरू कर देते थे। इस अनुष्ठान के बाद किसी को भी इस बात मे तनिक भी सदेह नही रहता था कि उसका सरदार सूरज देवता का पुत्र है।

मदिर स्वर्ण से भरे पडे थे। एक मंदिर की सारी-की-सारी छत स्वर्ण के तारो, चिंउटियो, तितलियो, चिडियो आदि से सजी हुई थी। यह मदिर इतना खूबसूरत था कि जो कोई भी इसे देखता था, दांतो तले उगली दबाने लगता था।

स्पेनिश विजेताओ के एक सरदार का नाम फ्रांसिस्को पिसारो था। सोलहवी शताब्दी के तीसरे दशक के आरभ में इसने इंकाओ की जमीन पर कदम रखे। उन दिनों इंका लोग आपसी झगड़ों मे फसे हुए थे। एक विदेशी के आगमन मे आरभ में इंकाओं को कोई खतरे की बात नही दिखाई दी बल्कि इनका सरदार महान् इका अताहुआल्पा यह समझा कि इस विदेशी का रूप धारण करके देवता युद्ध में उसकी सहायता करने आए हैं।

एक दिन पिसारो ने इकाओ के सरदार को भोज पर बुलाया। अताहुआल्पा परो से सजी स्वर्ण की बनी एक पालकी में बैठकर आया। इंका सरकार और उसके अनुचरों के पास किसी भी तरह के हथियार नहीं थे। धूर्त पिसारो को इसी अवसर की तलाश थी। उसके इशारा करते ही स्पेनिश सैनिक मेहमानों पर टूट पड़े। उन्होंने सारे अनुचरों को मौत के घाट उतार दिया और अताहुआल्पा को कैद कर लिया।

कुछ दिनों बाद पिसारो ने अताहुआल्पा से यह कहा कि अगर दो महीने के अदर वह अपने कैदखाने का कमरा इतने स्वर्ण से भर देगा कि खडा होकर हाथ उठाने के बाद हाथ स्वर्ण मे रहेगा, तो इंका सरदार आजाद कर दिया जाएगा। महान् इका अपनी रिहाई के बदले इतनी ऊंची कीमत देने को तैयार हो गया। उसके घुडसवार यह बात सारे देश में फैला आए और शीघ्र ही कैदखाने का कमरा स्वर्ण के बने बर्तनों, मूर्तियो, गहनों तथा अन्य चीजों से भरने लगा। स्वर्ण का ढेर बढता गया, परतु दो महीने बाद भी निश्चित स्तर तक नही पहुंच पाया। इका सरदार ने पिसारो को विश्वास दिलाया कि उसकी शर्त पूरी होने में बहुत थोडा समय ओर लगेगा, परंतु पिसारो ने अताहुआल्पा को मरवाने का फैसला कर लिया क्योकि उसे यह डर था कि जिंदा रहने पर इंका सरदार स्पेनिश लोगो के लिए एक सिरदर्दी बना रहेगा।

जिस वक्त अताहुआल्पा को मारा गया, सोने से लदे कारवां कैदखाने की ओर बढ रहे थे। इंका लोग अपने सरदार की रिहाई के लिए स्वर्ण लेकर बडी

तेजी से आगे बढ़ रहे थे परन्तु जैसे ही इन्हें यह पता चला कि [illegible]
को स्पेनिश लोगों ने मार दिया है, उन्होंने सारा का सारा खजाना अजान्[illegible]
मे छिपा दिया। अजान्गार का अर्थ है '[illegible]'। इस [illegible]
विजेताओं के हाथ से एक अनमोल खजाना निकल गया। [illegible]
मे स्वर्ण की एक जंजीर थी जो इतनी भारी थी कि इसे [illegible]
कम 200 आदमी चाहिए थे।

परतु फिर भी इंका लोग सारा खजाना नहीं छिपा पाए। स्पेनिश हमलावरों ने पेरू के एक बहुत धनी नगर, कुस्को पर कब्जा कर लिया और बुरी तरह से लूटना शुरू कर दिया। सूरज देवता का एक मदिर इस शहर की शोभा था जो स्वर्ण से भरा पड़ा था। इस मदिर के मुख्य हाल की दीवारे तथा छत स्वर्ण की पत्तियों की बनी थीं तथा इसके पूर्वी हिस्से मे स्वर्ण की बनी एक चकती जगमगा रही थी—यह सूरज देवता का प्रतीक थी। देवता की आखें रगबिरंगे नगो से चमक रही थीं। मदिर के चारों ओर स्वर्ण का बाग लगा हुआ था। पेड़, पौधे, पक्षी—हर चीज [illegible] के साथ स्वर्ण की बनाई गई थी। बाग मे स्वर्ण के सिंहासन पड़े [illegible] पर सूरज के पुत्रों 'महान् इंकाओं' की मूर्तिया बिठाई गई थीं।

पिसारो के आक्रमण के कुछ हफ्तों बाद कुस्को नगर पूरी तरह [illegible] था। स्पेनिश हमलावर बड़ी निर्दयता से इंकाओं की कला नष्ट करने [illegible] निर्माण मे शताब्दियां लग गई थीं। उन लोगों ने प्राचीन कलाकारों [illegible] के अद्वितीय नमूने पिघलाकर स्वर्ण की सिल्लियों में बदल दिए जिससे [illegible] पर लादने में आसानी रहे।

दो शताब्दियो तक हर साल स्वर्ण से लदे जहाज नई दुनिया [illegible]
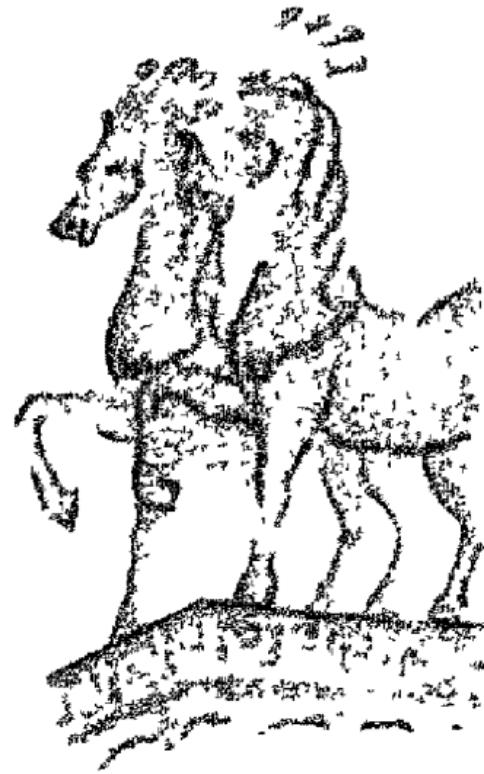
प्रायद्वीप आते रह परतु सागर ने बीसियो वार लुटेरो के हाथ से स्वर्ण के खजाने छीने और अपने गर्भ में छिपाकर रख दिए जैसे कि वह स्पेनिश लोगों से बदला ले रहा हो।

सन् 1622 मे फ्लोरिडा से कुछ दूरी पर भयकर तूफान से दो स्पेनिश जहाज 'साता मारगारिता' तथा 'नुएस्तरा सिन्योरा दे आतोचो' समुद्र में डूब गए। इन जहाजो पर वहुत बडी मात्रा मे स्वर्ण तथा हीरे-जवाहरात लदे हुए थे। बीस साल बाद ऐसे ही तूफान ने 16 और जहाजो को नष्ट कर दिया जो स्पेनिश वदरगाह सेविल्या की ओर बढ रहे थे। ऐतिहासिक दस्तावेज बताते हैं कि इन जहाजो पर लदे माल (मुख्यत· स्वर्ण) की कुल कीमत कई करोड डालर थी। 1715 मे अमरीका के तट पर समुद्र स्वर्ण से लदे 14 जहाजो को निगल गया।

इतिहासकारो की गणनानुसार, उदाहरणतया, कैरीबियन सागर मे ऐसे सौ जहाज डूबे हैं, फ्लोरिडा के दक्षिणी-पूर्वी क्षेत्र में भी लगभग इतने ही जहाज समुद्र ने निगले है। 60 से भी ज्यादा स्पेनिश जहाजो की कब्रे बहामा तथा बेरमूदा द्वीप मे हे। मैक्सिको की खाड़ी में 70 के लगभग जहाज डूबे हैं। बेशक इन सभी जहाजो को सोने की खान कहा जा सकता है क्योंकि हर जहाज पर करोडो का माल लदा था। यहां इतना कहना काफी होगा कि इनमे से एक जहाज 'साता रोजा' पर अजटेको के सरदार मोटेजूमा का बेशुमार खजाना लदा था। विशेषज्ञो के मतानुसार समुद्र मे डूबे जहाजों पर लदे स्वर्ण, रजत तथा अन्य कीमती चीजो का मूल्य कई अरब डालर बैठता है।

कई शताब्दियों से ये अनमोल चीजे खजाने के खोजियों को पागल कर बैठी है। पिछले कुछ सालो से जल के अदर खजाने की खोज का कार्य कुछ ज्यादा ही तेजी पकड गया है। बहुत सारे देशो में ऐसी पुस्तकें, एटलसें तथा नक्शे छप रहे हैं जिनमें स्वर्ण तथा हीरे-जवाहरातों से लदे जहाजो के डूबने की अनुमानित जगह दिखाई गई है। हर साल सैकड़ों अभियान-दल समुद्र में स्वर्ण तथा रजत की खोज में रवाना होते है। परंतु खजाने के इन खोजियों को अक्सर निराश होना पड़ता है, उन्हे ज्यादातर असफलता का मुंह देखना पड़ता है। इसके बावज भी हजारो लोग आगे बढ़ने को तैयार रहते हैं।

चूंकि समुद्र की सतह पर स्वर्ण खोजने का काम काफी कठिन होता है, अत· जमीन पर इस पीली धातु की खोज का प्रयास हमेशा बड़े जोर-शोर से होता रहा है। जैसे ही दुनिया के किसी हिस्से में स्वर्ण की कोई खान मिलने की खबर फैलती थी, वैसे ही हजारों, लाखों खजाने के खोजी उधर भागते थे। उन्हे 'गोल्ड फीवर' हो जाता था। यह वह रोग है जिसका नाम किसी भी निदर्शिका

मे नही मिलेगा, परन्तु जैक लंदन तथा ब्रेट हार्ट की कहानियों में इसका वेहतरीन वर्णन जरूर मिलेगा।

कुछ ग्राम स्वर्ण के लिए इन्सान हैवान बन गया, भाई ने भाई को मार दिया, बेटे ने बाप का कत्ल कर दिया। अठारहवीं शताब्दी के आरंभ में ब्राजील मे स्वर्ण के निक्षेप मिलने के बाद ऐसा कई बार देखने को मिला। पिछली शताब्दी के मध्य मे सूरज की गर्मी में तपते कैलिफोर्निया में स्वर्ण के खोजियों ने भी इसी तरह के गंदे काम किए। कुछ साल बाद आस्ट्रेलिया के रेगिस्तान इलाकों में भी ऐसी घटनाएं घटीं। उन्नीसवीं शताब्दी के आठवें दशक में भी ऐसा ही कुछ हुआ जब पैसा कमाने के शौकियों की आखें 'ट्रांसवाल' शब्द सुनते ही चमकने लगती थी। इसके 10 साल वाद भी ऐसी ही दुखभरी घटनाएं घटीं जब 'गोल्डन फीवर' की बीमारी बर्फीली इलाके क्लोण्डाइक तथा सुनसान ठंडे इलाके अलास्का में फैल गई थी। रूस के जार ने यह इलाका कुछ समय पहले ही अमरीका को बहुत सस्ते दामों पर बेच दिया था।

उत्तरी ध्रुव के बर्फीली इलाकों मे रास्ते बनाकर आगे बढ़ रहे 'काले सांपों' की तस्वीरें आज भी सुरक्षित हैं। असंख्य लोगों की कतारें दर्रे पर चढ़ रही हैं। जिनके कंधों पर या स्लेज में उनकी सारी संपत्ति रखी है। इन सबको पूरी-पूरी आशा है कि लौटते समय उनके थैले स्वर्ण से भरे होंगे। दुर्भाग्यवश अधिकांश लोगों का यह सपना कभी पूरा नहीं हुआ।

पिछली शताब्दी मे लेना नदी के तट पर साइबेरिया में भी स्वर्ण के निक्षेप मिले। परंतु रूसी स्वर्ण का इतिहास इससे काफी पुराना है।

रूस मे पहली बार स्वर्ण के सिक्के सोलहवीं शताब्दी के आरंभ में दिखाई दिए—ग्रीवेनीक (10 कोपेक) तथा प्याताक (5 कोपेक)। इन सिक्कों को वासीली शुइस्की ने चलवाया था।

सम्राज्ञी एलिजावेथ (पीटर प्रथम की पुत्री) के जमाने में स्वर्ण का एक बड़ा सिक्का चला जिसकी कीमत 10 रूबल थी। रूस की सम्राज्ञी के पद के सम्मान मे इस सिक्के का नाम इंपीरियल रखा गया। लगता है कि रूस की इस सम्राज्ञी को स्वर्ण का काफी शौक था क्योंकि उसकी मृत्यु के बाद उसके महल में स्वर्ण के सिक्कों से भरे छोटे और बड़े बहुत सारे संदूक मिले।

अभिजात वर्ग जार के खानदान से पीछे नहीं रहना चाहता था। 1711 मे प्रिंस गागारिन ने अपनी अमीरी की शान मारने के लिए एक बग्घी बनवाई जिसमें विदेशी रेशम के पर्दे तथा गद्दियां लगवाई, पहिये रजत से तथा घोड़ों की नालें शुद्ध स्वर्ण से बनवाई। प्रिंस यह दिखाना चाहता था कि वह भी कुछ कम नहीं है।

रूस मे स्वर्ण की निकासी 18वी शताब्दी के मध्य में शुरू हुई। 1745 मे एक किसान ने एक मठ की जरूरतो के लिए पहाड़ी क्रिस्टलो की तलाश करते हुए यूराल की बेरेजोव्का नदी के तट पर पहले स्वर्ण निक्षेप का पता लगाया। यूराल रूसी स्वर्ण-उद्योग का विकास-स्थान बना।

यूराल मे ही रूस का सबसे बडा स्वर्ण डला मिला जिसका वजन 36 किलोग्राम था। इसे ढूढ़ने का श्रेय एक मजदूर निकीफोर स्यूत्किन को जाता है जो मिआस के एक कारखाने मे काम करता था। 1842 में उसे यह डला मिआस नदी की घाटी मे मिला। शीघ्र ही यह कीमती चीज पीटर्सबर्ग पहुचा दी गई, जहा इसने सनसनी मचा दी। यह बात स्वाभाविक थी क्योंकि यह रूस मे स्वर्ण का सबसे बडा डला था। खान के सुपरवाइजर को स्तानिस्लाव पदक से सम्मानित किया गया तथा मैनेजर को साल-भर के वेतन के बराबर बोनस दिया गया। परतु असली खोजी स्यूत्किन को क्या मिला? एक पुरानी पत्रिका मे निम्न खबर पढने को मिलती है : 'स्यूत्किन ने शराब पीनी शुरू कर दी, काम पर देर से आने लगा, आवारा-गर्दी करने लगा। उसकी यह आदते देखकर एक दिन कारखाने के अधिकारियो ने उसे पकडकर लाने को कहा। खान पर ले जाकर अधिकारियो ने उसकी खूब पिटाई करवाई।'

जार के वक्त रूस मे सोने की खानों में काम की परिस्थितियां बहुत ही कठिन थीं। गर्मियों मे मजदूरों को कई बार 16-16 घंटे काम करना पडता था। सुबह से लेकर शाम तक मच्छरो से परेशान मजदूर टनों रेत कुदाली से कुरेदते थे और पानी से सोने की सफाई करते थे। काम करते-करते उन बेचारों की कमर टूट जाती थी। इसी वजह से वहा हड़तालें खूब होती थीं। सबसे मशहूर हडताल 1912 मे लेना स्वर्ण खानों में हुई जो रूसी क्रांति के आंदोलन के साथ संबधित थी।

अक्टूबर क्रांति के बाद स्वर्ण की खानों में नई तकनीकें अपनायी जाने लगीं, मजदूरों की सुख-सुविधा का ध्यान रखा जाने लगा। स्वर्ण की धुलाई करने उद्योग की जगह उद्योग की एक आधुनिकतम शाखा बना दी गई। स्वर्ण खोदने की कुदाली आज केवल संग्रहालय में देखी जा सकती है। इसकी जगह आधुनिक मशीनों ने ले ली है जो चारमंजिला इमारत के बराबर ऊंची होती हैं तथा जिन पर आधुनिक स्वचालित उपकरण लगे होते हैं, टेलीविजन कैमरे फिट होते हैं तथा दूरवर्ती नियंत्रण की सुविधा होती है। अर्थशास्त्रियों के हिसाब से ऐसी एक मशीन जिसे गिने-चुने आदमी चलाते हैं, 12 हजार मजदूरों का कठिन काम अकेली ही कर देती है।

विभिन्न प्रोसेसों के बाद स्वर्ण के छोटे-छोटे कण एक छोटी-सी सिल्ली में परिवर्तित कर लिये जाते हैं। परंतु यह धातु अक्सर प्राकृतिक डलों के रूप में मिलती है। ऊपर हमने एक ऐसे डले का वर्णन किया है जो रूस में स्वर्ण का सबसे बड़ा प्राकृतिक डला था। विश्व में स्वर्ण के सबसे बड़े डले पिछली शताब्दी में आस्ट्रेलिया में मिले। 1869 में वहां स्वर्ण का एक डला मिला जिसका वजन 71 किलोग्राम था। तीन साल बाद ऐसा एक और डला मिला जिसका नाम 'होल्टर मैन का स्लैब' रखा गया। इसका वजन 285 किलोग्राम था और इसमें अन्य धातुओं के अलावा 10 किलोग्राम स्वर्ण था। दुर्भाग्यवश प्रकृति के दिए इन अद्वितीय उपहारों की कद्र नहीं की गई। दोनों डलों को पिघलाकर स्वर्ण की सिल्लियों में बदल दिया गया।

कभी-कभी स्वर्ण अप्रत्याशित जगहों में भी मिलता है। थाइलैंड की राजधानी बैंकाक के पास बुद्ध की एक विशाल प्रतिमा खड़ी थी। पता नहीं इसे कब और कौन यहां लाया था। इस जगह पर जंगली लकड़ी काटने की एक बहुत बड़ी फैक्टरी लगाने का फैसला किया गया। आवश्यक था कि प्रतिमा को उठाकर दूसरी जगह पर रख दिया जाए। जब इस प्रतिमा को नींव से अलग किया गया तो सारी सावधानियों के बावजूद पत्थर की यह प्रतिमा चटक गई तथा इसके अंदर कोई चीज चमकती दिखाई दी। फैक्टरी के अधिकारियों ने इसका आवरण उतरवा दिया। उन्हें उसके अंदर शुद्ध स्वर्ण की बनी बुद्ध की एक प्रतिमा मिली जिसका वजन 5.5 टन था। विशेषज्ञों के कथनानुसार यह प्रतिमा 700 से भी ज्यादा साल पुरानी है। लगता है कि आपसी झगड़ों के वक्त स्वर्ण बुद्ध के स्वामियों ने सुरक्षा के लिए इसे पत्थर के आवरण से ढक दिया और इस 'सूट' को उतारने का उन्हें शायद मौका नहीं मिला। आज यह प्रतिमा बैंकाक के विख्यात स्वर्ण मंदिर की शोभा बनी हुई है।

मानव-जाति के सारे इतिहास मे जितना स्वर्ण मिला है उसकी मात्रा 1 लाख टन से ज्यादा नही है। क्या यह काफी है? जी नही। अपने उत्तर के समर्थन म हम निम्न उदाहरण देना चाहेंगे अगर स्वर्ण की इस सारी मात्रा से एक घन बनाया जाए, तो उसकी ऊंचाई सिर्फ 17 मीटर होगी। भूविज्ञानियो के मतानुसार भूपर्पटी मे स्वर्ण की मात्रा लगभग 100 अरब (!) टन है। इसके अलावा इस धातु की असख्य मात्रा हमारे ग्रह के महासागरों तथा सागरो के जल में घुली हुई है। महासागरो के ये स्वर्ण 'खजाने' हर वक्त बढते रहते है। जिन इलाको मे स्वर्ण होता है, वहा बहती नदिया इस कीमती धातु को अपने जल के साथ समुद्र तक पहुंचा देती हैं।

समुद्री जल से स्वर्ण प्राप्त करने के असंख्य प्रयास किए जा चुके है। ऐसे लोगों की सूची के आरभ मे एक जर्मन रसायनज्ञ फ्रीट्स हैबर का नाम दिखाई देता है जिसने प्रथम विश्व युद्ध के तुरंत बाद जर्मनी को चदा देने की योजना बनाई थी। 1920 में डानेम में बैंक से ऋण लेकर फ्रैंकफर्ट मापन-विभाग के सहयोग से एक गुप्त समिति बनाई गई जिसे समुद्र जल से स्वर्ण निकालने का काम सौपा गया। 8 साल की लंबी मेहनत के साथ हैबर ने जल के अति बारीक विश्लेषण के द्वारा यह स्थापित किया कि एक लीटर समुद्री जल में 0.000 000 0001 ग्राम स्वर्ण उपस्थित है। उसने ऐसी विधि की योजना प्रस्तुत की जिसके आधार पर जल मे स्वर्ण की मात्रा 10 गुना बढ़ाई जा सकती थी। ऐसा लगता था कि वह अपने उद्देश्य मे सफल हो गया था परतु (महत्त्वपूर्ण कामो की अतिम अवस्था मे अक्सर यह 'परतु' सामने आकर खडा हो जाता है) सावधानी से किए गए दूसरे विश्लेषणों से यह पता चला कि समुद्री जल में स्वर्ण की वास्तविक मात्रा हैबर की बनाई मात्रा से हजार गुना कम है। बस फिर क्या था? सारी योजना ठप्प हो गई।

तकनीक के आधुनिक स्तर पर यह समस्या अब दुर्लभ नहीं समझी जाती है। विदेशों की कई फर्मे इस दिशा में काफी प्रयास कर रही हैं। संभव है कि आने वाले दिनों में समुद्र स्वर्ण की अपार खान बन जाए।

फ्रांस तथा सोवियत सघ के वैज्ञानिक एक और दिशा में कार्य कर रहे हैं जिससे काफी आशा की जा रही है · यहां हमारा अभिप्राय जीवधात्विकी प्रक्रियाओ से है। हाल में विज्ञान को ऐसे जीवाणुओं का पता चला है जो स्वर्ण 'चाट जाते हैं।' फफूदियों की कुछ किस्में विलयनों से स्वर्ण चूसने की क्षमता रखती हैं। यह स्वर्ण एक पतली झिल्ली के रूप में उनके ऊपर जमा हो जाता है। स्वर्ण प्राप्त करने के लिए इस झिल्ली को सुखाकर इसे तापते हैं। यह बात

जरूर है कि इस विधि से प्राप्त स्वर्ण की मात्रा बहुत ही कम होती है। फिलहाल यह विधि प्रयोगशाला तक सीमित है परन्तु वैज्ञानिकों का विश्वास है कि विभिन्न सजीव प्राणियों की जैवरासायनिक प्रक्रियाओं की सहायता से पहाड़ी चट्टानों में स्वर्ण प्राप्त करना संभव है।

हमारे जमाने में स्वर्ण...अन्य धातुओं से भी प्राप्त किया जा सकता है। पाठक कहेंगे 'तो क्या इसका मतलब यह हुआ कि कीमियागरों की सदियों पुरानी अभिलाषा पूरी हो गई है? क्या 'पारस' मिल गया है?' जी नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है। यह काम पारस की जगह नाभिकीय भौतिकी कर रही है। वैज्ञानिक लोग नाभिकीय रिएक्टरों में इरीडियम, प्लेटिनम, पारद तथा टैलियम पर न्यूट्रानों से बमबारी करके स्वर्ण के विघटनाभिक समस्थानिक प्राप्त करते है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए रैखिक या वृत्ताकार त्वरक भी इस्तेमाल किए जा सकते हैं। इन विद्युत तथा चुंबकीय क्षेत्रों की सहायता से आवेशित कण त्वरि

आपको यह बात एक चुटकुला-सा लगेगी कि ब्रिटे भौतिकविदों ने इंग्लैंड के बादशाह हेनरी IV के आदेश का किया है। इस बादशाह ने निम्न आदेश जारी किया था : 'साध स्वर्ण में बदलने पर राजकीय पाबंदी लगाई जाती है। जो कोइ पालन नहीं करेगा, उसे कड़ी सजा दी जाएगी।' तब से कई शत भी इस आदेश का उल्लंघन नहीं कर सका हालांकि इस बात वालों की कमी नहीं थी। लेकिन बीसवीं शताब्दी के वैज्ञानिकों किया है।

हां, तो ऊपर हमने पाठकों को स्वर्ण के इतिहास तथा इसकी प्राप्ति की विधियों से परिचय कराया है। अब हम यह बताना चाहेंगे कि यह धातु है क्या चीज और आज इसके उपयोग क्या हैं?

स्वर्ण की गिनती सबसे भारी धातुओं में की जाती है। इसी गुण के आधार पर आर्किमीडिस सिरैक्यूज के बादशाह हिरोन के सुनारों की बेईमानी का भंडाफोड़ कर सका। बादशाह ने इन सुनारों से स्वर्ण का एक मुकुट बनवाया। उसने यह मुकुट आर्किमीडिस को दिखाया और यह बताने को कहा कि मुकुट शुद्ध स्वर्ण का बना है या उसमें स्वर्ण के अलावा कोई और धातु भी मिलाई गई। आज के जमाने में स्कूल का एक बच्चा भी इस समस्या को हल कर सकता है। परंतु ईसा से तीन शताब्दी पूर्व उन पुराने जमाने में आर्किमीडिस जैसे महान् वैज्ञानिक को इस समस्या का समाधान ढूंढने में काफी सिरखपी करनी पड़ी। वैज्ञानिक ने मुकुट को तोल लिया और फिर पानी से भरी एक बाल्टी में डुबोकर विस्थापित जल का आयतन ज्ञात कर लिया। मुकुट के भार को इस आयतन से भाग देने पर उसे 19.3 (यह स्वर्ण का आपेक्षित घनत्व है) की जगह इससे छोटी संख्या प्राप्त हुई। वैज्ञानिक समझ गया कि सुनारों ने कुछ स्वर्ण अपने पास रख लिया है और उसकी जगह मुकुट में हल्की धातु मिला दी है।

शुद्ध स्वर्ण बहुत नर्म तथा तन्य होता है। माचिस की तीली के सिरे के बराबर स्वर्ण के एक छोटे-से टुकड़े से कई किलोमीटर लंबी तार खींची जा सकती है या 50 वर्ग मीटर क्षेत्रफल की आसमानी हरे रंग की एक पारदर्शक पत्ती बनाई जा सकती है।

नाखून से खरोंचने पर शुद्ध स्वर्ण पर निशान बन जाता है। इसी कारण आभूषणों में प्रयुक्त होने वाले शुद्ध स्वर्ण में ताम्र, रजत, निकिल, कैडमियम, पैलेडियम तथा अन्य धातुएं मिलाई जाती हैं जो इसकी मजबूती बढ़ा देती हैं।

पिछली शताब्दी के अंत में संयुक्त राज्य अमरीका में एक मजेदार घटना घटी। फिलाडेलफिया की टकसाल से कुछ दूर एक बहुत पुराना चर्च खड़ा था। एक बार जब इसकी मरम्मत करवाई जा रही थी, शहर के एक निवासी ने उस चर्च की बेकार छत खरीदने की इच्छा प्रकट की और वह भी काफी ऊंची कीमत पर। लोग समझे कि उसका दिमाग खराब हो गया है परंतु उन्होंने सोचा कि अगर वह खुद ही पैसे दे रहा है तो छोड़े क्यों जाएं? सौदा तय हो गया। परंतु कुछ अर्से बाद चर्च के लोगों को पता चल गया कि वे बेवकूफ बन गए हैं। चालाक ग्राहक ने छत को छीलकर इकट्ठी हुई छीलन को जला दिया—राख से उसे 8 किलोग्राम स्वर्ण मिला जिसकी कीमत उसके द्वारा की गई अदायगी से कई गुना

अधिक थी। छानबीन करने पर पता चला कि कइ सालो स ट
स्वर्ण की धूल पाइपो के रास्ते बाहर निकलकर आसपास की
थी और उससे ज्यादा मात्रा चर्च की छत पर इकट्ठी हो गई
यूरोप के एक बैंक का खजाची भी बहुत चालाक निकल
विश्व युद्ध के आरभ होने से कुछ पहले की है जब अधिकांश
मुद्रा का प्रचलन था। इस बैंक मे रोजाना हजारो सिक्के आते
करके इनकी छंटाई की जाती थी और फिर थैलो मे सील क
अक्सर यह काम लकडी की कुछ खास मेजो पर किया जाता था। एक बार एक खजाची ने काम शुरू करने से पहले मेज पर घर से लाया कपड़ा बिछा दिया और फिर उसके ऊपर सिक्के रखकर काम शुरू कर दिया। खजांची की कुशलता से बैंक के अधिकारी बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने दूसरे कर्मचारियों के सामने उस खजांची की तारीफ करनी शुरू कर दी। रोज सुबह वह अपनी मेज की दराज से कपड़ा निकालकर मेज पर बिछा देता और शाम को घर जाते वक्त बड़ी सावधानी से तह करके उसे मेज की दराज में बद कर देता। शनिवार को वह उसे घर ले जाता और सोमवार को नया कप
क्रम बहुत दिनों तक चलता रहा परंतु एक दिन घर की नौकरानी
का भंडाफोड़ कर दिया। पता चला कि शनिवार को वह कप
रखकर उसमें आग लगा देता था। सप्ताह भर स्वर्ण के सिक्कें
स्वर्ण के काफी कण जमा हो जाते थे जो आंच से पिघलकर
डले में परिवर्तित हो जाते थे।

स्वर्ण का एक अतिमहत्त्वपूर्ण गुण इसका अद्वितीय रासाय
इस पर न तो अम्लों का कोई असर होता है और न ही क्षारों का
(नाइट्रिक अम्ल तथा हाइड्रोक्लोरिक अम्ल का मिश्रण) एक ऐस
स्वर्ण को विलयित करने की क्षमता होती है। डेनमार्क के वि

नोबेल पुरस्कार विजेता नील्स बोहर ने एक बार इस बात का फायदा उठाया। यह 1943 की घटना है। जर्मन सेना ने डेनमार्क पर कब्जा कर रखा था। अपनी जान बचाने के लिए बोहर को कोपेनहैगन छोड़ना पड़ा। उनके पास अपने दो साथियों--नोबेल पुरस्कार विजेताओ--जर्मन भौतिकविद्, फासिस्ट विरोधी-जेम्स क्रेक तथा माक्स फोन लाउए के स्वर्ण पदक पड़े हुए थे (उनका खुद का पदक पहले ही डेनमार्क से बाहर पहुंचा दिया गया था)। वैज्ञानिक को डर था कि तलाशी होने पर ये पदक निश्चय ही जर्मनो के हाथ लग जाएगे। उन्होंने इन्हें अम्लराज मे घोलकर एक साधारण बोतल में भरकर अलमारी में रख दिया जहा ऐसी कई बोतले तथा शीशियां रखी हुई थीं। युद्ध के बाद जब वे अपनी प्रयोगशाला लौटे, तो उन्हे अपनी कीमती बोतल उसी जगह रखी मिली। बोहर के अनुरोध पर इस विलयन से स्वर्ण निकालकर फिर से दोनो पदक तैयार कर दिए।

स्वर्ण को अक्सर 'धातुओ का राजा' कहा जाता है, इसकी तारीफ की जाती है, बहुत मान दिया जाता है। इतना सब कुछ होते हुए भी इसकी किम्मत बडी खराब है। इसे हमेशा कैद मे रखा जाता है। जैसे ही पृथ्वी से निकला स्वर्ण मनुष्य के हाथ लगता है वह इसे फिर से कैदखाने मे डाल देता है--बड़ी-बड़ी मजबूत सेफो में, दुर्गम तहखानों मे, सीमेट की मजबूत दीवारो में बंद कर देता है। ऐसी एक जगह फोर्ट नाक्स है जहा कांटेदार तारो की बाडों के अंदर स्थित इमारत मे संयुक्त राज्य अमरीका का मुख्य स्वर्ण भडार है। इन तारों में 5000 वोल्ट बिजली बहती रहती है। फोर्ट के प्रवेश द्वारों की निगरानी के लिए बीसियों वाच-टावर हैं जो आधुनिक इलेक्ट्रानिक उपकरणों से सुसज्जित हैं। इन टावरो पर लगी मशीनगनें तथा शक्तिशाली तोपे खुद निशाना बांध सकती है। यह फोर्ट कई सेक्टरों में बंटा है जिन्हें किसी भी क्षण पानी में डूबोया जा सकता है। सारा फोर्ट कुछ मिनटों में जहरीली गैस से भरा जा सकता है जो वहां स्थित हर जीवित प्राणी को नष्ट कर सकती है। फोर्ट के बिल्कुल केंद्र मे लोहे तथा सीमेट के बने एक ब्लॉक में अमरीका का स्वर्ण रखा हुआ है। इस ब्लॉक में लगे दरवाजे 20 टन भारी हैं जिन पर विशेष किस्म के ताले लगे हुए है। इलेक्ट्रानिक 'आखे' एक क्षण के लिए भी पलकें नहीं बंद करतीं। इतनी अधिक सुरक्षा दुनिया के किसी भी दूसरे कैदखाने में नहीं बरती जाती।

स्वर्ण का एक छोटा-सा हिस्सा हमारे दिनों मे आभूषणो तथा दांतों के निर्माण मे व्यय हो रहा है। आपको शायद मालूम नहीं कि दांतों में स्वर्ण का प्रयोग बहुत प्राचीन काल से हो रहा है। हमारी शताब्दी के पाचवें दशक के आरंभ में मिश्री फिराउन खैफ्रेन के पिरामिड में वैज्ञानिकों को एक ममी मिली जिसके तीन दातों

मे स्वर्ण की तारे लगी हुई थीं। दतचिकित्सकों के इस करिश्मे की आयु 4500 साल बताई जाती हे। प्राचीन काल मे शल्यचिकित्सा मे भी स्वर्ण का उपयोग प्रचलित था। दक्षिणी अमरीका में पुरातत्त्वज्ञो को इकाओ के एक सरदार की खोपड़ी मिली जिसने बड़े-बडे डॉक्टरो को चक्कर मे डाल दिया। इस खोपड़ी के मालिक का इसके जीवनकाल मे ऑपरेशन किया गया था क्योंकि खोपडी पर कपाल-छेदन के निशान दिखाई दे रहे थे। आश्चर्य की बात यह थी कि हड्डियो के सूराख बड़ी कुशलता के साथ स्वर्ण किए गए थे।

पिछले दिनों तक तकनीकी कार्यो में स्वर्ण का उपयोग दर्न प्रयोग से कुछ ही अधिक था। परतु अब ओद्योगिक जगत् स्व दिखा रहा है। ट्रांजिस्टरों तथा डायडों के निर्माण में इस पीली दिन-प्रतिदिन बढता जा रहा है। इस धातु के प्लेटिनम ऐलॉयो प्राप्त किए जाते है जिनकी मजबूती तथा रासायनिक प्रतिरोध अ

निर्वात तकनीक में तकनीकी रूप से शुद्ध स्वर्ण इस्तेमाल जो उच्च विरलन के दौरान पास रखे ताम्र के साथ चिपक जात धातु के अणु दूसरी धातु के अंदर घुसने की क्षमता रखते है। है कि दोनों धातुओ के बीच पारस्परिक विसरण जिन तापमानो इन धातुओं या इनके ऐलॉयो के गलनांको से काफी निम्न होते हैं। के फलस्वरूप प्राप्त यौगिकों को 'स्वर्ण की सीलें' कहते हैं।

स्वर्ण से आवेशित कणों के त्वरित्रों के पैकिंग छल्ले तथा है। त्वरित्रो के चैम्बरों तथा ट्यूबों की वैल्डिंग मे भी यह धातु इस है। स्वर्ण हवा के घुसने के सारे रास्ते अच्छी तरह से बंद कर फलस्वरूप यूनिट के अंदर अत्यधिक उच्च निर्वात उत्पन्न हो जाता दाब से करोड गुना कम। चैम्बर के अदर विरलन जितना उच्च
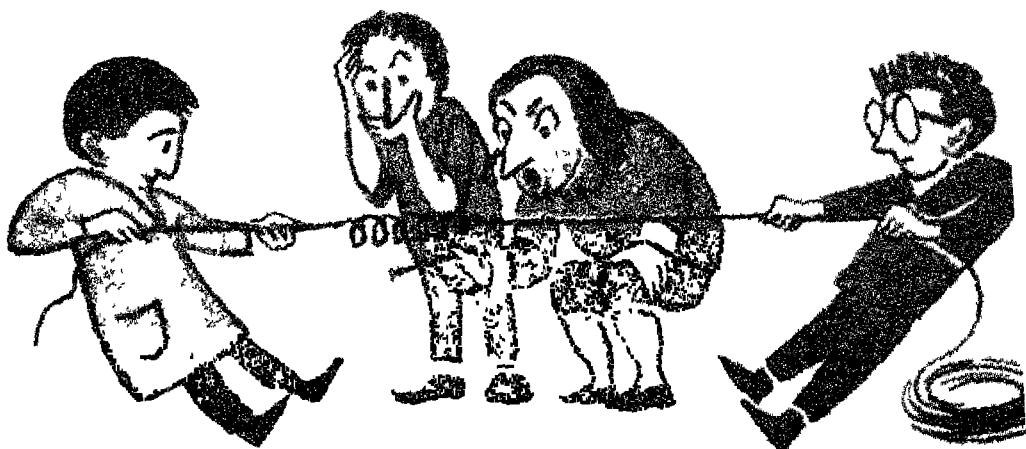
सूक्ष्म कणों की जिंदगी उतनी ही बढती जाती है।

हमारी शताब्दी के पांचवें दशक के मध्य मे अटलांटिक महासागर मे टेलीफोन केबल बिछाते समय इंजीनियरों को स्वर्ण का इस्तेमाल करना पडा। अगर अमरीका और यूरोप के बीच टेलीग्रामों का आदान-प्रदान 100 से भी ज्यादा सालो से चल रहा था तो दोनों महाद्वीपों के बीच टेलीफोन संबंध उन दिनों तक असंभव बात समझी जाती थी। इसका मुख्य कारण यह था कि टेलीफोन केबलों में प्रवाहित विद्युत धारा की शक्ति बडी तेजी से कम होने लगती थी। इस समस्या का समाधान केबल पर थोडी-थोड़ी दूरी पर लगे त्वरित्र कर सकते थे जो विद्युत धारा की शक्ति एकसमान रख सकते थे। इन उपकरणों को समुद्री जल की विनाशकारी प्रक्रिया से सुरक्षित रखने के लिए इनके कुछ पुर्जो पर स्वर्ण लेप दिया गया। इस प्रकार स्वर्ण ने एक अति जटिल तकनीकी समस्या हल कर दी और 1956 मे इतिहास मे पहली बार यूरोप और अमरीका के बीच टेलीफोन पर बातचीत हुई।

इस बात में कोई शक नही कि स्वर्ण अंतरिक्ष अनुसंधान कार्यो में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाएगा। अंतरिक्ष के अध्ययन के उद्देश्य से इंग्लैंड ने जो दो कृत्रिम उपग्रह 'प्रोसपेरो' और 'एरियल' छोड़े थे उन पर स्वर्ण का बारीक लेप चढ़ा हुआ था। धातुओं का राजा उपग्रहो के आवरण का तापनियमन प्रभावशाली बना देता है, उसे जंग नही लगने देता, आयनों तथा अन्य आवेशित कणों को एक जगह इकट्ठा नहीं होने देता जिसकी वजह से आकस्मिक संकट के पैदा होने का सवाल ही नही उठता। अमरीका अंतरिक्ष यान 'कोलंबस' के निर्माण मे लगभग 41 किलोग्राम स्वर्ण लग गया था।

आद्योगिक कायो मे स्वर्ण की हर साल ब
असम्भव है कि एक दिन इस क़ीमती धातु को स्टील की सफ
जाए और यह फेक्टरियो तथा प्रयोगशालाओं मे आ जाए जहां इ
मिलने लगे।

रजत जल

हर चीज पर नियम लागू नहीं होता–जार भीषण इवान को भीषण का उपनाम क्यों दिया गया?–इंग्लैंड के बादशाह का शौक–जहाज 'विजय' पर दुखद घटना घटती है–कानूनन मना है–यश लौट आता है–रोम पारद खरीदता है–चेंगेज खान की चालाकी–एकिमेनिड खानदान के बादशाहों के महल में मिला शिलालेख–नया शौक–बादशाह लोग प्रयोगशालाएं बनवाते हैं–मध्ययुग के ठगों की चालाकियां–फांसी दे दी जाती थी या जिंदा जला दिया जाता था–भूमिगत प्रयोग–रंगे हाथों पकड़ा गया–बुध देवता चालाक है–मोंटफेरन का बनाया कैथेड्रल–वक्त से पहले ही खुश होना शुरू कर दिया–हरी लिपस्टिक–परम शून्य के पास क्या प्रतिक्रिया होती है?–ड्यूक फेरदिनान्द II जल की जगह ऐल्कोहल इस्तेमाल करने की सिफारिश करता है–कठिन परीक्षाएं–जीवन के मार्ग पर

200 से भी ज्यादा साल पहले प्रसिद्ध रूसी वैज्ञानिक मिखाइल लोमोनोसोव ने 'धातु' की एक स्पष्ट परिभाषा दी। उन्होंने लिखा : 'धातुएं कठोर, तन्य तथा चमकीली होती हैं।' उनकी बात ठीक भी थी। लोहा, ऐलुमिनियम, ताम्र, स्वर्ण, रजत, लेड, टिन तथा अन्य कई धातुएं, जिनसे हमारा वास्ता पड़ता है, ये सारे गुण रखती हैं। परंतु कहावत है कि हर नियम में कुछ-न-कुछ अपवाद जरूर होते है। प्रकृति मे लगभग 80 धातुएं है जिनमें से केवल एक ऐसी है जो साधारण परिस्थितियो मे द्रव अवस्था में रहती है। आप समझ ही गए होंगे कि हमारा अभिप्राय पारद से है।

पारद तथा इसके प्रतिविन्यासी टंग्स्टन के उदाहरण से इस बात की पुष्टि हो जाती है कि धातुओं के गुणों का परास बहुत बड़ा है। अगर टंग्स्टन 3410°C

पर प्रगलित होता है (तुलना के लिए हम यह बताना चाहे आग का ताप 2000°C से ऊपर नहीं पहुचता) तो पारद हिम अवस्था नहीं छोडता। केवल –38.9°C पर यह गाम... हालांकि टंग्स्टन तथा पारद धातुओं के एक ही परिवार में ... गुणों के आधार पर हम इन्हें केवल दूर के रिश्तेदार कह...

1759 में पहली बार पारद ठोस अवस्था तक प्रशीतित किया गया। ठोस अवस्था में इसका रंग रजत-नीला होता है तथा तब यह लेड से काफी मिलता- जुलता है। अगर ठोस पारद को हथौड़े के आकार वाले एक साचे में डालकर तीव्रता से ठोस अवस्था के ताप तक प्रशीतित किया जाए, उदाहरणतया, द्रवित वायु से, तो इस हथौड़े से लकड़ी मे कील ठोकी जा सकती है। परतु यह काम बड़ी तेजी से करना ... की आयु ज्यादा नही होती, वह इस्तेमाल करने वाले के ह... है।

पारद सभी ज्ञात द्रवों मे सबसे अधिक भारी है। इसका ... प्रति घन सेटीमीटर है। इसका मतलब यह हुआ कि 1 ली... पानी की बाल्टी के वजन से अधिक होता है। अगर वजन... मुगदर को फर्श पर न रखकर पारद से भरी होज में रख... मुगदर डूबने की जगह तैरने लगेगा जैसे एक कार्क पानी मे तै... कारण यह है कि स्टील पारद से काफी हल्का होता है।

मनुष्य प्रागैतिहासिक काल से पारद से परिचित है। ... प्लीनी ज्येष्ठ, विटरूवियस तथा कई अन्य प्राचीन वैज्ञानिकों... धातु की चर्चा मिलती है। लातीनी भाषा में इसका नाम 'हा... अर्थ है–'रजत जल'। इसका यह नाम हमारे युग की प्रथम श... डॉक्टर डिओस्कोरिडस ने रखा। यह कोई आश्चर्य की बात ... मे एक डॉक्टर का पारद के साथ वास्ता पडा। पारद के चिकि... जमाने से ज्ञात हैं। परतु कभी-कभी उपचार कार्यों मे पारद का ... सा था। उदाहरणतया, एक पुस्तक में यह पढ़ने को मिलता है

मरीज को 200-250 ग्राम पारद खिला दिया जाता था। पुराने जमाने के चिकित्सको के अनुसार भारी तथा गतिशील होने के कारण पारद टेढी आतो में घुसकर अपने भार से उन्हे सीधा कर देता है। आप खुद ही अदाजा लगा सकते है कि ऐसे प्रयागो के क्या नतीजे होते होगे।

हमारे जमाने मे उक्त रोग का इलाज दूसरे तरीको से किया जाता है जो ज्यादा विश्वसनीय है। परंतु चिकित्सा कार्यों में पारद के विभिन्न यौगिकों का आज भी प्रचलन है - जैसे, मरक्यूरिक क्लोराइड विसक्रामक गुण रखता है, कैलोमेल मृदु विरेचक का कार्य करता है, मरकूसल मूत्रल के रूप में प्रयोग होता है, पारद की कई मलहमे त्वचा-रोगों तथा अन्य बीमारियों के इलाज मे इस्तेमाल की जाती हैं।

परन्तु पारद फायदे के साथ-साथ नुकसान भी कर सकता है। इस तत्त्व के बहुत सारे यौगिक तथा वाष्पें अक्सर बहुत जहरीली सिद्ध होती हैं या धीरे-धीरे मनुष्य का स्वास्थ्य तथा मनोवृत्ति नष्ट करती जाती है। डॉक्टरो ने सिद्ध किया है कि पारद का जहर अक्सर मनुष्य को क्रोधी स्वभाव का बना देता है। इस धारणा के आधार पर इतिहासकारो ने जार इवान भीषण की भीषणता का कारण पारद बताया। उनके कथनानुसार जोडों के दर्द से परेशान रहने के कारण जार काफी लंबे अर्से तक पारद की मलहमो की मालिश करवाता रहा। ये मलहमे ही तो उसके क्रोधी स्वभाव का कारण बन गईं। गुस्से के एक ऐसे दौर मे जार ने अपने पुत्र को ही मार दिया। पारद के जहर के लक्षण जार की अन्य आदतो मे भी दिखाई देते थे - हर वक्त दृष्टिभ्रम, घबराहट तथा खतरे की आशंका। जार की मृत्यु के बाद उसके अवशेषो के अध्ययन ने इस धारणा की पुष्टि कर दी जार की हड्डियो में पारद की मात्रा बहुत ज्यादा थी।

यूरोप के कई अन्य सम्राटो के जीवन मे भी पारद ने खतरनाक भूमिका निभाई। सोलहवीं शताब्दी मे एरिख XIV स्वीडन का बादशाह था। उसका भाई योहन III किसी भी कीमत पर गद्दी का मालिक बनना चाहता था। 1568 मे उसने एरिख XIV से गद्दी छीन ली। हमारे दिनो तक सुरक्षित कुछ ऐतिहासिक दस्तावेजो में कुछ ऐसा इशारा मिलता है कि एरिख XIV को जहर दिया गया था। स्वीडन के वैज्ञानिकों ने इस बात की सत्यता जानने का फैसला किया। परन्तु 400 से भी ज्यादा साल पुरानी घटना की जांच कैसे की जाए? नाभिकीय भौतिकी ने इस काम में सहायता की, आधुनिकतम विश्लेषण विधियो ने असंभव काम संभव कर दिया। बादशाह का अस्थिपिंजर सुरक्षित रखा ही हुआ था। वैज्ञानिको ने इसके बालों का बड़ी बारीकी से अध्ययन किया। वास्तव में बादशाह के बालो

मे पारद की मात्रा सामान्य से बहुत अधिक थी। इस प्रकार एरिक XIV का जहर से मरने की बात वैज्ञानिक रूप मे सत्य सिद्ध हो गई।

जिन इतिहासकारो ने सतरहवी शताब्दी के पुरालेखो का अध्ययन किया है, उनके कथनानुसार इंग्लैंड के बादशाह चार्ल्स II की मृत्यु भी पारद के जहर से हुई थी। यह बात जरूर थी कि इस बार बादशाह खुद अपनी मौत का जिम्मेदार था। बादशाह को कीमियागरी का बहुत शौक था। उसने अपने महल के अदर ही एक प्रयोगशाला खुलवा दी। जब भी उसे समय मिलता वह प्रयोगशाला म आ जाता और पारद के साथ तरह-तरह के प्रयोग करता। उन दिनो कीमियागर पारद का बहुत शौक रखते थे। बादशाह कभी पारद का भर्जन करता, कभी उसे आसवित करता। वैज्ञानिकों को कुछ ऐसे दस्तावेज मिले हैं जिनमें चार्ल्स के रोग के लक्षण बताए गए हैं—चिड़चिड़ेपन की आदत, शरीर का एंठन तथा चिरकालिक यूरेनिआ। ये सारी खराबियां तब आती है जब मनुष्य दीर्घकाल तक पारद की वाष्पों के सपर्क में रहता है। शाही हकीमों ने अपनी तरफ से पूरी कोशिश की—उन्होंने बादशाह को कुनेन खिलायी, उसके सिर पर गरम प्रेस तक रखकर देखी; उस वक्त की चिकित्सा की सारी उपलब्धिया बरतकर देखीं परतु बादशाह की जान फिर भी नहीं बचाई जा सकी।

1810 में ब्रिटेन के एक जहाज 'विजय' पर कुछ ड्रमों में रखा पारद बिखर गया जिसके परिणामस्वरूप 200 से भी ज्यादा लोग मौत के शिकार हो गए।

यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि सोवियत संघ तथा कई अन्य देशों मे कुछ उत्पादन कार्यों में पारद तथा इसके यौगिकों के प्रयोग पर सख्त प्रतिबंध लगा हुआ है, उदाहरणतया, पारद रंगों के उत्पादन पर। जहां पारद के बिना काम नहीं चल सकता, वहां विभिन्न सुरक्षा उपाय अपनाए जाते हैं जो कारीगरों की इसके दुष्प्रभावों से रक्षा करते हैं।

प्रकृति में पारद विस्तृत नहीं है। कभी-कभी यह प्राकृतिक रूप मे मिलता है—छोटी-छोटी बूंदों के रूप में। पारद का मुख्य खनिज सिनबार है। यह एक अतिसुदर पत्थर होता है। देखने में ऐसा लगता है जैसे कि इसके ऊपर रक्त गिरने से लाल धब्बे पड़ गए हों। सिनबार के बारे में एक मजेदार घटना प्रसिद्ध है। आप जानते ही होंगे कि पिछले कुछ अर्से से भूविज्ञानी खनिजों की खोज के काम में कुत्तों की सहायता ले रहे हैं। एक बार कुछ एलसेशियन कुत्तों का प्रशिक्षण पूरा होने के बाद उनकी परीक्षा ली जा रही थी। खनिजों के बहुत सारे नमूनो मे उन्हें सिनबार भी ढूंढना था। कुत्तों ने बडी जल्दी यह खनिज ढूंढ लिया परंतु इसके बाद भी वे शांत नहीं बैठे। सभी कुत्ते गुलाबी कैल्साइट को भी सिनबार

बताने लगे। शुरू में तो भूविज्ञानी इस बात पर हंसने लगे परन्तु कुछ समय बाद उन्होंने कुत्तों की इस गलती का कारण ढूंढना शुरू किया। जानते है उन्होंने क्या देखा? गुलाबी कल्साइट के भीतर सिनबार मिला। कुत्तों को गलतफहमी नही हुई थी। चार वर्ष बाद इन भूविज्ञानियों का यश लौट आया।

पारद का सबसे विशाल निक्षेप—अल्मेडन स्पेन में है। पिछले दिनों तक विश्व में पारद के कुल उत्पादन का 80% भाग यहां मिलता था। प्लीनी ज्येष्ठ ने अपने लेखों में इस खान की चर्चा की है कि उसके जमाने मे रोम हर साल स्पेन से [illegible] टन पारा खरीदता था।

निकित्नोव्काया निक्षेप की गिनती सोवियत सघ के पुराने पारद निक्षेपो में की जाती है। यह दोनबास में है। यहां विभिन्न गहराइयो पर (20 मीटर तक) पुराने जमाने के कुछ औजार मिले है जिनमे पत्थर के हथौड़े भी शामिल है।

किरगीजिया (मध्य एशिया) की फरगना घाटी मे मिली खेदरकान (बड़ी खान) और भी ज्यादा पुरानी है जहा प्राचीन कार्यों के असख्य चिह्न मिले है—धातुओं की बनी फच्चड़ें, लालटेनें, सिनबार जलाने के लिए मिट्टी के भभके तथा राख के बड़े-बड़े ढेर। पुरातत्त्वीय खुदाई कार्यो से यह पता चला है कि पुराने जमाने में फरगना घाटी में पारद का उत्पादन कई शताब्दियों तक चलता रहा था केवल तेरहवीं तथा चौदहवीं शताब्दियों में यह काम बद हो गया था क्योंकि तब चंगेज खान तथा उसके उत्तराधिकारियो ने दस्तकारी तथा व्यापार के सारे केंद्र नष्ट कर दिए थे जिसके फलस्वरूप यहा के लोग खानाबदोश बन गए थे।

मध्य एशिया में कुछ और
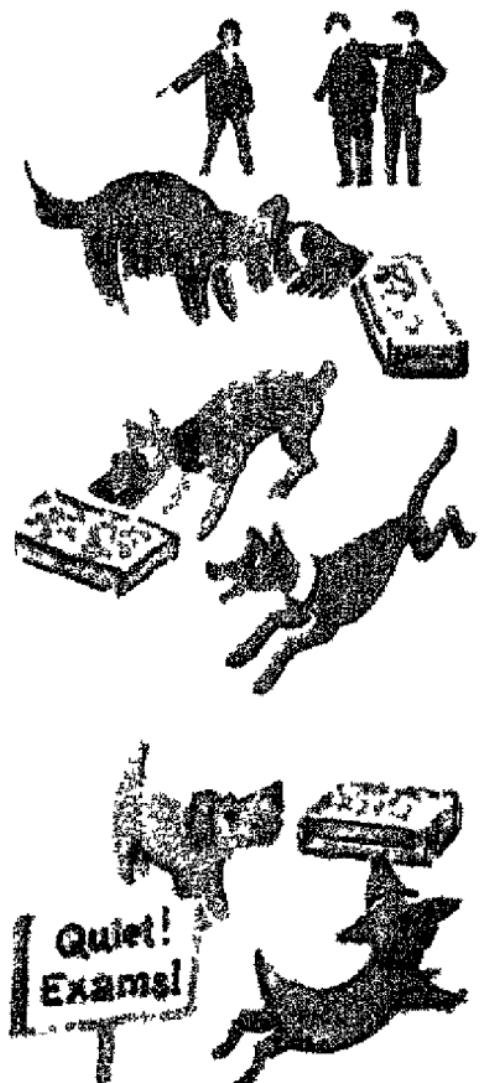
पारद निक्षेप भी थे। जैसे, प्राचीन फारस के एखिमेनिड खानदान (ईसा से VI-IV शताब्दी पूर्व) के बादशाहों के महल में मिले शिलालेख से यह पता चलता है कि उन दिनों सिनबार, जो मुख्यतः रंगसाजी में प्रयोग होता था, जरफशान पहाड़ों से लाया जाता था। ये पहाड़ सोवियत संघ के ताजिकिस्तान तथा उज्बेकिस्तान प्रजातंत्रों में है। लगता है कि यहां ईसा से 5 शताब्दी पूर्व भी पारद के खनन-कूट थे।

पुराने जमाने मे खनन मजदूरों का काम बहुत कठिन तथा हानिकारक था। किपलिंग की पुस्तक में निम्न शब्द पढ़ने को मिलते हैं : 'मेरे खयाल से पारद खानों में काम सबसे बुरी मौत है, जहां मुंह के अंदर दांत टुकड़े-टुकड़े होते रहते हैं।' आज भी पहाडी खानों के अंदर असंख्य कंकाल मिलते हैं, जहां कभी पारद निकाला जाता था। इस लाल पत्थर को पहाड़ों से लाने मे हजारों लोगों को जान से हाथ धोना पड़ा। इसकी लाली देखकर ऐसे लगता है जैसेकि यह उन लोगों के रक्त से रजित हुआ है।

मध्य युग में पारद का उत्पादन बहुत बढ़ गया जब लोगों को कीमियागरी का काफी शौक हो गया था। कीमियागरों की पारद में रुचि का कारण यह था कि उन दिनों पारद, सल्फर तथा नमक मूल तत्त्व समझे जाते थे। पारद को धातुक गुणों की जड बताया जाता था : 'ताप बर्फ को जल में परिवर्तित कर देता है इसका मतलब यह हुआ कि बर्फ जल की बनी होती है। धातुएं पारद में घुल जाती है इसका मतलब यह हुआ कि पारद इन धातुओं का मूल रूप है।'

कीमियागरो के पास यह ठोस सिद्धांत था ही, बस 'पारस' ढूंढना बाकी था जिसकी सहायता से पारद स्वर्ण में बदला जा सकता था। परन्तु लाख कोशिशों के बावजूद पारस नहीं मिल रहा था हालांकि इंग्लैंड का बादशाह हेनरी VI तथा रोमन सम्राट् रूदोल्फ II जैसे प्रभावशाली व्यक्ति इस काम मे दिलचस्पी ले रहे थे। यूरोप के कई अन्य बादशाहो की तरह इन दोनों ने भी अपने महलों में कीमियागर प्रयोगशालाएं खोल रखी थीं।

यह बातें जरूर सच है कि इन अनुसंधान कार्यों में थोड़ी बहुत सफलता जरूर मिली : हेनरी VI के व्यक्तिगत कीमियागर ने यह पता लगाया कि अगर ताम्र पर पारद घिस दिया जाए तो उसका रंग रजत जैसा हो जाता है। बादशाह ने इस खोज का खूब फायदा उठाया : उसने ताम्र के बहुत सारे सिक्कों पर पारद रगड़वाकर उन्हें रजत के सिक्कों की जगह चलवा दिया। इस चालाकी से बादशाह ने काफी पैसे बनाए।

समय-समय पर विभिन्न देशों में कई लोगों ने 'पारस' मिलने का दावा

किया। कभी-कभी ये लोग ईमानदार परंतु भ्रम मे पडे वैज्ञानिक होते थे परतु ज्यादातर ऐसा दावा ठग लोग करते थे। इन लोगो को नकली स्वर्ण बनाने के कई तरीके आते थे। इनमे से एक तरीका निम्न था . कीमियागर क्रूसिबल के अदर पहले से ही स्वर्ण के कुछ टकड़े रख देता था। वह इस क्रूसिबल मे प्रगलित लेड या पारद डालकर लकड़ी से हिलाता था। स्वर्ण का कुछ भाग प्रचलित धातु मे घुल जाता था। स्वाभाविक था कि 'प्रयोग' के बाद क्रूसिबल में स्वर्ण के चिह्न दिखाई देते थे जिनसे लोग कीमियागर की करामात मे विश्वास करने लगते थे। परन्तु जैसे ही इन जादूगरों की खबर शासक तक पहुचती थी तब या तो उन्हे अपनी धोखाधड़ी स्वीकार करनी पडती थी या शासक को बहुत बडी मात्रा मे स्वर्ण बनाकर देना पडता था और तब जादुई लकड़ी उनकी कोई सहायता नही कर पाती थी।

झूठे कीमियागरों को वही सजा दी जाती थी जो जाली सिक्के बनाने वालो को। उन्हे सिनारे रंग कपडे पहनाकर सुनहरे रग के तख्ते पर खडा करके फासी दे दी जाती थी। मौत की सजा देने के कुछ और तरीके भी थे। जैसे, 1575 मे ड्यूक ब्रून्सविकवर्ग ने एक स्त्री कीमियागर मारिया जिग्लेरिन को जिदा जलवा दिया क्योंकि उसने ड्यूक को पारस का रहस्य बताने से इन्कार कर दिया था। हालांकि यह जाहिर था कि मारिया को इस बात की तनिक भी जानकारी नही थी परंतु बेवकूफीपन में उसने यह स्वीकार कर लिया था कि वह पारस बनाना जानती है।

कुछ समय बाद इग्लैंड, फ्रास तथा अन्य देशों में कैथोलिक चर्च ने कीमियागरी पर सरकारी प्रतिबध लगवा दिया। परंतु फिर भी कुछ कीमियागर गुप्त रूप से यह कार्य करते रहे। फांसी की सजाए भी मिलती रही। फ्रेच रसायनज्ञ ज्ञान बारिलो रंगे हाथों पकड़ा गया जिसे केवल इस जुर्म मे फांसी की सजा दे दी गई कि वह अपनी प्रयोगशाला में तत्त्वों के रासायनिक गुणो का अध्ययन कर रहा था। वैज्ञानिक के प्रयोग सदेहजनक लग रहे थे अत. उसे तुरत मौत की सजा दे दी गई।

हमारे दिनों तक सुरक्षित कीमियागरी के नुस्खो में पारद को अक्सर मर्करी कहा गया है। पारद की बूंदों मे चिकने फर्श पर बडी तेजी से फिसलने का गुण होने के कारण प्राचीन रोमवासियों ने इसका यह नाम रख दिया। उनके विचारानुसार पारद की बूंदें चालाक और फुर्तीले बुध देवता (मर्करी) की याद दिलाती थीं। वे लोग बुध को व्यापार का देतवा मानते थे। कीमियागरी साहित्य मे और भी कई तत्त्वों को देवताओ के नाम दिए गए थे : स्वर्ण सूर्य का प्रतीक माना जाता

था, लोहा—मंगल देवता का, ताम्र—शुक्र देवता का आदि। इस प्रकार कीमियागर अपनी जानकारी गुप्त रखते थे।

हमारे युग से पहले भी लोगों को इस बात की जानकारी थी कि पारद कई धातुओं को अपने अंदर घोलकर पारदमिश्रण बनाने की क्षमता रखता है। इंग्लैंड के वैज्ञानिक हेम्फरी डेवी ने इतिहास में पहली बार बेरियम, स्ट्रांशियम तथा मैग्नीशियम स्वतंत्र रूप से प्राप्त कर दिखाए। उन्होंने पहले इन धातुओं के पारद मिश्रण प्राप्त किए और फिर उनसे पारद अलग किया।

कैथेड्रलों के गुम्बदों पर स्वर्ण की पालिश करने के लिए पारदमिश्रण प्रयुक्त किए जाते है, उदाहरण के लिए, पीटर्सबर्ग के आद्रीय इसाक कैथेड्रल के गुम्बद पर इसी तरीके से स्वर्ण का लेप चढ़ाया गया था। इस कैथेड्रल की योजना वास्तुकार मोटफेरन ने तैयार की थी। इसके विशाल गुम्बद का व्यास 27 मीटर है। पारदमिश्रण द्वारा ताम्र की पत्तियो पर 100 किलोग्राम से ज्यादा शुद्ध स्वर्ण लेपा गया। सबसे पहले ताम्र की पत्तियों से चिकनाई हटायी गई फिर इन पर पालिश करके पारदमिश्रण—स्वर्ण तथा पारद का विलयन—लेप दिया गया। इसके बाद इन पत्तियो को विशेष अगीठियों पर तब तक गरम किया गया जब तक कि पारद वाष्प बनकर नही उड़ गया। अब पत्ती पर केवल स्वर्ण की पतली तह (कुछ माइक्रोन मोटी) बाकी रह गई थी। परंतु पारद की वाष्पो से निकला हल्का नीले-हरे रंग का धुआ, जो अदृश्य लगता था, कारीगरों को नुकसान पहुंचाने मे सफल हो गया था। हालांकि उन दिनों के सुरक्षा नियमों के अनुसार इन कारीगरों ने काच के टोप पहन रखे थे परंतु पारद का जहर फिर भी असर कर गया। लोग तड़प-तड़प कर मरने लगे। समकालीन लोगों के कथनानुसार इस गुम्बद पर स्वर्ण की पालिश चढ़ाने के काम में दर्जनो कारीगरों को अपना बलिदान देना पड़ा।

पारदमिश्रणो का इतिहास केवल दुखद घटनाओ से ही नहीं भरा है। कुछ मजेदार किस्से भी इनसे संबंधित हैं। कहते है कि हमारी शताब्दी के आरंभ मे एक वैज्ञानिक ने पारद से स्वर्ण प्राप्त करने के उद्देश्य से पारद वाष्पों पर शक्तिशाली विद्युत चिंगारियो की प्रक्रिया करायी। काफी अर्से बाद उसे पारद में स्वर्ण दिखाई दिया। वैज्ञानिक की खुशी का ठिकाना न था। परंतु जब उसे यह पता चला कि यह स्वर्ण उसके अपने चश्मे के फ्रेम के स्वर्ण का अंश था, उसे निराशा भी बहुत हुई। बात यह थी कि समय-समय पर वह अपने हाथो से चश्मा ठीक करता था। उसके हाथों पर पारद की नन्ही-नन्हीं बूंदें जम गई थीं जो स्वर्ण के संपर्क मे आते ही उसका कुछ अंश पारदमिश्रण में परिवर्तित कर देती थीं और फिर यही पारदमिश्रण अनुसंधान के लिए रखे पारद में मिल जाता था।

पारदमिश्रण आज भी धातुओं पर स्वर्ण की पालिश चढाने के काम में प्रयुक्त किए जाते हैं (यह कहने की जरूरत नहीं है कि आज इस काम में मनुष्य की जान को कोई खतरा नहीं होता है), जैसे, दर्पणो के निर्माण मे, दतचिकित्सा मे, प्रयोगशाला आदि में। फलिमनिक अम्ल का पारद लवण बारूद के निर्माण मे इस्तेमाल होता है।

तकनीकी कार्यों में शुद्ध पारद का प्रयोग बहुत विस्तृत है। उदाहरणतया, रसायनिक उद्योगों में क्लोरीन, कास्टिक सोडा, संश्लिष्ट ऐसीटिक अम्ल के उत्पादन मे शुद्ध पारद प्रयुक्त किया जाता है। पारद परिशोधक बहुत भरोसेदार होते है तथा काफी लंबे अर्से तक चलते है। ये प्रत्यावर्ती धारा के सुधारने में प्रयुक्त होते हैं। स्वचलित तथा मापक यंत्रों मे पारद स्विच लगाए जाते है जो विद्युत धारा को तात्क्षणिक चालू या बंद कर देते है। क्वार्टज पारद लैंपों की सहायता से शक्तिशाली पराबैंगनी विकिरण उत्पन्न किया जा सकता है। इन लैंपो से ऑपरेशन हालों की वायु शुद्ध रखी जाती है। ये लैंप रेडियो चिकित्सा में भी प्रयुक्त किए जाते है।

संदीप्तिशील लैंपों (पारद वाष्प लैंपों) की कांच की ट्यूबों मे आर्गान मिली पारद की विरलित वाष्पे भरी जाती है। द्वितीय विश्व युद्ध से पहले मास्को की गोर्की स्ट्रीट पर पारद लैंप लगाए परंतु शीघ्र ही इन लैंपो को हटाना पडा क्योंकि इनके अप्रिय प्रकाश में लोगों के चेहरे फीके लगते थे तथा लिपस्टिक का रंग लाल की जगह हरा दिखाई देता था। आगे चलकर लैंपों के लिए विशेष पदार्थ-संदीपक विकसित करने में सफलता मिल गई। ये लैंपों की आंतरिक दीवारों पर लेप दिए जाते हैं जिसके फलस्वरूप विभिन्न रंगो का प्रकाश उत्पन्न होता है, जैसे सफेद रंग का, जो दिन की रोशनी से काफी मिलता-जुलता है।

पारद ने हमारी शताब्दी की एक बहुत बड़ी खोज मे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यह खोज अतिचालकता की परिघटना के साथ संबंधित थी। 1911 में हालैंड के भौतिकविद् तथा रसायनज्ञ हैक कैमरलिंग ओनेस निम्न तापमानो पर विभिन्न पदार्थों के गुणों का अध्ययन कर रहे थे। प्रयोगों के दौरान उन्होंने यह देखा कि परम शून्य के पास 4.1 K पर पारद का विद्युत धारा के प्रति प्रतिरोध बिल्कुल खत्म हो जाता है। दो साल बाद ओनेस को इस खोज के उपलक्ष्य मे नोबेल पुरस्कार दिया गया।

1922 में चैक रसायनज्ञ यारोस्लाव गैइरोव्स्की को भी नोबेल पुरस्कार दिया गया। उन्होंने रासायनिक विश्लेषण की पोलेरोग्राफी विधि विकसित की जिसमे पारद अतिमहत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

पारद दर्जनों भौतिक उपकरणों में मुख्य घटक का कार्य क
बेरोमीटरों, निर्वात पम्पों में, परन्तु इसका सबसे विस्तृत उपयोग
है।

सतरहवीं शताब्दी में जब पहले थर्मामीटर का आविष्का
अंदर द्रव के रूप में जल भरा गया था। परन्तु ठंड में जल जम
फलस्वरूप कांच टुकड़े-टुकड़े हो जाता था और थर्मामीटर नष्ट हो जाता था। टूस्कानी के ड्यूक फेरदिनान्द II ने जल की जगह ऐल्कोहल इस्तेमाल करने की सिफारिश की। शायद उसे ऐल्कोहल के गुणों की अच्छी जानकारी थी। जब थर्मामीटर ज्यादा भरोसेदार हो गए थे परंतु ऐल्कोहल की कोटि हमेशा एक-सी न होने के कारण तापमानों में अक्सर काफी फर्क दिखाई देने लगे। फ्रेंच भौतिकविद् अम्मोन्तोन पहला व्यक्ति था जिसने थर्मामीटर में पारद इस्तेमाल करके देखा। कुछ सालों बाद 1724 में जर्मन भौतिकविद् फारेनहाइट ने एक पैमाने वाला पारद थर्मामीटर बनाया जो आज इंग्लैंड तथा संयुक्त राज्य अमरीका में प्रचलित है।

आज पारद थर्मामीटरों के उपयोग विविध हैं। थर्मामीटर की
बनावट उसके उपयोग पर निर्भर करती है। उदाहरणतया, कैपि
भरा होता है, का व्यास थर्मामीटर के उपयोग के हिसाब से रखा
थर्मामीटर की कैपिलरी सबसे पतली होती है। इसका व्यास केवल
होता है। इतने पतले पारद स्तम्भ को नंगी आंखों से देखन
परेशानी से बचने के लिए कैपिलरी की आकृति एक त्रिफलकी
जैसी रखी जाती है तथा इसकी पिछली दीवार पर एक स्क्रीन बन
सफेद एनैमल की एक रेखा खींच देते हैं।

तब तक नहीं गिरना चाहिए जब तक कि उसे हिलाया नहीं
पलरी में किसी-न-किसी जगह पर 'ग्रीवा' जरूर होनी चाहिए।
कैपिलरी पहले से ही बहुत पतली होती थी, उसे और पतली
ना। इस समस्या का एक दूसरा हल ढूंढा गया है। कैपिलरी
साथ एक बेलनाकार ट्यूब जोड़ दी जाती है।

इस्तेमाल होने वाला पारद अतिशुद्ध होना चाहिए क्योंकि जरा-
मान में फर्क पैदा कर सकती है। इसी कारण ऐसे पारद का
या जाता है; उसे धोकर आसवित करते है और इसके बाद
ते हैं।

ान देने योग्य है कि भंगुर होते हुए भी कांच थर्मामीटरों के
बसे बेहतर पदार्थ है। उदाहरणतया, पारदर्शक प्लास्टिक इस
कुल अनुपयुक्त है क्योंकि यह ऑक्सीजन को रोक नहीं पाती
ए विनाशकारी है।

ारद भरना एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण ऑपरेशन होता है : कैपिलरी
ी घुसनी चाहिए। पहले, जब यह काम हाथों से किया जाता
को पारद से भरी कैपिलरी के दोनों सिरों को बारी-बारी से
करना पड़ता था जिससे कि उसके अंदर से वायु के बुलबुले
। यह काम बड़ी शीघ्रता तथा सफाई से मशीनें करती हैं।
इजाजत मिलने से पहले थर्मामीटरों का कई बार ध्यानपूर्वक

परीक्षण किया जाता है। दुर्भाग्यवश उनमें से कुछ का अंत दुखदायी होता है, जो 'त्रुटिपूर्ण' होते हैं। इन बेचारों का जीवन यहीं खत्म हो जाता है। उन्हें कूड़े की टोकरी में फेंक दिया जाता है। परंतु जिन थर्मामीटरों ने कठिन परीक्षा पास कर ली है, जिन्हें उत्तीर्ण होने का प्रमाणपत्र मिल गया है, जिन पर फैक्टरी की मोहर लग गई है, उनकी परिशुद्धता की 100% गारंटी होती है। कांच की कोठरी मे बंद पारद की बूंद बड़ी वफादारी के साथ विज्ञान, उद्योग, कृषि तथा चिकित्सा जगत् की सेवा करती रहेगी।

पारद के उत्पादन का इतिहास सदियों पुराना है। किसी जमाने में पारद अयस्क को मिट्टी के बर्तनो मे भर्जित किया जाता था। इसके परिणामस्वरूप प्राप्त पारद वाष्पों को काटे पेड़ो की ताजी पत्तियों पर इकट्ठा किया जाता था। ये पेड़ ईंटो के विशेष गड्ढों में लगाए जाते थे। आज फैक्टरियों में पारद का उत्पादन स्वचलित मशीनो से होता है जो बिना रुके यह काम करती रहती है। आपरेटर को सिर्फ एक बटन दबाना होता है और टनों पारद की सान्द्रता एक विशाल विद्युत भट्ठी के हापर में जमा हो जाता है। यहां कई सौ डिग्री तापमान पर पारद वाष्पित होने लगता है। इन वाष्पों के प्रशीतन से प्राप्त पारद विशेष टैंकों मे भर लिया जाता है।

इसके बाद धातु को अंतिम बार परिशुद्ध किया जाता है और स्टील पात्रों में भर दिया जाता है। हर पात्र में 35 किलोग्राम पारद आता है। विशेष रूप से शुद्ध पारद पोर्सिलेन पात्रों में रखा जाता है (हर पात्र में 5 किलोग्राम)। इन्हीं पात्रों में पारद स्टोरों में रखा जाता है।

'रजत जल' की जिंदगी का दौर यहीं से शुरू होता है।

धातु, जिसने रोम को तबाह कर दिया

चौकस हंस–कुलीन लोगों की बदकिस्मती–धर्माभिमान की खातिर–ब्राह्मणों के भेद–सांसों के पुल पर आह की आवाज सुनाई देती है–जबरदस्त दलील–80 साल तक जल के भीतर–असह्य शौक–शहर के ऊपर अंधकार के बादल छा जाते हैं–ग्रीनलैंड का कणहिम बर्फ का स्तंभ–कम्पोजिंग में लेड का प्रयोग–बोझिल पत्र–क्रिस्टल के बजाने पर–"Made in Rodos"–एथेन्स के बंदरगाह पर आग की दुर्घटना–क्या चमत्कार नाम की कोई चीज है?–पेरू के चित्रकार की चालाकी–जहरीली 'चीनी'–अच्छाइयां और बुराइयां–'मिनी' प्रदीपक–बर्रे कभी आराम नहीं करती हैं–सेमिरामिडा के बागों में–करोड़ों में एक–साजिश की क्या जरूरत है?–पारिवारिक संबंध–बिल्ली को बिल्ली ही बताया गया

सर्वविदित है कि रोम की रक्षा हंसों ने की थी। चौकस हंसों ने ठीक वक्त पर दुश्मन की फौजों को शहर की ओर बढ़ते देख लिया और उसी वक्त शोर मचाना शुरू कर दिया। इस बार रोमनवासियो की जान बच गई।

परतु रोमन साम्राज्य का पतन होना ही था। इस शक्तिशाली राज्य के पतन का क्या कारण था? रोम को किसने बरबाद किया?

कुछ अमरीकी तथा कनेडियम वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुंचे है कि रोम का पतन लेड का जहर फैलने के कारण हुआ था। उनके विचारानुसार अभिजात वर्ग के लोग लेड के बर्तनो (बोतलों, जामों, प्यालों आदि) का इस्तेमाल करते थे तथा साजसिंगार के समान में भी लेड के रंगों का प्रयोग करते थे जिसके

फलस्वरूप उन लोगों के शरीर में जहर भर जाता था। वे म
जाते थे।

विदित है कि हमारे युग के आरभ में अर्थात् रोमन साम्राज्य के पतन से पहले कई रोमन सम्राट् विभिन्न मनोविज्ञानी रोगों से पीडित थे। कुली वर्ग के लोगों की ओसत आयु 25 साल से ज्यादा नही होती थी। निचली श्रेणियो के लोग लेड के जहर का शिकार कम होते थे क्योंकि उनके पास न तो इतने कीमती वर्तन होते थे और न ही वे साजसिंगार करते थे। परतु पानी वे उसी प्रसिद्ध टैक

से लेते थे जिसका निर्माण रोम के गुलामों ने किया था और
कि जिन पाइपों के रास्ते पानी शहर मे पहुच रहा था वे
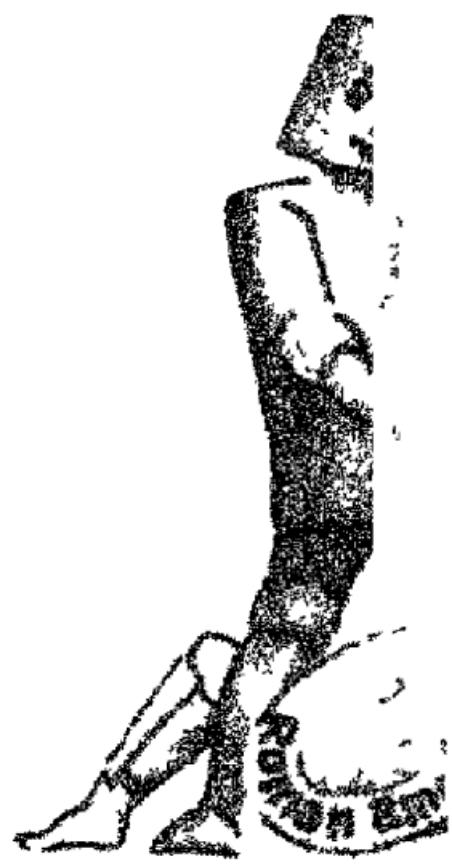
लोग मर रहे थे, साम्राज्य नष्ट हो रहा था। परतु यह
कि सारा दोप लेड का था। साम्राज्य के पतन के और भी कई का
सामाजिक, आर्थिक परतु फिर भी अमरीकी वेज्ञानिकों की द
सच्चाई जरूर है : पुरातत्त्वीय कार्यो के दौरान प्राचीन रोमवासियं
मिले हैं, उनके अदर लेड की मात्रा बहुत अधिक है।

इस तत्त्व के सभी विलयशील यौगिक जहरीले होते हे
जा चुका है कि प्राचीन रोम के लोग जो जल पीते थे उसमे व
बहुत ज्यादा था। लेड के साथ प्रतिक्रिया करके कार्बन डाइऑक
बनाता है जो जल में बडी सरलता से घुल जाता है। जिस्म
लेड की अल्प-से-अल्प मात्रा वहा रुक जाती है तथा धीरे-धीरे उ
की जगह लेती जाती है जिसके परिणामस्वरूप चिरकालिक रो

लेड ने केवल रोम का सत्यानाश ही नहीं किया; इसने
पाप किए है। धर्माधिकरण के बोलबाले के दिनों जेसूइट लोग
विरोधियो को यातना देते थे।

प्राचीन काल मे भारत मे अगर कोई शूद्र जान-बूझकर या अनजाने में पंडितो की वाणी सुनता हुआ पकड़ा जाता था तो उसके कानों में पिघला लेड भर दिया जाता था। आम जनता को काबू मे रखने के लिए पुराने जमाने से बाबिलोन, मिश्र तथा भारत के पुजारी अपनी पुस्तकें बहुत छिपाकर रखते थे।

वीनस मे मध्ययुग की एक जेल आज तक खड़ी हुई है जिसमे सरकारी कैदियों को रखा जाता था। यह जेल सांसो के पुल द्वारा वास्तुकला के अद्वितीय नमूने—ड्यूक डोज के महल के साथ जुड़ी हुई थी। जेल की बरसाती मे खतरनाक अपराधियो के लिए विशेष कोठरिया थी जिनकी छते लेड की बनी थीं। गर्मियो के दिनों मे कैदियों का गर्मी से दम घुटने लगता था और जाडों मे ठंड से जान निकल जाती थी और सासो के पुल पर उनकी आहे सुनाई देती थी।

जब से अग्निशस्त्रों का आविष्कार हुआ है तब से बंदूको तथा पिस्तौलो की गोलिया लेड से बन रही है। दो गुटो के झगडे मे लेड एक शक्तिशाली तर्क बन गया है। कई बड़ी लड़ाइयों तथा छोटी-मोटी डकैतियों मे लेड ने निर्णायक भूमिका निभाई है।

उक्त बातों से ऐसा लगता है जैसे कि लेड केवल गंदे काम ही करता आ रहा है। अतः मानवजाति को इस बात की चिंता होनी चाहिए कि इस दुष्ट धातु से, जिसने मनुष्य को इतने दुःख पहुचाए है, कैसे पीछा छुड़ाया जाए। परतु वास्तविकता में ऐसी कोई बात नही है। मनुष्य के मन मे ऐसी कोई इच्छा नही है, उल्टा वह इसका उत्पादन बढ़ाता जा रहा है। सभी अलौह धातुओ में केवल ऐलुमिनियम, ताम्र तथा जिंक का उत्पादन लेड के उत्पादन से अधिक है। अब सवाल यह उठता है कि यह धातु ऐसी कौन-सी नेकी करता है?

इतिहास में ऐसे कई उदाहरण मिलते है जब राष्ट्रों ने अपनी स्वाधीनता के लिए न्यायोचित सघर्ष किए और इस कार्य मे लेड ने उनकी सहायता की। देश की सीमाए सुरक्षित रखने के लिए बारूद के साथ-साथ लेड का होना भी जरूरी है। इसी कारणवश इस धातु का सैनिक महत्त्व बहुत ही ज्यादा है।

जब तकनीक के विकास से मोटर-कारों, पनडुब्बियो, हवाई जहाजों का निर्माण शुरू हो गया, रासायनिक तथा विद्युतइजीनियरी उद्योग विकसित होने लगे, तब लेड के उत्पादन में प्रभावशाली वृद्धि आ गई।

1859 मे फ्रेंच भौतिकविद् हैस्टन प्लाटे ने विद्युत ऊर्जा के रासायनिक स्रोत—लेड बैटरी का आविष्कार किया। तब से 100 से ज्यादा साल के अर्से के दौरान विश्व में ऐसी करोडो बैटरिया बनी हैं। इनकी बनावट साधारण जरूर है परंतु ऊर्जा संचयन के ये भरोसेदार स्रोत हैं। विश्व में लेड के कुल उत्पादन का

तीसरा भाग बैटरियों के निर्माण मे व्यय होता है। कुछ साल पहले इंग्लैंड के गोताखोरो को, जो इस शताब्दी के आरम्भ में डूबी एक पनडुब्बी को ऊपर लाने का प्रयास कर रहे थे, समुद्र मे एक लेड बैटरी मिली। उन्हें यह देखकर बहुत आश्चर्य हुआ कि 80 साल तक पानी में भीगी रहने पर भी इस बैटरी में विद्युत धारा उपस्थित थी। अमरीकी इंजीनियरों ने एक नई योजना बनाई है . मिशीगन राज्य मे छोटी-छोटी लेड बैटरियों को जोड़कर एक अतिविशाल बैटरी लगाने का विचार है जो व्यस्ततम काल में सारे मिशीगन को ऊर्जा देगा। इस बैटरी का वजन 3000 टन होगा तथा इसे उस समय आवेशित किया जाया करेगा जब विद्युत की खपत निम्नतम होगी।

लेड का मुख्य उपभोक्ता ईंधन उद्योग है। पेट्रोल वाले इंजनों में दहन से पूर्व गैसोलीन संपीडित की जाती है। संपीडन जितना उच्च होता है इंजन उतनी ज्यादा किफायती से काम करता है। परन्तु बहुत उच्च संपीडन पर गैसोलीन बिना दहन के विस्फोटित हो जाता है। स्वाभाविक है कि इस तरह की मनमर्जी की अनुमति नहीं दी जा सकती। टेट्राएथिल लेड ने यह समस्या हल कर दी। पेट्रोल मे इसकी थोडी-सी मात्रा मिला देने से (1 लीटर में 1 ग्राम से भी कम) विस्फोट की संभावना खत्म हो जाती है तथा ईंधन का दहन संतुलित रूप में होता है। विशेष बात यह है कि दहन तभी होता है जब इसकी आवश्यकता होती है।

चूंकि टेट्राएथिल लेड बहुत विषाक्त होता है अत. एथिलयुक्त पेट्रोल में गुलाबी, हरा, नारंगी, लाल तथा अन्य रंग (पेट्रोल की आक्टेन संख्यानुसार) मिला दिए जाते है जिससे इस पेट्रोल की पहचान सरल हो जाए। बड़े अफसोस की बात यह है कि मोटरकारो के इंजनो से निष्कासित गैसों में विषाक्त पदार्थों की मात्रा बहुत अधिक होती है। कैलिफोर्निया तकनीकी संस्थान के वैज्ञानिकों की गणनानुसार एक साल के अंदर उत्तरी अर्द्धगोलार्ध के समुद्रों तथा महासागरों मे लगभग 50 हजार टन लेड गिरता है जो मुख्यत. पेट्रोल में मिलाए लेड का अंश होता है। इन वैज्ञानिकों के कथनानुसार विश्व मे विशाल नगरों का आकाश लेड के बादलो से ढका रहता है। आपने देख लिया कि 1 लीटर पेट्रोल में 1 ग्राम लेड मिलाने का क्या नतीजा होता है। मोटरकारों की निष्कासित गैसों से निकला लेड आर्कटिक के बर्फीली इलाको तक मे मिला है। विशेषज्ञ लोग बहुत दिनो से टेट्राएथिल लेड का स्थानापन्न ढूंढ़ रहे हैं और इस काम में उन्हें कुछ सफलता भी मिली है।

ग्रीनलैंड के कणहिम के अध्ययन से बडे महत्त्वपूर्ण परिणाम मिले है। वैज्ञानिको ने विभिन्न ऐतिहासिक कालों के कणहिम के नमूनों का विश्लेषण

किया। उन्हें ईसा से आठ शताब्दी पूर्व के नमूनों में प्रति किलोग्राम कणहिम मे 0.000001 मिलीग्राम लेड मिला (यह राशि प्राकृतिक संदूषण का मानक स्वीकार की गई है जिसका मुख्य कारण ज्वालामुखियों का उद्गार होता है)। अठारहवी शताब्दी के मध्य के नमूनों मे (औद्योगिक क्रांति का आरंभिक काल) लेड की मात्रा 25 गुना अधिक मिली। इसके बाद के नमूनों में इस तत्त्व की मात्रा हद से ज्यादा निकली–मानक से 500 गुना अधिक।

यूरोप के पहाड़ों की बर्फ में लेड की मात्रा और भी ज्यादा है। उदाहरण के लिए, तात्र पहाड़ों के कणहिम में पिछले 100 सालों में इस तत्त्व की मात्रा 15 गुना बढ़ गई है। अगर इस क्षेत्र के संदूषण की प्राकृतिक संदूषण के मानक से तुलना की जाए तो पता चलता है कि इन पहाड़ों का जो इलाका औद्योगिक क्षेत्रों के पास है उस के कणहिम मे इस धातु की मात्रा लगभग 2 लाख गुना अधिक है।

कुछ समय पहले स्वीडन के वैज्ञानिकों ने जब स्टाकहोल्म के एक केंद्रीय पार्क में खड़े कई शताब्दियों पुराने बजुल वृक्षों का अध्ययन किया तो उन्हे यह पता चला कि इन वृक्षों में लेड की मात्रा मोटर-कारो की सख्या की वृद्धि के अनुसार बड़ी तेजी से बढ़ती जा रही है। उदाहरण के लिए, अगर पिछली शताब्दी मे इन वृक्षों में लेड की मात्रा केवल 0.000001% थी तो बीसवीं शताब्दी के मध्य में इनका लेड भंडार दुगुना हो गया तथा इस शताब्दी के सातवे दशक के अंत तक लगभग 10 गुना बढ़ गया। विशेष बात यह थी कि वृक्षो के उस भाग मे लेड अन्य भागों की अपेक्षाकृत ज्यादा था जिसका रुख सडक की ओर था। स्पष्ट था कि यह निष्कासित गैसो की करामात थी।

जापान के द्वीप अकीनावा में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी 'एक्स्पो-75' में एक निराली चीज दर्शकों के आकर्षण का केंद्र बनी हुई थी—यह 30 मीटर ऊंचा बर्फ का एक खंभा था जिसे 3000 साल पुराने एक हिमशैल से काटा गया था। जापानी, अमरीकी तथा सोवियत वैज्ञानिक इस हिमशैल के अध्ययन से इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि पिछले कुछ दशकों मे इस हिमशैल को लेड की काफी मात्रा को 'शरण' देनी पड़ी है–यह मोटर उद्योग के तीव्र विकास का परिणाम ही तो है।

आधुनिक तकनीक के क्षेत्र में लेड को और भी कई काम मिले हुए हैं। जैसे, विद्युत इंजीनियरी में यह धातु केबिलों के विश्वसनीय तथा पर्याप्त रूप से प्रत्यास्थ आवरण की भूमिका निभा रही है। इस धातु की काफी मात्रा वेल्डिंग के काम में प्रयुक्त होती है। रासायनिक कारखानो तथा अलौह धातु उद्योग में

क्षारण से सुरक्षित रखने के लिए कई चेंबर लेड में बनाए जाते हैं। उदाहरण के लिए सल्फ्यूरिक अम्ल के उत्पादन में चेम्बरों की आंतरिक सतह लेड से बनाई जाती है, विभिन्न पाइप, अम्लोपचार नाद तथा विद्युत्अपघटन आदि भी लेड के बने होते हैं। कई मशीनों में लेड-गलांशों के बने भाग नियमित इस्तेमाल किए जाते हैं।

लेड के एक ऐलॉय का हम यहां सविस्तार वर्णन करना चाहेंगे। कई शताब्दियों से मुद्रण धातु के निर्माण में टिन तथा एंटिमनी के साथ-साथ लेड भी इस्तेमाल किया जा रहा है। इस ऐलॉय के बने अक्षरों से पुस्तकों, अखबारों तथा पत्रिकाओं की कम्पोजिंग की जाती है। जर्मन बुद्धिजीवी जार्ज क्रिस्टोफ लिख्टेनबर्ग ने लेड की इस भूमिका की प्रशंसा एक बड़े निराले ढंग से निम्न शब्दों में की: 'दुनिया को बदलने में लेड की भूमिका स्वर्ण से अधिक रही है। यहां मेरा अभिप्राय बंदूक की गोली के लेड से नहीं बल्कि कम्पोजिंग के लेड से है।'

यह माना जाता है कि महान् जर्मन अनुसंधानकर्ता गोगान गुटेनबर्ग पहले व्यक्ति थे जिन्होंने मुद्रण अक्षरों के निर्माण में लेड इस्तेमाल किया। परन्तु सच यह है कि लेड उनसे पहले भी मुद्रण कार्यों में इस्तेमाल होता रहा है। कुछ समय पहले सोवियत पुरातत्त्वज्ञों को काले सागर के एक द्वीप बेरेजान पर लेड की पतली चादर पर अंकित एक यूनानी पत्र मिला है। सोवियत संघ में बूग नदी के तट पर प्राचीन शहर ओल्वी के खंडहरों की खुदाई के दौरान भी एक ऐसा ही पत्र मिला है। पत्र लिखने का यह तरीका प्राचीन यूनान में बहुत प्रचलित था परन्तु आधुनिक वैज्ञानिकों को ऐसे केवल 5 पत्र मिले हैं। ये धात्विक पत्र इतने विरल क्यों हैं? बात यह है कि जिस किसी को भी ऐसा पत्र मिलता था वह पढ़ने के बाद उसके लेड से भारों के सेट, साहुल आदि बनवा लेता था या छतों की मरम्मत तथा अन्य कामों में लगवा देता था। उसे आने वाली पीढ़ियों की रुचि की तनिक भी चिंता नहीं थी।

बेरेजान में मिला पत्र ईसा से छः शताब्दी पूर्व के काल का बताया जाता है। इसमें अहीलोदोर नामक व्यक्ति अनाक्सागोर को गुलामों के कारण झगड़े की सूचना दे रहा है। दूसरे पत्र में, जो ईसा से चार शताब्दी पूर्व लिखा गया है, बार्तीकोन नामक शक्ति अपने मित्र दीफिल को मुकदमा हारने की बुरी खबर दे रहा है। इस प्रकार ढाई हजार साल बाद इतिहासकारों को लेड की सहायता से प्राचीन यूनानी उपनिवेशकों के जीवन तथा सामाजिक संबंधों के कुछ पहलुओं की जानकारी मिली है। उस जमाने में काले सागर के क्षेत्र यूनानियों के अधिकार में थे।

हमारे जमाने मे लेड के उपयोग विविध हैं। कई शताब्दियों से दुनिया क्रिस्टल

से परिचित है—कांच की यह किस्म ओस की बूद की तरह पारदर्शक होती है जिसके बजाने पर मधुर ध्वनि निकलती है। क्रिस्टल के फानूसों का प्रकाश अतिलुभावना होता है। क्रिस्टल का जन्मदाता लेड ही तो है। सत्तरहवीं शताब्दी के आरंभ में इंग्लैंड के कांच के कारीगर भट्ठियों मे लकडी की जगह कोयला जलाने लगे। इस परिवर्तन से सारे काम बढ़िया तरह से हो रहे थे परतु एक कमी आ गयी थी। यह यह थी कि कोयलों से धुआ बहुत निकलता था। धुएं के कण कांच में मिल जाते थे जिससे कांच धुधला हो जाता था इस परेशानी से छुटकारा पाने के लिए कारीगरों ने कांच को बंद बर्तनो मे उबालना शुरू कर दिया परतु इससे समस्या पूर्णतया हल नहीं हुई क्योकि कांच अक्सर कच्चा रह जाता था। तब 1635 में कारीगरों ने कांच में लेड मिलाने का फैसला किया। उन्होंने इस मिश्रण के प्रगलन का ताप भी घटा दिया। उनके इस प्रयोग से जादुई परिणाम प्राप्त हुआ—नए कांच का चमक हीरे की तरह चमक रहा था तथा इसे बजाने पर अति मधुर ध्वनि निकल रही थी। इस कांच तथा सुंदर प्राकृतिक पहाडी क्रिस्टल मे काफी समानता होने के कारण इसका नाम भी क्रिस्टल रख दिया गया। इस प्रकार लेड की मेहरबानी से लोगों को एक अतिसुंदर पदार्थ मिला जिससे अद्वितीय चीजे बनायी जाती है।

परतु क्रिस्टल के एक शौकीन को लेड ने काफी हानि पहुचायी। एक बार एक आग दुर्घटना की जांच हो रही थी। आग से सारा घर स्वाहा हो गया था परंतु भाग्यवश मकान के मालिक ने घर का बीमा करवा रखा था जिसके कारण उस बीमा कंपनी से भारी धनराशि मिलती थी। उसके कथनानुसार घर के अदर अन्य चीजों के अलावा क्रिस्टल की भी बहुत सारी कीमती चीजे थीं जिन्हे आग ने कांच के पिंडो मे परिवर्तित कर दिया था। अधिकारियो को उस व्यक्ति की बात पर विश्वास नहीं आ रहा था, अतः उन्होंने कांच के टुकड़े विश्लेषण के लिए प्रयोगशाला भेज दिए। प्रतिदीप्ति विश्लेषण से यह पता चला कि उस काच मे लेड की मात्रा बहुत कम थी जबकि क्रिस्टल में इस तत्त्व की मात्रा काफी उच्च होता है। अधिकारी तुरत समझ गए कि मकान में क्रिस्टल की जगह काच रखा हुआ था तथा आग लगी नहीं बल्कि लगायी गई थी। छानबीन से यह पता चला कि उस आदमी ने घर से सारी कीमती चीजें निकालकर क्रिस्टल की जगह काच की चीजें रख दी थी और फिर घर को आग लगा दी थी। उसे बीमा कपनी से मुआवजा मिलने की पूरी उम्मीद थी परंतु लेड ने सारी योजना फेल कर दी।

लेड के पेंट बहुत पुराने जमाने से इस्तेमाल होते आ रहे हैं। उदाहरणतया, 3000 साल पहले भी लोग सफेद लेड के निर्माण की विधि से परिचित थे। उन

ा इसका मुख्य निर्यातक रोड्स द्वीप था। यहां इस रंग के निर्माण
कृत तो नहीं थी परन्तु विश्वसनीय जरूर थी। एक ड्रम में सिरका
गाड़िया रख देते थे फिर लेड के टुकड़े रखकर ड्रम का ढक्कन ब
कुछ दिनों बाद जब ड्रम खोला जाता था तो लेड के ऊपर सफे
ता था। इस रंग को खुरचकर धातु से अलग कर लेते थे और
रकर दूसरे देशों को बेच देते थे।

एक बार एथेन्स के बंदरगाह पिरेस पर एक जहाज खड़ा था।
द लेड लदा हुआ था। इस जहाज में अचानक आग लग गई। इस वक
क एक चित्रकार बंदरगाह आया हुआ था। उन दिनों रंग बहुत कं
था मिलते भी बड़ी मुश्किल से थे। रंग का एकाध ड्रम बचाने
नकीस जलते जहाज पर चढ़ गया। उसे यह देखकर बहुत आश्चर्य
ड्रमों में सफेद लेड की जगह गहरे लाल रंग का एक गाढ़ा पदार्थ
एक ड्रम उठाकर वह अपने स्टूडियो की ओर भागा। ड्रम में र
ही बेहतरीन रंग का निकला। आगे चलकर इसका नाम लाल लेड
तथा इसे सफेद लेड के भर्जन से प्राप्त किया जाने लगा।
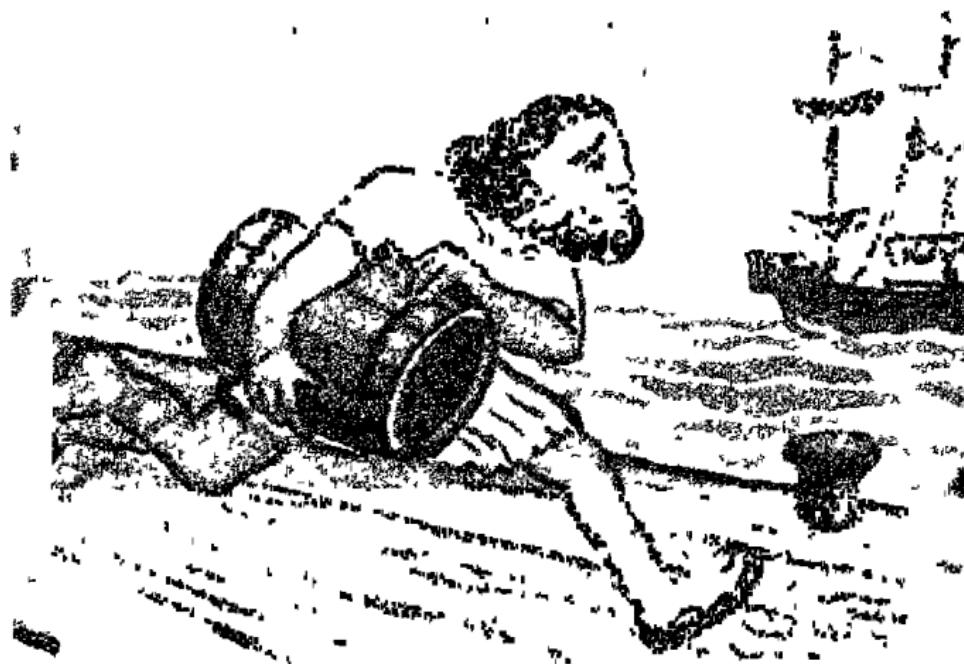
सब जानते है कि लेड रंगों से रंगे चित्र तथा लकड़ी के तख्तो
ओं की तस्वीरें वक्त के अनुसार फीकी पड़ती जाती है। इसका व
वायु मे उपस्थित हाइड्रोजन सल्फाइड के प्रभाव से चित्रों पर
ड सल्फाइड जम जाता है। परंतु अगर चित्रो की हाइड्रोजन पराक

तनु विलयन या सिरके से सफाई कर दी जाए तो उनके रंग फिर से चमकने लगते हैं। इस जानकारी के बल पर चर्च के लोग सदियों से आस्तिकों को बेवकूफ बनाते आ रहे हैं। वे इस तरह देवताओं की तस्वीरों को 'जीवित' कर देते थे। प्रशांत महासागर में दक्षिण अमरीकी तट पेरू, जहां के जल में कई स्तरों पर हाइड्रोजन सल्फाइड मात्रा अधिक है) की यात्रा कर रहे यात्रियों को यह देखकर बड़ा आश्चर्य होता है कि कल शाम तक जो जहाज बर्फ जैसे सफेद रंग का था, सवेरे एकदम काले रंग का हो जाता है। जहाज के नाविक इसका रहस्य जानते हैं। वे इसे 'पेरू के चित्रकार' की करामात बताकर यात्रियों का मजाक उड़ाते हैं। यह लेड का चमत्कार है।

चिकित्सा कार्य में लेड के यौगिक संकोचक, रोगाणुरोधक तथा दर्दनाशक दवा के रूप में प्रयुक्त किए जाते हैं। उदाहरणतया, लेड ऐसीटेट 'लेड लोशन' के नाम से प्रसिद्ध है। मीठे स्वाद के कारण इसे 'लेड शुगर' भी कहते हैं। परंतु यह न भूलें कि 'लेड शुगर' शरीर के लिए बहुत जहरीली है।

यही कारण है कि जिन वर्कशापों तथा प्रयोगशालाओं में आदमी का लेड या इसके यौगिकों के साथ वास्ता पड़ता है वहां बहुत ज्यादा एहतियात बरती जाती है। स्वास्थ्य चिकित्सक तथा श्रम-रक्षा इंजीनियर दिन-रात इस बात का खयाल रखते हैं कि जल में लेड की मात्रा अनुमत स्तर—0.00001 मिलीग्राम प्रति लीटर से ऊपर नहीं पहुंचे। अगर कुछ दिनों पहले तक छापेखानों तथा लेड-प्रगलन कारखानों के मजदूरों के लिए लेड के जहर की बीमारी एक पेशावर बीमारी समझी जाती थी तो आज तकनीक के विकास, पर्याप्त वायुसंचार तथा गर्द निष्कासन ने इस बीमारी का नामोनिशान मिटा दिया है।

आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि जहर का काम करने के साथ-साथ लेड मनुष्य की रक्षा भी करता है।

धात्विक लेड विघटनाभिक तथा एक्सकिरणों के लिए सबसे अधिक अपारदर्शी पदार्थ सिद्ध हुआ है। अगर आप एक्स-रे तकनीशियम के दस्ताने या एप्रन उठाकर देखें तो उनके भारीपन से आप जरूर आश्चर्यचकित होंगे। बात यह है कि रबड़ की बनी इन चीजों के अंदर लेड भरा होता है जो शरीर की अतिविनाशक एक्स-रे किरणों से रक्षा करता है। कोबाल्ट गनों में, जो घातक अर्बुदों के उपचार में प्रयुक्त की जाती हैं, इस्तेमाल होने वाला विघटनाभिक कोबाल्ट का कण लेड के एक बक्स में बड़ी सुरक्षा के साथ छिपाकर रखा जाता है।

लेड ऑक्साइड युक्त कांच भी विघटनाभिक विकिरण से सुरक्षित रखता है। ऐसे कांच द्वारा यांत्रिक हाथों-परिचालकों की सहायता से विघटनाभिक पदार्थों

की कार्यगति पर नियंत्रण रखा जा सकता है। गुरुत्व के परमाणु क
काच का बना एक प्रदीपक लगा हुआ है जिसकी मोटाई 1 मीटर
1 5 टन से ऊपर है।

भू-पर्पटी मे लेड की मात्रा काफी कम है—ऐलुमिनियम तथा त
से हजारों गुना कम है। परन्तु फिर भी मनुष्य इस तत्त्व का बहुत प
से जानता है—ईसा से लगभग 6-7 हजार वर्ष पूर्व से। अन्य कई
मुकाबले लेड का गलनांक काफी निम्न होता है (327°C) तथा प
प्राय. अस्थायी रासायनिक योगिकों के रूप मे मिलता है। यही कारण
बार यह धातु सयोगवश मिलती है। जेसे, एक बार अमरीका मे ज
लगने से लेड के विशाल निक्षेप का पता चला, वृक्षो की राख के न
बडी-बडी सिल्लिया मिलीं। इस धातु के अयस्क पेडों की जडों के नी
थे। आग ने लेड को इन अयस्कों से अलग कर दिया था। प्रागैतिह
मे हमारे ग्रह के वासियो को भी पहला लेड शायद इसी तरह से

ब्रिटिश सग्रहालय मे रखी मिश्र से लायी लेड की एक प्रतिमा स
मानी जाती है। इसे 6000 साल से भी ज्यादा पुराना बताया जाता
लेड के अतिप्राचीन कूड़ों के ढेर आज तक सुरक्षित हैं—यहां ईसा से
पूर्व फिनीशियाई लोगों ने रिओ-तिन्तो के लेड-रजत निक्षेप का विकास
असीरी शहर आशूरा के खंडशहरो की खुदाई के दौरान लेड का एक विशाल ढेला मिला जिसका वजन 400 किलोग्राम के लगभग था। पुरातत्त्वज्ञों के कथनानुसार यह ढेला ईसा से 1300 वर्ष पुराने जमाने का है।

सभी आम धातुओं मे सबसे नर्म धातु लेड होती है। जरा-सा नाखून लगाने से ही इस धातु पर खरोंच आ जाती है। सुप्रसिद्ध जर्मन जंतुविज्ञानी एल्फ्रेड एडमुड ब्रेम ने अपनी लोकप्रिय पुस्तक 'जंतुओं का जीवन' मे एक मजेदार तथ्य दिया है उनके

को दीवार में सुराख कर दिए। कुछ वर्रों ने तो शहर को पानी देने वाली लेड की बनी भारी पाइप लाइनों तक में सुराख कर दिए। वर्रों की इस विशेषता का अध्ययन करने के लिए वैज्ञानिकों ने निम्न प्रयोग किया. उन्होंने वर्रों को कांच की एक परखनली में रखकर इस परखनली का मुंह लेड की पत्ती से बंद कर दिया। जाहिर था कि कांच में सुराख करना वर्रों के बस से बाहर था परंतु धातु पर विजय प्राप्त करना संभव लग रहा था। उन्होंने धीरे-धीरे परंतु विश्वासपूर्वक लेड में सुराख करना शुरू कर दिया। कीटविज्ञानी इन कीटों के सामूहिक कार्य को देखकर आश्चर्यचकित हो रहे थे. सभी कैदी बारी-बारी से एक ही जगह पर सुराख कर रहे थे मानो कि वे सब समझ रहे थे कि उन सब की आजादी के लिए एक सुराख काफी रहेगा। अपना उद्देश्य प्राप्त करने में उन्हे केवल छ घंटे लगे. अर्थात ओलम्पिक-टाइम से भी कम समय। हां, यह बात जरूर थी कि उन्होंने इस दौरान विश्राम बिल्कुल नहीं किया था।

नरम होने के कारण लेड ताम्र, कांसे तथा लोहे का मुकाबला नहीं कर सका और काम-काज के औजारों के निर्माण के अनुपयुक्त रहा। परंतु जल की सप्लाई के पाइपों तथा अन्य पात्रों के निर्माण के लिए यह सुघट्य धातु बहुत उत्तम सिद्ध हुई। ऊपर हम रोम नगर को जल सप्लाई करने वाले पाइपों का वर्णन कर ही चुके हैं। सेमीरामिडा के झूलते बागों की गिनती विश्व के सात अचभो मे की जाती है। इन बागों की सिंचाई असंख्य हौजों, पाइपों तथा अन्य जलीय संरचनाओं से की जाती थी। ये सारी चीजें लेड की ही तो बनी थीं। सतरहवी शताब्दी के प्रथम अर्द्ध में मास्को के क्रेमलिन की स्वीब्लोव मीनार पर जल की एक टंकी बनायी गई थी जिसके निर्माण में लेड की पत्तियां इस्तेमाल की गई थी। मास्को नदी का पानी इस टंकी में चढ़ाया जाता था और फिर यहां से लेड के पाइपों के रास्ते ज़ार के महल, बागों तथा अन्य महत्त्वपूर्ण जगहों तक पहुचाया जाता था। तब से इस मीनार को जल की टंकी कहा जाता है।

प्राचीन काल में लेड एक और महत्त्वपूर्ण कार्य करता था जिसका संबध भी जल के साथ था। प्राचीन यूनानवासी जानते थे कि मोलस्कों, रैचेटों तथा अन्य जलीय दुनिया के अन्य वासियों को, जो समुद्री जहाजों के तले के साथ चिपकना बहुत पसंद करते थे, जहरीले लेड ऑक्साइड अच्छे नहीं लगते। इसी कारणवश वे लोग समुद्री जहाजों के निर्माण में बड़े शौक से लेड इस्तेमाल करते थे। 'चिपकू' इन जहाजों से कोसों दूर भागते थे। इसके अलावा लेड जहाज के तले तथा कीलों को जंग से बचाए रखता था।

बीसवीं शताब्दी ने लेड को कई रोचक तथा महत्त्वपूर्ण कार्य दिए हैं परंतु
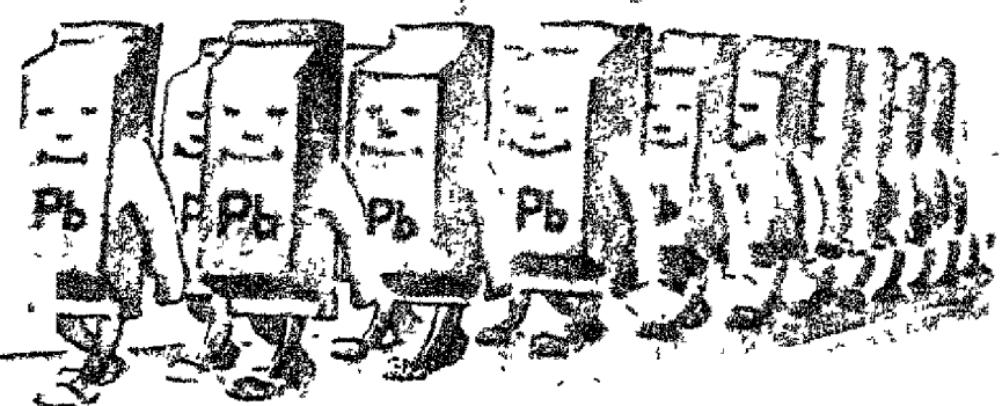
इसके साथ-साथ लेड के साथ काफी सख्ती भी बरती गई है, खासतौर पर इसकी शुद्धता के साथ। सोवियत संघ में एक नयी विधि-अमलगम शोधन विधि विकसित की गई है जिसके आधार पर विश्व में पहली बार अतिशुद्ध लेड प्राप्त किया गया है। इस लेड में अशुद्धियों की मात्रा केवल 0.000001% है अर्थात् 1 टन लेड मे 0.1 ग्राम से भी कम।

इन शब्दो के साथ लेड की कहानी समाप्त की जा सकती है परन्तु पूरे अध्याय मे लेड के नाम की कही भी चर्चा नहीं हुई है। रूसी भाषा में लेड को 'स्विनेत्स' कहते है। यह शब्द शायद 'स्विन्का' से निकला है। पुराने जमाने मे रूस मे लेड की सिल्ली को इस नाम से पुकारते थे (रूसी भाषा में 'स्विन्या' सूअर को कहते है)। परंतु 'स्विनेत्स' से पहले इस धातु के कई और नाम भी रहे है।

अगर आप प्रसिद्ध रूसी शब्दविज्ञानी दाल का शब्दकोश देखेंगे तो आपको एक कहावत मिलेगी—'शब्द टिन होता है।' यहां लेखक का अभिप्राय धातु टिन से नहीं बल्कि लेड से है। यह कहावत तभी इस्तेमाल की जाती है जब सच्चे, भरोसेदार तथा मजबूत शब्द की बात कही जाती है। परंतु दाल को इस साजिश करने की क्या जरूरत थी? बेहतर यही रहता कि कहावत को इस तरह से लिखा जाता : 'शब्द लेड होता है।' बात यह है कि पुराने जमाने में रूस मे लेड को टिन कहते थे। वास्तविक टिन (धातु) का बाद में पता चला और शुरू में इसे लेड समझा जाता रहा (इन दोनो धातुओं मे काफी समानता होती है)। परतु जैसे ही मनुष्य को दोनों धातुओं के अंतर की बात पता चल गई तब नई धातु को तो पुराना नाम दे दिया गया और पुरानी धातु का नाम स्विनेत्स रख दिया गया। प्राचीन रोमवासी भी इन धातुओं का अंतर नहीं समझते थे। वे लेड को 'काला

लुम्बम तथा टिन को सफेद प्लम्बम' कहते थे।

[illegible] लेड को एक और धातु 'मालिब्डेनम' के साथ जोडते हैं। यूनानी भाषा में इस शब्द का अर्थ है—लेड। लगता है कि प्राचीन यूनान के लोग इन दोनों धातुओं के खनिजों गैलेनाइट तथा मालिब्डेनाइट को एक ही चीज समझते थे। वे इन्हें 'मालिब्डेनम' के नाम से पुकारते थे। परतु कई शताब्दियो बाद जब मालिब्डेनाइट से एक नया तत्त्व प्राप्त हुआ तो उसने लेड से इसका यूनानी नाम छीन लिया।

अंत में हम यही कहेंगे कि बिल्ली को आखिरकार बिल्ली कहना ही पडा और लेड को लेड।

बीसवीं शताब्दी का ईंधन

सातवें ग्रह के सम्मान में--प्राचीन रोमवासियों की पच्चीकारी--मेंडेलीफ ने अपने साथियों की परवाह नहीं की--प्रतिभाशाली भविष्यवाणी- बेकेरेल को धूप का इंतजार था--पुराने शेड में कई आविष्कार-विश्वकोश में गलती--सनसनीखेज खबरें--'लड़कों' के मन में एक विचार पैदा होता है--लैन्थेनम कहां से आया?--हज्जाम की दुकान में घटी घटना--न्यूट्रान कहां से लाए जाएं?--लाभकारी 'लालच'-'माचिस' मिल गई है--मेट्रो के अंदर--सागर में एक बूंद की तरह--पुराने शिकागो में-चलिए, नाश्ता करते हैं--उत्तेजित ड्राइवर--फेर्मी को हंसी छिपानी पड़ती है--दिन जिसे काले अक्षरों से लिखा जाता है--पहला कदम--परमाण्विक बर्फतोड़क जहाज आगे बढ़ रहा है--सूरज पर एक पार्सल भेजा जाता है- सुनहरा भविष्य

यह कहना मुश्किल है कि जर्मन वैज्ञानिक मार्टिन हेनरीख क्लाप्रोथ ने 1789 में आविष्कृत रासायनिक तत्त्व का नाम क्या रखा होता अगर इस खोज से कुछ साल पहले एक दूसरी घटना न घटी होती जिसने समाज के हर वर्ग को उत्तेजित कर दिया था। 1781 मे जब अंग्रेज खगोलविद् विलियम हेरशेल अपने हाथों से बनाए टेलीस्कोप से आकाशगंगा का अध्ययन कर रहे थे तो उन्हें एक चमकीला बादल दिखायी दिया। शुरू में वह उसे एक धूमकेतु समझते रहे परंतु बाद में वैज्ञानिक को पता चल गया कि यह धूमकेतु नही बल्कि सौर मडल का सातवा ग्रह था जिसे पहले कभी नहीं देखा गया था। हेरशेल ने बादलो के देवता के सम्मान में इस ग्रह का नाम यूरेनस रख दिया। क्लाप्रोथ ने अपने नवजात तत्त्व को नए ग्रह का नाम दे दिया।

इस घटना के लगभग 50 साल बाद सन् 1841 मे पहली बार यूरेनियम

धातु प्राप्त की गई। इसका श्रेय फ्रेंच रसायनज्ञ एझेन मेलखी और पेलीगो को मिला। परंतु आश्चर्य की बात, उस भूरी परन्तु काफी नर्म धातु मे कोई दिलचस्पी नहीं दिखा रहे थे। इस धातु के भौतिक तथा रासायनिक गुण धातुकर्मियो और इजीनियरों को किसी काम के नहीं लग रहे थे। केवल बहामा के काच-कारीगर तथा मकमाशा के पोर्सलेन तथा मिट्टी के बर्तनों के निर्माता इस धातु के ऑक्साइड का बहुत लाभ से प्रयोग कर रहे थे जिनके बल पर वे चषकों को अतिसुंदर पीला रंग तथा प्लेटों को मखमली काला रंग दे पा रहे थे।

प्राचीन रोमवासी भी यूरेनियम के यौगिकों के पच्चीकारी गुणो की जानकारी रखते थे। नेपल्स के पास खुदाई के दौरान वैज्ञानिकों को काच का एक अतिसुदर भित्तिचित्र मिला। [illegible] की बात यह थी कि 2000 साल पुराना होने पर भी इसका रंग जरा भी धुंधला नहीं हुआ था। जब इस कांच का रासायनिक विश्लेषण किया गया तो पता चला कि इसमें यूरेनियम ऑक्साइड मिला हुआ था। इसी कारण से पच्चीकारी इतने अधिक काल तक सही-सलामत रही। अगर उस जमाने में यूरेनियम के ऑक्साइड तथा लवण समाज का बहुत भला कर रहे थे तो शुद्ध यूरेनियम में कोई भी व्यक्ति दिलचस्पी नहीं दिखा रहा था।

उस समय वैज्ञानिकों को भी इस तत्त्व के बारे में कोई ज्यादा बाते पता नहीं थी। उन्हें इस तत्त्व के गुणों की जो थोड़ी-बहुत जानकारी थी वह भी गलत थी। उदाहरणतया वैज्ञानिक यह समझते थे कि इस तत्त्व का परमाणु भार 120 के लगभग है। जब मेंडलीफ ने अपनी आवर्त सारणी बनायी तो इस संख्या ने सारा काम चौपट कर दिया। अपने गुणों के अनुसार यूरेनियम सारणी के उस खाने में बिल्कुल फिट नहीं बैठ रहा था जो इस परमाणु भार वाले तत्त्व के लिए खाली रखा गया था। तब वैज्ञानिक ने अपने साथियो की परवाह न करते हुए यूरेनियम का परमाणु भार 240 माना तथा इसे सारणी के अंत में रख दिया। आगे चलकर महान वैज्ञानिक की बात सच सिद्ध हुई—यूरेनियम का परमाणु भार 238.03 निकला।

परंतु मेंडलीफ की दूरदर्शिता यहीं खत्म नहीं हो गई। 1872 में ही जब बहुत सारे वैज्ञानिक अन्य कीमती धातुओं के सामने यूरेनियम को केवल एक कंकड़ समझ रहे थे, मेंडलीफ को इस धातु का भविष्य सुनहरा दिखाई दे रहा था : 'सभी ज्ञात तत्त्वों में यूरेनियम अलग दिखाई देता है क्योंकि इसका परमाणु भार सबसे अधिक है।...इस विशेषता के कारण यह धातु बहुत महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगी।...मेरा विश्वास है कि इस तत्त्व का अध्ययन कई नयी खोजों को जन्म देगा। जो वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए नए विषय ढूंढ रहे हैं, मैं उनसे सिफारिश

करूगा कि वे यूरेनियम योगको पर विशेष ध्यान द

महान् वैज्ञानिक की भविष्यवाणी 25 साल मे कुछ कम अर्से पहले सच सिद्ध हो गई। 1869 मे फ्रेंच भौतिकविद् आन्तुआन हेनरी बेकेरेल ने यूरेनियम लवणों का अध्ययन करते समय एक खोज कर डाली, जिसकी गिनती मनुष्य की महानतम वैज्ञानिक खोजो में की जा सकती है। यह घटना इस प्रकार घटी ' बैकेरेल काफी दिनों से स्फुरदीप्ति (कुछ पदार्थो का एक गुण) में दिलचस्पी ले रहे थे। एक बार वैज्ञानिक ने अपने प्रयोगों के लिए यूरेनियम का एक लव के बने एक चपटे पैटर्न पर इस लवण का लेप चढ़ाया फोटोग्राफिक प्लेट पर रखकर एक काले कागज मे लपेट वैज्ञानिक ने इस प्लेट को कड़कती धूप में रख दिया जिरा हो। 4 घंटे बाद जब वैज्ञानिक ने प्लेट डैवेल्प की तो उन्हें की तीक्ष्ण रूपरेखा दिखाई दी। बैकेरेल ने अपना प्रयोग ब बार परिणाम एक जैसे मिला। आखिर 24 फरवरी 1896 को की बैठक में वैज्ञानिक ने उपस्थित सदस्यों को यह ब अनुसंधानित यूरेनियम का स्फुरदीप्त यौगिक अदृश्य किरण की क्षमता रखता है। ये किरणें काले अपारदर्शी कागज को प्लेट पर रजत के लवण स्थापित करती हैं।

इस घटना के दो दिन बाद वैज्ञानिक ने अपने प्रयोग बदकिस्मती से आकाश में बादल छाए हुए थे और बिना स सवाल ही नहीं उठता था। गुस्से में भरकर बैकेरेल ने स्लाइ एक दराज में बंद करके रख दिए, जहां वे कई दिनों तक मार्च की रात को आकाश साफ हो गया और सुबह सूरज को इसी दिन का इतजार था। वे भागकर अपनी प्रयोग से स्लाइड निकाल लाए। परतु एक विद्वान् प्रयोगकर्ता होने

पर बेकेरेल ने स्लाइड डैवेल्प करने का फैसला किया हालाकि यह बात पूर्णतया तर्कसंगत लग रही थी कि स्लाइडों का कुछ नही बिगड़ा होगा क्योकि वे अधेरे दराज में बंद थे तथा प्रकाश के बिना कोई भी पदार्थ स्फुरदीप्त हो ही नही सकता। उस वक्त वैज्ञानिक को यह पता नहीं था कि कुछ घटो बाद ये साधारण स्लाइडे, जिनकी कीमत केवल कुछ फ्रेक थी, अनमोल वैज्ञानिक खजाना बन जाएंगी तथा 1 मार्च 1896 का दिन विज्ञान के इतिहास में अमर हो जाएगा।

डैवेल्प करने के बाद स्लाइडों को देखकर बैकेरेल के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उनकी प्रकाशसंवेदी सतह पर काले रंग की स्पष्ट तथा तीक्ष्ण रेखाए दिखायी दे रही थीं। स्पष्ट था कि स्फुरदीप्ति का इस बात के साथ कोई सबध नही था। सवाल यह था कि यूरेनियम लवण कौन-सी किरणे विकिरित कर रहा था? वैज्ञानिक ने इस प्रयोग को विभिन्न यूरेनियम लवणों के साथ दोहराया। उन्होने वे यौगिक भी लिये जिनमें स्फुरदीप्ति का गुण बिल्कुल नही था या जो कई सालो तक अधेरी जगह मे पड़े रहे थे। हर बार स्लाइडों पर वैसी ही आकृति बनी।

बैकेरेल अभी भी इस निष्कर्ष पर नहीं पहुच पा रहे थे कि यूरेनियम ऐसी पहली धातु है जिसमें वही गुण हैं जो अदृश्य स्फुरदीप्ति मे होते है।

उन्हीं दिनो फ्रेंच रसायनज्ञ हेनरी मुआसान को शुद्ध धात्विक यूरेनियम प्राप्त करने में सफलता मिल गई। बैकेरेल ने हेनरी से थोड़ा-सा यूरेनियम पाउडर लेकर उसका अध्ययन किया। उन्होने यह देखा कि शुद्ध यूरेनियम का विकिरण उसके यौगिकों के विकिरण से कई गुना ज्यादा तीव्र है। विशेष बात यह थी कि परिस्थितियां बदलने पर भी यूरेनियम का यह गुण कायम था, उदाहरण के लिए, बहुत उच्च तापमान तक गरम करने पर या अति निम्न तापमान तक प्रशीतित करने पर भी इस धातु की विकिरण क्षमता वैसी की वैसी ही रही।

बैकेरेल ने अपने नए प्रयोगों के परिणाम प्रकाशित करवाने मे जल्दी नहीं दिखाई। वे मुआसान के रोचक प्रयोगों के परिणामों का इतजार कर रहे थे क्योकि विज्ञान में आचरण का ऐसा नियम है। 23 नवंबर के दिन फ्रेंच विज्ञान अकादमी की बैठक में मुआसान ने एक लेख पढा जिसमें उन्होंने शुद्ध यूरेनियम प्राप्त करने की अपनी विधि पर प्रकाश डाला। इसी बैठक में बैकेरेल ने इस तत्त्व मे नया गुण होने की बात बतायी। उन्होंने यह कहा कि यूरेनियम के परमाणुओं का नैसर्गिक विखंडन होता है। धातु के इस गुण का नाम विघटनाभिकता रखी गई।

बैकेरेल की इस खोज ने भौतिकी मे एक नए युग को जन्म दिया—तत्त्वांतरण का युग। अब परमाणु को एकाकी तथा अभाज्य नहीं समझा जाता था। यूरेनियम ने विज्ञान के लिए परमाणु (वह ईट, जिससे भौतिक जगत् बना है) की दुनिया

में पुरस्कार का एक भाग। साल 1903।

स्वाभाविक था कि इस घटना के बाद वैज्ञानिक यूरेनियम में अधिक रुचि लेने लगे परन्तु इसके साथ साथ भौतिकशास्त्री यह भी सोचने लगे कि क्या यूरेनियम अकेला तत्त्व है जिसमें विघटनाभिकता का गुण विद्यमान है। क्या यह संभव नहीं है कि प्रकृति में कुछ और भी तत्त्व हों जिनमें यह गुण विद्यमान होता हो।

इस प्रश्न का उत्तर पति-पत्नी के एक जोड़े, फ्रांसीसी भौतिकविद पियरे क्यूरी तथा मेरी स्क्लादोव्स्काया क्यूरी ने दिया। पति द्वारा निर्मित एक उपकरण की सहायता से मेरी क्यूरी ने बहुत सारी धातुओं, लवणों तथा अयस्कों का अध्ययन किया। उन्हें अपना अनुसंधान कार्य बड़ी कठिन परिस्थितियों में करना पड़ रहा था। पति-पत्नी ने पेरिस की एक बिल्डिंग के यार्ड में एक पुराने शेड में प्रयोगशाला खोल रखी थी। मेरी क्यूरी ने अपनी डायरी में इस प्रयोगशाला के बारे में निम्न शब्द लिखे : 'यह लकड़ी की बनी एक बैरक थी जिसका फर्श पत्थर का था तथा छत कांच की थी। बारिश के दिनों इसकी छत अक्सर चूती थी। बैरक में लकड़ी की कुछ मेजें पड़ी थीं, लोहे का एक स्टोव था जो कभी पर्याप्त आग नहीं देता था तथा एक श्यामपट्ट था जिसे पियरे बड़े शौक से प्रयोग करता था। विषाक्त गैसों से बचने की कोई व्यवस्था नहीं थी, अतः इस प्रकार के प्रयोगों को बाहर आंगन में करना पड़ता था। अगर मौसम खराब होता था तो खिड़कियां खोलकर ये प्रयोग बैरक के अंदर ही करने पड़ते थे।' डायरी में यह भी लिखा हुआ है कि कई बार काम करते समय अंदर का तापमान केवल 6°C होता था।

प्रयोगों के लिए आवश्यक सामग्री जुटाना भी एक बहुत बड़ी समस्या थी। यूरेनियम अयस्क बहुत महंगा था तथा छोटी-सी तनख्वाह में क्यूरी दम्पती इसकी पर्याप्त मात्रा नहीं खरीद सकते थे। उन्होंने आस्ट्रिया की सरकार से सस्ते दामों पर यूरेनियम अयस्क का कूड़ा खरीदने की इच्छा जाहिर की। आस्ट्रिया में यूरेनियम लवणों से कांच तथा चीनी-मिट्टी के बर्तनों पर रंग चढ़ाया जाता था। वियेना की विज्ञान अकादमी ने क्यूरी परिवार की सिफारिश की जिसके परिणाम-स्वरूप इनकी पेरिस की प्रयोगशाला में कुछ टन यूरेनियम कूड़ा पहुंचा दिया गया।

मेरी क्यूरी ने बड़ी दृढ़ता के साथ काम शुरू कर दिया। विभिन्न पदार्थों के अध्ययन से बैकेरेल की बात सच लग रही थी। सैकड़ों प्रयोगों के परिणाम यही बता रहे थे कि शुद्ध यूरेनियम की विघटनाभिकता उसके यौगिकों की विघटनाभिकता से अधिक होती है। परंतु मेरी क्यूरी ने नए-नए पदार्थों का अध्ययन जारी रखा। और एक दिन अचानक एक नयी घटना घटी। दो यूरेनियम खनिजों चैलकोलाइट तथा बहामा के पिचब्लैण्ड के अध्ययन के दौरान उपकरण यह बता

था कि इनकी विघटनाभिकता यूरेनियम से काफी अधिक है। इसका मतलब था कि इन खनिजों में कोई अज्ञात तत्त्व उपस्थित है जिसकी विघटनाभिकता नियम से भी उच्च है। मेरी क्यूरी की मातृभूमि पोलैंड के सम्मान में इस नए का नाम पोलोनियम रखा गया।

इस सफलता के बावजूद मेरी क्यूरी ने अनुसधान कार्य बद नही किया। इस उनके प्रयोगों ने एक और खोज कर डाली। उन्होंने एक नया तत्त्व खोज डाला नकी विघटनाभिक क्षमता यूरेनियम से सौ गुना अधिक थी। वैज्ञानिकों ने इस का नाम रेडियम रखा। लातीनी भाषा में इस शब्द का अर्थ 'किरण' होता है।

रेडियम की खोज होते ही वैज्ञानिकों की यूरेनियम में इतनी दिलचस्पी नही। लगभग 40 साल तक वैज्ञानिकों ने यूरेनियम की कोई परवाह नही की और ही इजीनियरों ने इसके उपयोग की बात सोची। 1934 में प्रकाशित तकनीकी व कोश के एक खंड मे निम्न शब्द लिखे गए 'तत्त्व के रूप में यूरेनियम सी भी काम का नही है।' उस वक्त के हिसाब से महत्त्वपूर्ण विश्वकोश की न ठीक ही थी परंतु कुछ सालो बाद वैज्ञानिकों की अपनी धारणा बदलनी पडी।

1939 के आरभ मे दो महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक लेख प्रकाशित हुए। पहले के खक फ्रेडरिख जोलियट क्यूरी थे। फ्रेंच विज्ञान अकादमी द्वारा प्रकाशित उनके त्र का शीर्षक था—'न्यूट्रानो के प्रभावस्वरूप यूरेनियम तथा थोरियम के नाभिको विस्फोटक विखंडन के प्रयोगिक प्रमाण।' दूसरे लेख के लेखक जर्मन भौतिकविद् टो फिश तथा लीजे मेइटनेर थे। यह ब्रिटिश पत्रिका 'प्रकृति' में छपा तथा

इसका शीर्षक था—'न्यूट्रानों के प्रभावस्वरूप यूरेनियम का विखंडन : परमाणविक अभिक्रिया का एक नया रूप।' दोनों लेखों में सबसे भारी तत्त्व—यूरेनियम की एक अज्ञात विशेषता की चर्चा की गई थी।

इन लेखों से कुछ साल पहले कुछ 'लड़कों' (युवा वैज्ञानिकों) ने भी यूरेनियम में काफी रुचि दिखायी थी। वे प्रतिभाशाली भौतिकविद् एनरिको फेर्मी के नेतृत्व में रोम विश्वविद्यालय में भौतिकी की एक बिल्कुल नई तथा रहस्यमयी शाखा—न्यूट्रान भौतिकी का अध्ययन कर रहे थे।

युवा वैज्ञानिकों ने यह देखा कि न्यूट्रानों द्वारा किरणित करने पर नियमानुसार एक तत्त्व के नाभिक में परिवर्तन हो जाता है तथा आवर्त सारणी में अगली जगह ले लेता है। परंतु अगर अंतिम अर्थात् 92वें तत्त्व को किरणित किया जाए, तब क्या होगा? नियमानुसार एक नया तत्त्व बनाना चाहिए जो 93वें खाने में जगह लेगा परंतु इस तत्त्व को पैदा करने में प्रकृति भी असमर्थ है।

'लड़कों' को यह विचार बहुत अच्छा लगा : एक कृत्रिम तत्त्व की जानकारी वास्तव में बड़ी मजेदार सिद्ध होगी : यह तत्त्व कैसा होगा, इसकी आकृति कैसी होगी तथा इसमें कौन-से गुण होंगे? परंतु जब इन लोगों ने यूरेनियम को किरणित किया तो एक की जगह दर्जन से अधिक तत्त्व प्राप्त हुए। उन्हें यूरेनियम की इस विशेषता में कोई रहस्य छिपा दिखाई दे रहा था। एनरिको फर्मी ने एक वैज्ञानिक जर्नल को 93वें तत्त्व की उत्पत्ति की रिपोर्ट भेजी परंतु पक्का सबूत न होने के कारण उन्हें अपनी बात संदेहजनक लग रही थी। हालांकि इस बात का प्रमाण मिल गया कि यूरेनियम में कई और तत्त्व उपस्थित हैं। परंतु वे तत्त्व हैं कौन-से?

मेरी क्यूरी की पुत्री इरेन जोलियोट क्यूरी ने इस पहेली को हल करने की कोशिश की। उन्होंने फेर्मी के प्रयोग दोहराये तथा न्यूट्रानों द्वारा किरणित करने के बाद यूरेनियम की रासायनिक संरचना का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया। परिणाम गजब का था : यूरेनियम में लैन्थेनम मिला, जिसका स्थान आवर्त सारणी के मध्य में है अर्थात् जो यूरेनियम से बहुत दूर है।

जब जर्मन भौतिकविदों ओटो हान तथा फ्रेडरिख स्ट्रासमैन ने यही प्रयोग दोहराये तो उन्हें यूरेनियम में लैन्थेनम के साथ-साथ बेरियम भी मिला। एक के पीछे दूसरा रहस्य! दोनों वैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगों की बात प्रसिद्ध भौतिकविद् लीजे मेईटनेर को बतायी। इन दिनों कई विख्यात भौतिकविद् यूरेनियम पर अनुसंधान कर रहे थे। कुछ समय बाद जोलियट क्यूरी तथा उनके पीछे लीजे मेईटनेर एक जैसे निष्कर्ष पर पहुंचे : जब एक न्यूट्रान यूरेनियम नाभिक के साथ मिलता है तब नाभिक दो भागों में विभाजित हो जाता है। लैन्थेनम तथा बेरियम

ाक आगमन का यही कारण था। इन धातुओं का परमाणु भार यूरेनियम
 भार का आधार था।
रीकी भौतिकविद् लूईस अल्वारेस को, जो कुछ सालो बाद नोबेल पुरस्कार
त किए गए, यह खबर 1939 की जनवरी की एक सुबह को पता

 वे नाई से बाल कटवा रहे थे। वे बड़ी शांति से अखबार देख रहे
ानक उनकी नजर एक साधारण खबर पर पड़ी : 'यूरेनियम के परमाणु
ो मे बाट दिया गया है।' कुछ क्षणो बाद नाई तथा अपनी बारी की
बैठे अन्य ग्राहक यह देखकर आश्चर्य मे भर गए कि एक सनकी ग्राहक
कटवाए बिना उठ बैठा और दूकान से बाहर भागा। उसकी गर्दन पर
। हवा में उड़ रहा था। परंतु उसे लोगों के आश्चर्य की परवाह न थी।
 ऑफिस की ओर भाग रहा था, जहा वह अपने साथियों को यह
ा खबर सुनाना चाहता था। कैलिफोर्निया यूनिवर्सिटी की प्रयोगशाला
ा के साथी उनको देखकर भौंचक्के रह गए परंतु खबर सुनते ही वे
ेब केशविन्यास की बात भूल गए।
ड़ा, इस खबर ने विज्ञान जगत् में सनसनी मचा दी। परंतु जोलियट क्यूरी
र महत्त्वपूर्ण तथ्य स्थापित किया। उन्होंने यह बताया कि यूरेनियम के
 विखंडन के समय विस्फोट होता है जिसके दौरान किरचे बड़ी तेजी से
उडती है। फिलहाल अलग-अलग नाभिकों के विखंडन में सफलता मिली

थी अतः किरणों की ऊर्जा केवल यूरेनियम के टुकड़े को गरम कर पाती थी। परन्तु अगर विखंडन की संख्या बढ़ा दी जाए तो बहुत बड़ी मात्रा में ऊर्जा मिलेगी।

परन्तु समस्या यह थी कि यूरेनियम के सकल भाग नाभिकों पर बमबारी के लिए बड़ी संख्या में न्यूट्रान कहां से लाए जाएं। वैज्ञानिकों को न्यूट्रानों के जिन स्रोतों की जानकारी थी उनसे प्राप्त न्यूट्रानों की संख्या आवश्यक संख्या से कई लाख गुना कम होती थी। यहां प्रकृति ने इस काम में मनुष्य की सहायता की। जोलियट क्यूरी ने यह देखा कि यूरेनियम के नाभिक के विखंडन के दौरान नाभिक से कुछ न्यूट्रान निकलते हैं। अगर ये न्यूट्रान पड़ोसी परमाणुओं के नाभिकों से मिल जाएं तो नया विखंडन होना चाहिए अर्थात् शृंखला-प्रतिक्रिया होनी चाहिए। चूंकि ये प्रक्रियाएं सेकंड के कई लाखवें हिस्से समय में होती हैं, अतः निकलने वाली ऊर्जा की मात्रा अतिविशाल होनी चाहिए तथा विस्फोट जरूर होना चाहिए। लग रहा था कि हर बात स्पष्ट है। परन्तु यूरेनियम के टुकड़ों को न्यूट्रानों द्वारा कई बार किरणित करने पर भी विस्फोट नहीं हुआ अर्थात् शृंखला-प्रतिक्रिया नहीं चली। इसका मतलब यह हुआ कि कुछ और बातें आवश्यक थीं। परन्तु फिर भी जोलियट क्यूरी इस प्रश्न का उत्तर नहीं ढूंढ सके।

उसी साल (1939 में) दो युवा सोवियत वैज्ञानिकों या. जेल्दोविच तथा यु. खारीतान ने इस समस्या का हल ढूंढ लिया। इन दोनों ने अपने प्रयोगों द्वारा यह स्थापित किया कि शृंखला-प्रतिक्रिया दो तरीकों से शुरू हो सकती थी। पहला तरीका यह हो सकता था कि यूरेनियम के टुकड़े का आकार बढ़ा दिया जाए क्योंकि छोटे टुकड़े के किरणित होने पर बहुत सारे नए न्यूट्रान नाभिक न मिलने के कारण बेकार जाते थे। यूरेनियम का द्रव्यमान बढ़ाने से न्यूट्रानों की नाभिकों से मुलाकात की संभावना बढ़ जाती थी।

दूसरा तरीका यह था कि यूरेनियम को समस्थानिक 235 में समृद्ध किया जाए। बात यह थी कि वैज्ञानिक जानते थे कि यूरेनियम के दो मुख्य समस्थानिक है जिनका परमाणु भार 238 तथा 235 है। इनमें से पहले समस्थानिक के नाभिक मे 3 अतिरिक्त न्यूट्रान होते हैं। यूरेनियम 235 'भूखा' होने के कारण इन न्यूट्रानों को निगल जाता है जिसके परिणामस्वरूप यह समस्थानिक अपने 'अमीर' भाई 238 से ज्यादा शक्तिशाली बन जाता है। समस्थानिक 238 कुछ निश्चित परिस्थितियो में न्यूट्रान खाकर टुकड़ो मे विभाजित न होकर एक-दूसरे तत्त्व मे परिवर्तित हो जाता है। आगे चलकर वैज्ञानिको ने समस्थानिक के इस गुण के आधार पर कृत्रिम ट्रांसयूरेनियम तत्त्व प्राप्त किए। यूरेनियम 238 की न्यूट्रानो के प्रति उदासीनता शृंखला-प्रतिक्रिया के लिए बहुत विनाशकारी सिद्ध होती है।

शक्ति प्राप्त करने से पहले ही प्रक्रिया अवमंदित हो जाती है। परतु एक बात जरूर होती है कि यूरेनियम मे समस्थानिक 235 के परमाणुओ की संख्या जितनी अधिक होगी प्रक्रिया की गति उतनी ही अधिक तीव्र ही होती है।

परंतु इस प्रक्रिया को चालू करने के लिए प्रथम न्यूट्रान भी तो चाहिए—अर्थात् माचिस की तीली चाहिए, जो परमाण्विक आग जला सके। निस्सदेह इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए आम न्यूट्रान स्रोतों से काम चलाया जा सकता था जिनका वैज्ञानिक अपने अनुसंधान कार्यो मे प्रयोग करते आ रहे थे परतु ये स्रोत बहुत सुविधाजनक नहीं थे। हां, काम इनसे जरूर चलाया जा सकता था। क्या इनसे बढ़िया माचिस नहीं थी?

ऐसी माचिस थी। इसे सोवियत वैज्ञानिको क. पेत्रजाक तथा गे. फ्लेरोव ने ढूंढा। 1939-1940 मे लेनिनग्राद की प्रयोगशाला में अपने प्रयोगो के परिणामो से वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि यूरेनियम के नाभिक खुद-ब-खुद विखडित हो जाते हैं।

पहले यह भी हो सकता था कि यूरेनियम खुद नहीं बल्कि कास्मिक किरणो द्वारा विखंडित होता हो, क्योंकि हमारी पृथ्वी हर वक्त उनके आक्रमण का निशाना बनी रहती है। इसका मतलब यह हुआ कि प्रयोग जमीन के अंदर काफी गहराई पर दोहराए जाएं, जहां कास्मिक किरणें नहीं पहुंच सकतीं। विख्यात इ. कुर्चातोव की सलाह पर युवा वैज्ञानिकों ने मास्को के मेट्रो के किसी स्टेशन पर प्रयोग दोहराने का फैसला किया। यातायात मंत्रालय ने इस योजना मे टाग नहीं अडायी और शीघ्र ही जमीन में 50 मीटर नीचे स्थित 'डिनामो' मेट्रो स्टेशन के स्टेशन मास्टर के कमरे में एक उपकरण लगा दिया गया जिसका वजन 3 टन के लगभग था।

हमेशा की तरह स्टेशन मास्टर के कमरे के सामने से आसमानी रंग की गाड़ियां आती-जाती रहीं, हजारों यात्री बिजली की सीढियों से ऊपर-नीचे आते-जाते रहे परंतु किसी को भी यह बात पता नहीं थी कि पास मे ही ऐसे प्रयोग किए जा रहे थे जिनका महत्त्व आंकना मुश्किल था। इसी तरह के प्रयोग लेनिनग्राद में किए गए। उनके परिणामों से मास्को के वैज्ञानिकों को अपने कथन की सच्चाई में जरा भी शक नहीं रहा : यूरेनियम के नाभिक खुद-ब-खुद विखंडित हो गए थे। इस गुण को देखने के लिए बहुत कुशलता की जरूरत थी। एक घटे में यूरेनियम के 6,00,00,000 परमाणुओं में से केवल एक परमाणु विखंडित होता था। वास्तव में यह समुद्र में एक बूंद की तरह था।

क. पेत्रजाक तथा गे. फ्लेरोव ने अपने महत्त्वपूर्ण प्रयोगो से यूरेनियम के जीवन-इतिहास का अंतिम पृष्ठ पूरा किया। इनके पीछे 2 दिसंबर 1942 के दिन

एनरिको फर्मी ने विश्व में पहली बार शृंखला प्रतिक्रिया कार्यान्वित कर दिखायी। इस शताब्दी के तीसरे दशक के अंत में कई विख्यात वैज्ञानिकों की तरह फर्मी भी फासिस्टों के आतंक से बचने के लिए संयुक्त राज्य अमरीका भाग गए। वहां उन्होंने अपने प्रयोग जारी करने चाहे परन्तु उनके पास पर्याप्त धन नहीं था। अमरीकी सरकार को यह विश्वास दिलाना था कि फर्मी के प्रयोगों से एक शक्तिशाली परमाणु अस्त्र बनाया जा सकता है जिससे फासिस्टों का मुकाबला किया जा सकता है। विश्व के महान् वैज्ञानिक एल्बर्ट आइंस्टाइन ने अमरीकी सरकार तक यह बात पहुंचाने का जिम्मा लिया। उन्होंने राष्ट्रपति रूजवेल्ट को एक पत्र लिखा जिसकी शुरुआत निम्न शब्दों से की : 'श्रीमान! फर्मी तथा सिलार्ड के प्रयोगों के अध्ययन से मुझे यह आशा लग रही कि निकट भविष्य में यूरेनियम ऊर्जा का महत्त्वपूर्ण स्रोत बन सकता है।' पत्र में आइंस्टाइन ने राष्ट्रपति से यूरेनियम पर अनुसंधान के लिए आर्थिक सहायता दिलवाने का अनुरोध किया। आइंस्टाइन की ख्याति तथा अंतर्राष्ट्रीय हालातों की नाजुकता का ख्याल रखते हुए रूजवेल्ट ने अपनी सहमति दे दी।

1941 के अंतिम दिनों में शिकागो के निवासियों ने शहर के एक स्टेडियम में एक अजीब नजारा देखा जिसका खेलों के साथ कोई संबंध नहीं था समय-समय पर

लोगों को स्टेडियम के पास तक नही फटकने दे रहे थे। इस स्टेडियम के पश्चिमी भाग मे टेनिस के कोर्टों मे फेर्मी अपने खतरनाक प्रयोग की तैयारियां कर रहे थे—वे यूरेनियम के नाभिकों का शृंखला-प्रतिक्रिया द्वारा विखडन करना चाहते थे। विश्व के प्रथम परमाणु रिएक्टर के निर्माण का काम एक साल तक दिन-रात चलता रहा।

2 दिसंबर 1942 की सुबह। सारी रात वैज्ञानिक जरा-सी देर के लिए भी नहीं सोए, वे बार बार हिसाब मिला रहे थे। यह कोई मजाक की बात नहीं थी। स्टेडियम शहर के केंद्र में स्थित था और शहर की आबादी कई लाख थी। हिसाब कह रहा था कि परमाणु भट्ठी में प्रतिक्रिया की शक्ति काफी कम होनी चाहिए अर्थात् विस्फोट की संभावना नही थी परंतु लाखों लोगो का जीवन खतरे मे नही डाला जा सकता था। सुबह हुए काफी वक्त बीत चुका था। नाश्ते का वक्त हो गया था परन्तु किसी को भी भूख महसूस नही हो रही थी। हर किसी को बड़ी बेसब्री से परमाणु पर हमले का इंतजार था। परंतु फेर्मी जल्दी नही कर रहे थे। वे थके लोगों को आराम का वक्त देना चाहते थे जिससे बाद में ताजे दिमाग से एक बार फिर हिसाब मिलाकर देखा जा सके। वे बहुत सावधानी बरत रहे थे। सबको उस क्षण का इंतजार था जब फेर्मी प्रयोग शुरू करने का आदेश देंगे। लगता था कि वह घड़ी आ गई परंतु उस क्षण फेर्मी ने निम्न शब्द कहे जो परमाणु के इतिहास में हमेशा के लिए लिखे गए—'चलिए, नाश्ता करते हैं।'

नाश्ते के बाद सब लोग फिर से अपनी-अपनी जगह पर बैठ गए—अब प्रयोग शुरू होने जा रहा था। वैज्ञानिकों की निगाहे उपकरणो पर टिकी थी। इतजार के मिनट बड़े भारी लग रहे थे। अचानक न्यूट्रानों के काउटर गति मे आ गए। शृंखला-प्रतिक्रिया शुरू हो गई। उस वक्त शिकागो में दोपहर के 3 बजकर 25 मिनट हुए थे। परमाण्विक आग 28 मिनट तक जलने दी गई तथा इसके बाद फर्मी के आदेश पर बुझा दी गई।

एक वैज्ञानिक ने टेलीफोन पर पहले से निश्चित गुप्त शब्दो मे अधिकारियो से निम्न बात कही : 'इटली का समुद्री यात्री नई दुनिया पहुंच गया है।' इसका मतलब यह था कि इटली के मशहूर वैज्ञानिक एनरीको फेर्मी ने परमाणु के नाभिक से ऊर्जा प्राप्त कर ली है तथा यह दिखा दिया है कि मनुष्य इस ऊर्जा पर नियत्रण रख सकता है और अपनी मर्जी से इसका प्रयोग कर सकता है।

परन्तु एक आदमी की इच्छा दूसरे की इच्छा के विपरीत हो सकती है। जिन दिनों ये घटनाएं घट रही थीं, अमरीकी सरकार शृंखला-प्रतिक्रिया को परमाणु बम के निर्माण की दिशा मे एक महत्त्वपूर्ण कदम समझ रही थी। अमरीकी परमाणु

गया था कि मोटर पर लदे डिब्बे में क्या चीज रखी थी। परतु उसने यह सुन रखा था कि आर्क-रिज में 'मौत की किरणें' बनाई जाती है। जैसे-जैसे मोटर आगे बढ़ रही थी उसकी घबराहट भी उतनी ही तेजी से बढ़ती जा रही थी। आखिर उसने यह फैसला कर लिया कि अगर जरा-सा भी खतरा दिखाई देगा तो वह तुरंत मोटर छोड़कर दूर भाग जाएगा। एक लंबे पुल को पार करते समय ड्राइवर को अचानक पास वाले जंगल में गोली चलने की आवाज सुनाई दी। उसने तुरंत मोटर रोक दी और बाहर निकलकर बड़ी तेजी से दौड़ना शुरू कर दिया, जिंदगी में पहले कभी शायद ही वह इतनी तेजी से दौड़ा था। काफी दूर तक भागने के बाद वह सांस लेने के लिए रुक गया। अपने को सही-सलामत पाकर उसने पीछे मुड़कर देखा। इतनी देर में उसकी मोटर के पीछे दूसरी मोटरों की भीड़ लग गई थी जिनके ड्राइवर बड़ी बेसब्री के साथ भोपू बजा रहे थे। मजबूर होकर उसे वापस लौटना पड़ा। परंतु जैसे ही वह मोटर मे बैठा उसे फिर गोली चलने की आवाज सुनाई दी। आत्मरक्षा की प्रवृत्ति ने उस बेचारे ड्राइवर को फिर मोटर से उतार दिया और दुष्ट डिब्बे से दूर भागने पर मजबूर कर दिया। यातायात पुलिस के सिपाही को उस ड्राइवर पर बहुत गुस्सा आया। उसने मोटरसाइकिल पर बैठकर ड्राइवर का पीछा किया और रोककर उसके लायसेंस आदि की जाच की। उस सिपाही ने भयभीत ड्राइवर को बताया कि गोलियों की आवाजें पास स्थित परीक्षण स्थल से आ रही थीं। जहां उस वक्त नयी गोलियो का परीक्षण किया जा रहा था।

लॉस अलामॉस में भी यह काम पूर्णतया गुप्त रखा था। यहा सारे विख्यात वैज्ञानिकों को नकली नाम दिए गए थे, उदाहरणतया, नील्स बोहर को लोग निकोल्स बेकर के नाम से जानते थे, एनरीको फेर्मी को हेनरी फेरमेर के नाम से तथा यूजीन विगनेर को यूजीन वागनेर के नाम से। एक बार फेर्मी तथा विगनेर जब एक गुप्त प्लांट से बाहर निकल रहे थे, संतरी ने उन्हें रोक दिया। फेर्मी ने उसे अपना पहचान-पत्र दिखाया जिस पर उनका नाम फेरमेर लिखा था। परतु विगनेर अपना पहचानपत्र कहीं भूल आए थे। संतरी के पास प्लांट के अंदर जाने की आज्ञा रखने वाले लोगों की सूची थी। उसने विगनेर से पूछा : 'आपका नाम क्या है?' घबराहट में प्रोफेसर के मुंह से अपना असली नाम निकल गया—'विगनेर' परन्तु उन्हें तुरंत अपनी गलती का एहसास हो गया और वे दोबारा बोले—'वागनेर'। दो जवाबों से संतरी को उन पर शक हो गया। उसकी सूची में वागनेर था, विगनेर कहीं नहीं लिखा था। संतरी फेर्मी को पहचानता था। उसने उनसे पूछा : 'क्या इस आदमी का नाम वागनेर है?' अपनी हंसी छिपाते हुए फेर्मी ने संतरी को
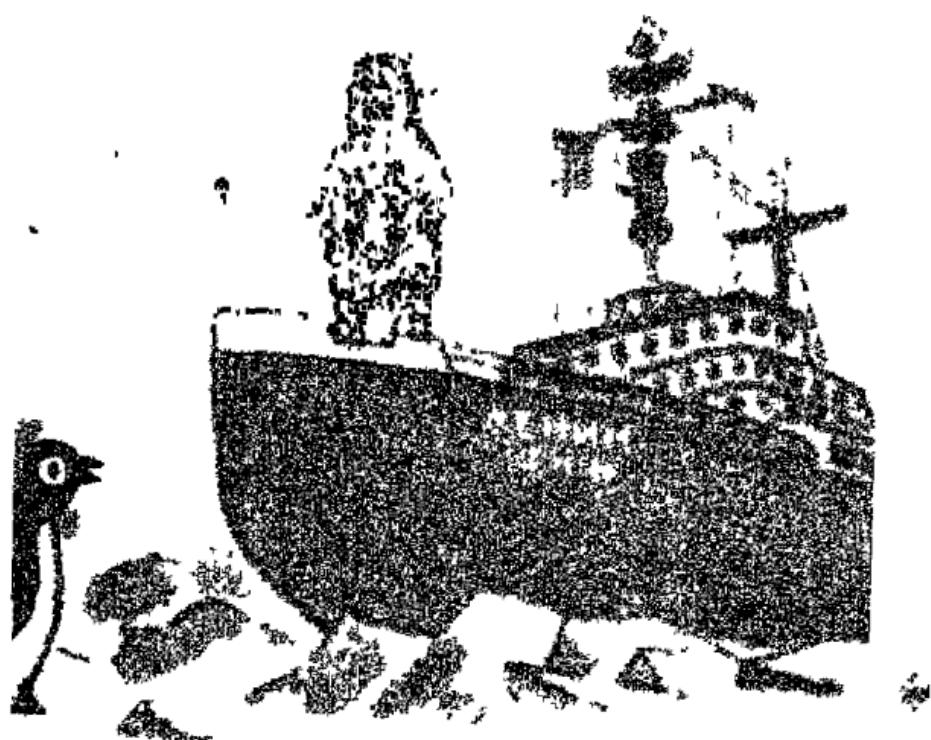
जहाज 'लेनिन' जल में उतरा। इसके इंजनो को पूरी ताकत (44,000 अश्वशि
से चलाने के लिए, केवल कुछ दर्जन ग्राम यूरेनियम काफी था। इस परमाणु ई
की थोड़ी-सी मात्रा के प्रयोग से हजारों टन तेल या कोयले की बचत की
सकती थी। लंबी यात्रा पर निकले स्टीमरो में इतना ज्यादा ईंधन लादना प
था, जैसे, लंदन से न्यू-यार्क जा रहे स्टीमर को। कुछ किलोग्राम यूरेनियम ई
से परमाणु बर्फतोड़क जहाज 3 साल तक लगातार आर्कटिक में बर्फ काट स
है। उसे ईंधन के लिए बंदरगाह लौटने की जरूरत नहीं है।

1974 में सोवियत संघ में एक और भी ज्यादा शक्तिशाली परमाणु बर्फतो
जहाज 'आर्कटिका' का निर्माण पूरा हो गया। इसके इंजन 75,000 अश्वश
की हैं। 17 अगस्त 1977 के दिन आर्कटिक सागर की अगम्य बर्फ को का
'आर्कटिका' उत्तरी ध्रुव पहुंच गया। नाविकों तथा ध्रुव अन्वेषकों का सदियों पु
सपना पूरा हो गया। यूरेनियम ने इस कार्य में अतिमहत्त्वपूर्ण भूमिका निभ
कुछ सालों बाद सबसे शक्तिशाली परमाणु बर्फतोडक जहाज को दो साथी और मिल गए : 'साइबेरिया' और 'रूस'।

विश्व के ऊर्जा-स्रोतों में यूरेनियम का हिस्सा हर साल बढ़ता जा रहा है। कुछ साल पहले सोवियत संघ में प्रथम औद्योगिक परमाणु बिजलीघर चालू किया गया जिसमें तीव्र न्यूट्रानो वाला रिएक्टर लगाया गया। इन रिएक्टरों की खासियत यह होती है कि इनमें परमाणु ईंधन के रूप में विरल ईंधन-यूरेनियम-235 की जगह विस्तृत समस्थानिक यूरेनियम-238 इस्तेमाल किया जा सकता है। इसके अलावा इन रिएक्टरों से ऊर्जा की विशाल मात्रा के साथ-साथ एक कृत्रिम तत्त्व

ा
ा
र
ा
ि
में
में
ा,
न
ने
गी
श
र
ग
री

हार,

राजकुमार शर्मा

प्रसिद्ध लेखक एव प्रकाशक।

हिन्दी पुस्तको के प्रकाशन को एक नया रूप देने के लिए आपका नाम भारत ही नही अपितु पूरे विश्व मे चर्चित है। शुरू मे आप पंडित राज के नाम से लिखा करते थे। वर्तमान में आप राजकुमार शर्मा के नाम से प्रसिद्ध है। पुस्तक व्यवसाय में आप 1955 में आ गये थे। शुरू-शुरू में आपने धार्मिक पुस्तकें जैसे—रत्न मजरी, शिव महापुराण आदि पुस्तकों का संपादन एवं पुर्नलेखन किया। इसके पश्चात आपने स्वामी रामकृष्ण परमहस की जीवनी लिखी। इस पुस्तक पर आपको मध्यप्रदेश सरकार के द्वारा 'कला शिरोमणि' पुरस्कार से सम्मानित किया गया। वर्तमान में आप सन्मार्ग प्रकाशन के निदेशक हैं। आपकी लोकप्रिय एवं चर्चित पुस्तकें—

- रामकृष्ण परमहंस
- मैं योगी कैसे बना
- वैराग्य शतक
- धातुओं के रोचक तथ्य
- आगे बढ़ो
- सच को जानो

सम्पर्क : सी-8/74, यमुना विहार, दिल्ली-110053